उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

बी.ए. ज्योतिष (षष्ठ सेमेस्टर)

BAJY(N)-223

(MINOR VOCATIONAL COURSE)

ज्योतिष शास्त्रीय विविध विचार

मानविकी विद्याशाखा
वैदिक ज्योतिष विभाग

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति एवं अध्ययन समिति

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर रेनू प्रकाश – निदेशक
मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – समन्वयक
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. प्रमोद जोशी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी),
ज्योतिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. प्रभाकर पुरोहित, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी)
ज्योतिष विभाग, उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रोफेसर श्याम देव मिश्र
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ

प्रोफेसर प्रेम कुमार शर्मा
अध्यक्षचर, ज्योतिष विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. रत्न लाल शर्मा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सम्पादक | **सह - सम्पादक**

डॉ. प्रमोद जोशी,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

डॉ. रंजीत दूबे
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखक	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर , वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**1**	**1,2,4**
डॉ. रंजीत दूबे असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**1/2**	**3/1,2,3**
डॉ. विजय प्रसाद रतूड़ी असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी), वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वान	**2**	**3,4**
डॉ. देशबन्धु असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वास्तुशास्त्र विभाग श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**3**	**1,2,3,4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रथम संस्करण : 2026 **ISBN No. -**

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी **मुद्रक :**

नोट: - इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी स्थित सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

ज्योतिष शास्त्रीय विविध योग विचार MINOR VOCATIONAL COURSE BAJY(N)-221

बी.ए. (षष्ठ सेमेस्टर) – ज्योतिष

क्रम व इकाइयों के नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड 1 योग विचार	**2**
इकाई 1 नाभस योग विचार	3- 18
इकाई 2 राज योग	19 - 36
इकाई 3 पंचमहापुरूष योग विचार	37 - 54
इकाई 4 दारिद्रय एवं मारक योग विचार	55 - 75
खण्ड 2 प्रश्न विचार	**76**
इकाई 1 प्रश्न प्रयोजन	77 - 96
इकाई 2 प्रश्न विधि	97 -112
इकाई 3 प्रश्न लग्न सिद्धान्त	113 -128
इकाई 4 प्रश्नाक्षर सिद्धान्त	129 -143
इकाई 5 स्वर सिद्धान्त	144 - 154
खण्ड 3 वास्तुशास्त्रीय विचार	**155**
इकाई 1 वास्तुशास्त्र का स्वरूप, प्रवर्तक एंव आचार्य	156 -179
इकाई 2 वास्तुपुरूष की अवधारणा	180 -195
इकाई 3 भूमि लक्षण शोधन	196 - 234
इकाई 4 खात, वास्तुपद विन्यास पिण्ड निर्माण एवं द्वार विन्यास	235 - 253

बी.ए. (षष्ठ सेमेस्टर) ज्योतिष

MINOR VOCATIONAl COURSE

ज्योतिषशास्त्रीय विविध योग विचार

BAJY(N)-223

खण्ड - 1
योग विचार

इकाई -1 नाभस योग विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 नाभस योग परिचय

1.3.1 नाभस योग लक्षण

1.3.2 नाभस योगों का फल

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई षष्ठ सेमेस्टर (BAJY(N)-223) की प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– नाभस योग विचार। इससे पूर्व आपने फलित ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'नाभस योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

नाभस योग का सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्र के फलित स्कन्ध से है। फलित ज्योतिष में 32 प्रकार के नाभस योगों का भेद प्राप्त होता है तथा इनके 1800 प्रभेद हैं। प्राय: फलित के लगभग समस्त ग्रन्थों में आचार्यों द्वारा 'नाभसयोगाध्याय' का वर्णन किया गया है।

आइए इस इकाई में हम लोग अब 'नाभस योगों' के बारे में विस्तार से अध्ययन करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ❖ नाभस योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- ❖ नाभस योगों के प्रकार को समझा सकेंगे।
- ❖ 32 प्रकार के नाभस योगों को जान जायेंगे।
- ❖ नाभस योग के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- ❖ फलित ज्योतिष में नाभस योग की भूमिका को जान लेंगे।

1.3 नाभस योग परिचय

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक महर्षि पराशर द्वारा लिखित 'वृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ के नाभसयोगाध्याय में वर्णन करते हुए लिखा गया है कि नाभस योग के ३२ भेद एवं १८०० प्रभेद हैं। उन ३२ भेदों में से ३ आश्रय योग हैं, २ दल योग हैं, २० आकृति योग हैं तथा ७ संख्या योग कहे गये हैं। इस प्रकार नाभस योग को आश्रय, दल, आकृति एवं संख्या योगों में वर्गीकृत किया गया है। मूल श्लोक इस प्रकार है –

अधुना नाभसा योगा: कथ्यन्ते द्विजसत्तम्।
द्वात्रिंशत् तत्प्रभेदास्तु शतघ्नाष्टादशोन्मिता:।।
आश्रयाख्यास्त्रयो योगा दलसंज्ञं द्वयं तत:।
आकृतिर्विंशति: संख्या: सप्त योगा: प्रकीर्तिता:।। (श्लोक संख्या -१,२)

यहाँ द्वात्रिंशत् का अर्थ ३२ है। शतघ्नाष्टादश का अर्थ १८०० है। आश्रयाख्यास्त्रयो का अर्थ तीन

प्रकार का आश्रय योग, दलसंज्ञं द्वयं का अर्थ २ दलयोग, आकृतिर्विंशति: का अर्थ २० प्रकार के आकृति योग तथा संख्या: सप्त योगा: का अर्थ ७ प्रकार के संख्या योग है।

नाभस योगों के नाम –

रज्जुश्च मुसलश्चैव नलश्चेत्याश्रयास्त्रय:।
मालाख्य: सर्पसंज्ञश्च दलयोगौ प्रकीर्तितौ।।
गदाख्य: शकटाख्यश्च श्रृगांटक विहंगमौ।
हल वज्र यवाश्चैव कमलं वापियूपकौ।।
शर-शक्ति-दण्ड-नौका-कूट-च्छत्र-धनूंषि च।
अर्धचन्द्रस्तु चक्रं च समुद्रश्चेति विंशति:।।
संख्याख्या वल्लकी-दाम-पाश-केदार-शूलका:।
युगो गोलश्च सप्तैते युक्ता दन्तमिता द्विज।। (श्लोक संख्या ३-६)

अर्थात् नाभस के ३२ भेदों में से रज्जु, मुसल तथा नल ये ३ आश्रय योग हैं। माला एवं सर्प –ये दो दलयोग कहे गये हैं। गदा, शकट, श्रृंगाटक, विहंगम (पक्षी), हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, चाप, अर्धचन्द्र, चक्र एवं समुद्र- ये २० आकृतियोग कहे गये हैं। बल्लकी, दाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोल – ये ७ संख्यायोग कहे गये हैं। इस प्रकार ये सभी नाभस योग कहलाते हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

संज्ञा	**योगों का नाम**
आश्रय	रज्जु, मुसल तथा नल
दल	माला एवं सर्प
आकृति	गदा, शकट, श्रृंगाटक, विहंगम (पक्षी), हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, चाप, अर्धचन्द्र, चक्र एवं समुद्र
संख्या	बल्लकी, दाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोल

1.3.1 नाभस योगों के लक्षण

आश्रय योग के लक्षण –

सर्वैश्चरे स्थितै रज्जु: स्थिरस्थैर्मुसल: स्मृत:।
नलाख्यो द्विस्वभावस्थैराश्रयाख्या इमे स्मृता:।। (श्लोक संख्या -७)

यदि समस्त ग्रह चर (१,४,७,१०) राशि में स्थित हों तो **'रज्जु'** नामक योग होता है। सभी ग्रह यदि स्थिर (२,५,८,११) राशि में स्थित हों तो **'मुसल'** नामक योग होता है और सभी ग्रह द्विस्वभाव (३,६,९,१२) राशि में हों तो **'नल'** नामक योग होता है। **ये सभी चरादि राशियों के आश्रित होने के कारण आश्रय योग कहलाते हैं।** इन सभी योगों को आप कुण्डली में आप इस प्रकार भी समझ सकते हैं –

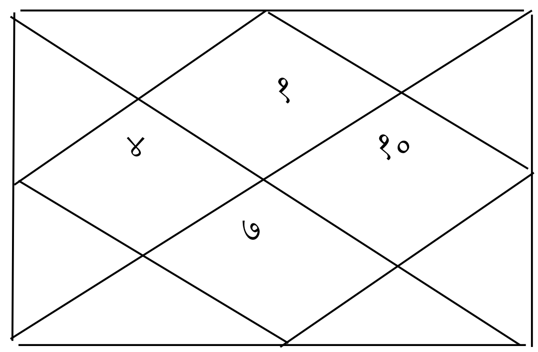

यदि समस्त सूर्यादि ग्रह कुण्डली के उक्त दिए गए चार स्थान में हो तो **रज्जु** नामक योग बनेगा।

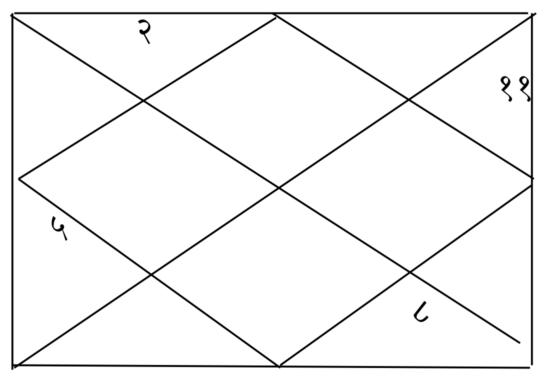

यदि सूर्यादि समस्त ग्रह कुण्डली के उक्त दिए गए चार स्थान में हो तो **मुसल** नामक योग बनेगा।

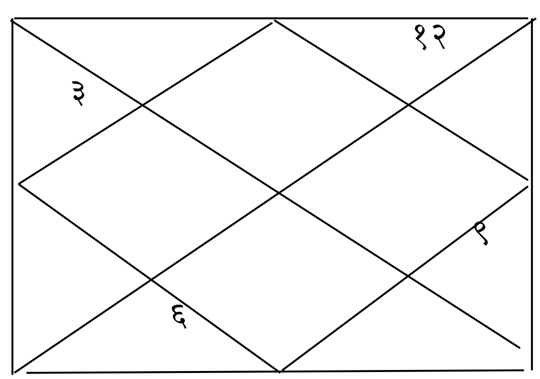

यदि सूर्यादि समस्त ग्रह कुण्डली के उक्त चार स्थान में हो तो **नल** नामक योग बनेगा।

दलयोग के लक्षण –

केन्द्रत्रयगतैः सोम्यैः पापैर्वा दलसंज्ञकौ।
क्रमान्मालाभुजंगाख्यौ शुभाऽशुभफलप्रदौ।। (श्लोक संख्या -८)

अर्थात् तीन केन्द्र में सभी शुभ ग्रह हों या तीन केन्द्र में समस्त पापग्रह हों तो क्रम से वे माला एवं सर्प योगनामक दलयोग कहलाते हैं। ये योग शुभ और अशुभ फलदायक होते हैं। तीन केन्द्र से तात्पर्य यहाँ १,४,७,१० स्थानों में से किसी तीन में है।

विशेष - **केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम्।**
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ।।

इसके अनुसार बुध, गुरु, शुक्र – ये तीनों यदि तीन केन्द्र (१,४,७,१० में से किसी तीन में) हों तथा पापग्रह केन्द्र से अन्यत्र हो तभी माला योग होता है। इसी प्रकार रवि, शनि तथा भौम ये ३ केन्द्र में हों और शुभ ग्रह केन्द्र से अन्य स्थानों में हो तभी सर्पयोग कहलाता है।

आकृति योगों के लक्षण –

आसन्नकेन्द्रद्वयगैः सर्वैर्योगो गदाह्वयः।
शकटं लग्नजायास्थैः खाम्बुगैर्विहगः स्मृतः।।
योगः श्रृंगाटकं नाम लग्नात्मजतपःस्थितैः।
अन्यस्थानात् त्रिकोणस्थैः सर्वैर्योगो हलाभिधः।।
लग्नजायास्थितैः सौम्यैः पापाख्यैः खाम्बुसंस्थितैः।
योगो वज्राभिधः प्रोक्तः विपरीतस्थितैर्यवः।।

समीपस्थ दो केन्द्र में सभी ग्रह बैठे हों तो **गदा** नामक योग होता है। लग्न तथा सप्तम में समस्त ग्रह हों तो **शकट** नामक योग होता है। चतुर्थ तथा दशम स्थान में सभी ग्रह स्थित हों तो **विहग** (पक्षी) नामक योग होता है। यदि लग्न से त्रिकोण (१,५,९) स्थान में सभी ग्रह बैठे हों तो **श्रृंगाटक** योग होता है। लग्न से भिन्न स्थान से त्रिकोण (२,६,१० अथवा ३,७,११ वाँ इस प्रकार से किसी तीन स्थान) में सभी ग्रह स्थित हों तो **हल** नामक योग होता है। लग्न, सप्तम में सभी शुभ ग्रह बैठे हों एवं चतुर्थ दशम में सभी पापग्रह बैठे हों तो **वज्र** नामक योग होता है। विपरीत होकर बैठे हों तो **यव** नामक योग होता है।

कमल तथा वापी योग के लक्षण –

सर्वकेन्द्रगतैः सर्वैर्मिश्रैः कमलसंज्ञकः।

केन्द्रादन्यत्रगैः सर्वैर्योगो वापीसमाह्वयः।। (श्लोक संख्या -१२)

अर्थात् समस्त ग्रह केन्द्र (१,४,७,१०) में ही स्थित हों तो **कमल** नामक योग होता है। यदि सभी ग्रह केन्द्र से भिन्न स्थानों (पणफर तथा आपोक्लिम) में ही बैठे हों तो **वापी** नामक योग होता है।

यूप, शर, शक्ति और दण्डयोगों के लक्षण –

यूपो लग्नाच्चतुर्भस्थैः शरस्तुर्याच्चतुर्भगैः।
शक्तिर्मदाच्चतुर्भस्थैर्दण्डो मध्याच्चतुर्भगैः।।

लग्न से क्रमशः ४ स्थानों में सभी ग्रह स्थित हों तो **यूप** नामक योग होता है। चतुर्थ से ४ स्थान में सभी ग्रह बैठे हों तो **शर** और सप्तम से ४ स्थान में सभी ग्रह हों तो **शक्ति** नामक योग होता है। दशम स्थान से ४ स्थान में सभी ग्रह हों तो **दण्ड** नामक योग होता है।

नौका-कूट-छत्र और चाप योगों के लक्षण –

लग्नात् सप्तमगैर्नौका कूटस्तुर्याच्च सप्तमैः।
छत्राख्यः सप्तमादेवं चापं मध्याद् भसप्तगैः।।

लग्न से लगातार ७ सात स्थान में सभी ग्रह हों तो **नौका** नामक योग होता है। चतुर्थ स्थान से सात स्थान में सभी ग्रह स्थित हों तो **कूट** नामक योग होता है। सप्तम स्थान से सात स्थानों में सभी ग्रह स्थित हों तो **छत्र** नामक योग होता है। इसी प्रकार दशम स्थान से सात स्थानों में सभी ग्रह बैठे हों तो **चाप** नामक योग होता है।

चक्र एवं समुद्रयोग के लक्षण –

लग्नादेकान्तरस्थैश्च षड्भगैश्चक्रमुच्यते।
धनादेकान्तरस्थैस्तु समुद्रः षड्गृहाश्रितैः।।

लग्न से प्रारम्भ कर एकान्तर से ६ स्थानों अर्थात् (१,३,५, ७, ९,११) में सभी ग्रह स्थित हों तो **चक्र** नामक योग होता है। इसी प्रकार धन (द्वितीय) भाव से एकान्तर स्थानों अर्थात् (२,४,६,८,१०,१२) में सभी ग्रह विद्यमान हों तो **समुद्र** नामक योग होता है। ये २० योग अपनी-अपनी आकृति के अनुरूप होने के कारण **आकृति** योग कहे गये हैं।

सात संख्यक योगों के लक्षण –

एकराशिस्थितैर्गोलो युगाख्यो द्विभसंस्थितैः।
शूलस्तु त्रिभगैः प्रोक्तः केदारस्तु चतुर्भगैः।।
पंचराशिस्थितैः पाशो दामाख्यः षड्गृहाश्रितैः।
वीणा सप्तभगैः सर्वैर्विहान्यानुदीरितान्।।

अर्थात् सभी ग्रह एक राशि में स्थित हों तो **गोलयोग**, २ राशि में सभी ग्रह हों तो **युग योग**, ३ राशि में समस्त ग्रह के रहने पर **शूलयोग,** ४ राशि में सभी ग्रह स्थित हों तो **केदारयोग,** ५ राशि में सभी ग्रह हों तो **पाशयोग,** ६ राशि में सभी ग्रह रहने पर **दामयोग** और ७ राशि में सभी हों तो **वीणा** नामक योग होता है। इससे पूर्व कथित योग के लक्षण न हों तभी इन योगों को जानना चाहिए। यदि पूर्वोक्त लक्षण हों तो पूर्वकथित योग ही जानना चाहिए।

बोध प्रश्न –

1. नाभस योग के भेदों की संख्या कितनी है।
   क. ३४ ख.३२ ग.३६ घ. ३८
2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र ग्रन्थ के अनुसार नाभस योग के प्रभेदों की संख्या कितनी है।
   क. ३२ ख. ३८ ग.१८०० घ.१६००
3. आकृति योगों की संख्या है –
   क. ३ ख.२ ग.५ घ. २०
4. सभी ग्रह एक राशि में स्थित हों तो कौन सा योग बनता है।
   क. युग योग ख. गोल योग ग. शूल योग घ. वीणा योग
5. लग्न से लगातार ७ सात स्थान में सभी ग्रह हों तो योग होता है-
   क. नौका योग ख. छत्र योग ग. चामर योग घ. शूल योग
6. समस्त ग्रह केन्द्र (१,४,७,१०) में ही स्थित हों तो कौन सा योग होता है।
   क. कमल योग ख. छत्र योग ग. चामर योग घ. युग योग
7. सभी ग्रह यदि स्थिर (२,५,८,११) राशि में स्थित हों तो योग होता है –
   क. मुसल योग ख. कमल योग ग. छत्र योग घ. वीणा योग

1.3.2 ३२ नाभस योगों के शुभाशुभ फल –

रज्जु – **अटनप्रिया: सुरूपा: परदेशस्वास्थ्यभागिनो मनुजा:।**
क्रूरा: खलस्वभावा रज्जुप्रभवा: सदा कथिता:।।

मुसल - **मानज्ञानधनाद्यैर्युक्ता भूपप्रिया: ख्याता:।**
बहुपुत्रा: स्थिरचित्ता मुसलमुत्था भवन्ति नरा:।।

नल - **न्यूनातिरिक्तदेहा धनसंचयभागिनोऽतिनिपुणाश्च।**
बन्धुहिताश्च सुरूपा नलयोगे सम्प्रसूयन्ते।।

रज्जु योग में उत्पन्न जातक भ्रमणप्रिय, सुन्दर रूप वाला, परदेश में जाने से स्वास्थ्य लाभ करने वाला, क्रोधी और दुष्ट स्वभाव वाला होता है। मुसल योग में उत्पन्न पुरूष मानी, ज्ञानी, धनादि से युक्त, राजमान्य, विख्यात, अधिक पुत्र वाला और स्थिर स्वभाव वाला होता है। नल योग में समुत्पन्न जातक कम या अधिक देह वाला, धन संग्रह करने वाला, अत्यन्त चतुर, बन्धुओं का प्रिय और सुन्दर रूप वाला होता है।

माला – **नित्यं सुखप्रधाना वाहनवस्त्रान्नभोगसम्पन्ना:।**
कान्ता: सुबहुस्त्रीका मालायां सम्प्रसूता: स्यु:।।

सर्प - **विषमा: क्रूरा नि:स्वानित्यं दु:खार्दिता: सुदीनाश्च।**
परभक्षपाननिरता: सर्पप्रभवा भविन्त नरा:।।

माला योग में उत्पन्न जातक नित्य सुख भोगने वाला, वाहन, वस्त्र, अन्नादि के भोग से सम्पन्न, सुन्दर और अधिक पत्नी वाला होता है। सर्प योग में उत्पन्न जातक विषम प्रकृति वाला, क्रूर, धनहीन, नित्यदु:खी, दीन और दूसरों से अन्न मांगकर खाने वाला होता है।

गदा - **सततोद्युक्तार्थवशा यज्वान: शास्त्रगेयकुशलाश्च।**
धनकनकरत्नसम्पत्संयुक्ता मानवा गदायां तु।।

शकट - **रोगार्ता: कुनखा मूर्खा: शकटानुजीविनो नि:स्वा।**
मित्रस्वजनविहीना: शकटे जाता भवन्ति नरा:।।

पक्षी - **भ्रमणरूचयो विकृष्टा दूता: सुरतानुजीविना धृष्टा:।**
कलहप्रियाश्च नित्यं विहगे योगे सदा जाता:।।

श्रृंगाटक - **प्रियकलहा: समरसहा: सुखिनो नृपते: प्रिया: शुभकलत्रा:।**
आढया युवतिद्वेष्या: श्रृंगाटकसम्भवा मनुजा:।।

गदा योग में उत्पन्न जातक सदैव धनोपार्जन में रत, यज्ञकारक, शास्त्र एवं संगीत में दक्ष, धन, सुवर्ण एवं रत्नादि धातुओं से युक्त होता है। शकट योग में उत्पन्न जातक रोग से पीड़ित, कुनखी, मूर्ख, गाड़ी से जीविका संचालन करने वाला, निर्धन एवं मित्रादि स्वजनों से हीन होता है। पक्षी रोग में उत्पन्न जातक भ्रमणकारी, परतन्त्र, दूत, सुरत से प्राप्त जीविका वाला, ढीठ तथा कलहप्रिय होता है। श्रृंग योग में समुत्पन्न जातक कलहकारक, युद्धकारक, सुखी, राजा का प्रिय, मनोहर पत्नी वाला, धनी और स्त्री का द्वेषी होता है।

हल - **बह्वाशिनो दरिद्रा: कृषीबला दु:खिताश्च सोद्वेगा:।**
बन्धुसुहृद्भि: शक्ता: प्रेष्या हलसंज्ञके सदा पुरुषा:।।

वज्र – **आद्यन्तवय: सुखिन: नरा: सुभगा निरीहाश्च।**
भाग्यविहीना वज्रे जाता: खला विरूद्धाश्च।।

यव - **व्रतनियममंगलपरा वयसो मध्ये सुखार्थपुत्रयुता:।**
दातार: स्थिरचित्ता यवयोगभवा: सदा पुरुषा:।।

कमल- **विभवगणाढया: पुरुषा: स्थिरायुषो विपुलकीर्तय: शुद्धा:।**
शुभशतका: पृथ्वीशा: कमलभवा मानवा नित्यम्।।

वापी - **निधिकरणे निपुणधिय: स्थिरार्थसुखसंयुत: सुतयुताश्च।**
नयनसुखसम्प्रहृष्टा वापीयोगेन राजान:।।

यूप - **आत्मविदिज्यानिरत: स्त्रिया युत: सत्वसम्पन्न:।**
व्रतनियमरतमनुष्यो यूपे जातो विशिष्टश्च।।

शर - **इषुकारा: बन्धनपा: मृगयाधनसेविताश्च मांसादा:।**
हिंस्रा: कुशिल्पकारा: शरयोगे मानवा: प्रसूयन्ते।।

शक्ति - **धनरहितविफलदु:खितनीचालसाश्चिरायुष: पुरुषा:।**
संग्रामबुद्धिनिपुणा: शक्त्यां जाता: स्थिरा: शुभगा:।।

दण्ड - **हतपुत्रदारनि:स्वा: सर्वत्र च निर्घृणा: स्वजनबाह्या:।**
दु:खितनीचप्रेष्या दण्डप्रभवा भवन्ति नरा:।।

अर्थात् **हल** योग में उत्पन्न जातक अधिक भोजन करने वाला, दरिद्र, कृषक, दु:खी, चिन्ताकुल, मित्र एवं बन्धुओं से युत और नौकर होता है। **वज्र** योग में उत्पन्न जातक बाल्य तथा वृद्धावस्था में सुखी, शूर, सुन्दर, नि:स्पृह, भाग्यहीन, दुष्ट एवं दूसरों से वैरभाव करने वाला होता है। **यव** योग में उत्पन्न जातक व्रत, नियम एवं अन्य मंगल कृत्य में रत, मध्यमावस्था में सुखी, धन, पुत्रों से युक्त, दानी तथा स्थिर चित्तवाला होता है। **कमल** योग में उत्पन्न जातक धनी, गुणों से युक्त, दीर्घायु, विख्यात कीर्ति वाला, शुद्ध, सैकड़ों शुभ कार्य करने वाला एवं राजी होता है। **वापी** योग में उत्पन्न पुरुष धनसंग्रह करने में निपुण, स्थिर धन एवं सुखों से युक्त, पुत्रों से युक्त, नाटक-नृत्यादि को देखने में सुखी और राजा होता है। **यूप** योग में समुत्पन्न जातक आत्मा का ज्ञाता, यज्ञकर्ता, स्त्री से युक्त, बलवान, व्रत-नियम में रत रहने वाला और विशिष्ट पुरुष होता है। **शर** योग में उत्पन्न जातक बाण बनाने वाला, कारागार का स्वामी, शिकार के माध्यम से धन प्राप्त करने वाला, मांसभक्षी, हिंसक और कुकर्म करने वाला होता है। **शक्ति** योग में समुत्पन्न मनुष्य अर्थहीन एवं फलहीन जीवन वाला, दु:खी, नीच, आलसी, दीर्घायु, युद्धकारक, स्थिर चित्त वाला एवं सुन्दर होता है। **दण्ड** योग में उत्पन्न

जातक, पुत्र, स्त्री और धन से वंचित, निर्दयी, स्वजनों से परित्यक्त, दु:खी, नीच और नौकर होता है।

नौका योग –

सलिलोपजीविविभवा: बह्वाशा: ख्यातकीर्तयो दुष्टा:।
कृपणा मलिना लुब्धा नौसंजाता: खला: पुरुषा:।।

कूट योग –

अनृतकथनबन्धपा निष्किञ्चना: शठा: क्रूरा:।
कूटसमुत्था नित्यं भवन्ति गिरिदुर्गवासिनो मनुजा:।।

छत्र योग – **स्वजनाश्रयो दयावान्नानानृपवल्लभ: प्रकृष्टमति:।**
प्रथमेऽन्त्ये वयसि नर: सुखवान् दीर्घायुरातपत्री स्यात्।।

चाप योग - **आनृतिकगुप्तपालाश्चौरा: कितवाश्च कानने निरता:।**
कार्मुकयोगे जाता भाग्यविहीना: शुभा वयोमध्ये।।

अर्धचन्द्र योग - **सेनापतय: सर्वे कान्तशरीरा नृपप्रिया बलिन:।**
मणिकनकभूषणायुता भवन्ति योगेऽर्धचन्द्राख्ये।।

चक्र योग – **प्रणताऽऽशेषनराधिप किरीटरत्नप्रभा स्फुरितपाद:।**
भवति नरेन्द्रो मनुजश्चक्रे यो जायते योगे।।

समुद्र योग - **बहुरत्नधनसमृद्धा भोगयुता धनजनप्रिया: ससुता:।**
उदधिसमुत्था: पुरुषा: स्थिरविभवा: साधुशीलाश्च।।

अर्थात् नौका योग में उत्पन्न जातक जलोत्पन्न (मोती, शंख आदि) वस्तुओं से जीविका चलाने वाला, धनी, महत्वाकांक्षी, विख्यात कीर्ति वाला, दुष्ट कंजूस, मलिन और लोभी होता है।

कूट योग में उत्पन्न मनुष्य मिथ्यावादी, जेल का अधिकारी, दरिद्र, शठ, क्रूर, कूटज्ञ तथा पर्वत या दुर्ग में रहने वाला होता है। छत्र योग में उत्पन्न मुनष्य अपने जनों का आश्रित, दयालु, अनेक राजाओं का मान्य, उत्तम बुद्धि से युक्त, प्रथम तथा अन्तिमावस्था में सुखी, दीर्घायु तथा आतपत्री होता है। चाप योग में उत्पन्न मनुष्य मिथ्यावादी, गुह्यपाल (जेलर), चोर, धूर्त, जंगलचारी, भाग्यरहित एवं मध्य अवस्था में सुखी होता है। अर्धचन्द्र योग में समुत्पन्न मनुष्य सेनापति, सुन्दर शरीर, राजा का प्रिय, बलवान एवं मणि–सुवर्णादि भूषणों से युक्त होता है। चक्र योग में उत्पन्न जातक अशेष (सम्पूर्ण) राजाओं से वन्दित हैं चरण जिनके, ऐसा चक्रवर्ती राजा होता है। समुद्र योग में उत्पन्न मनुष्य समधिक रत्नादि से परिपूर्ण, भोगवान, जनों का प्रिय, पुत्रयुक्त, स्थिर सम्पत्ति वाला और सुन्दर शील वाला होता है।

वीणा योग – **प्रियगीतनृत्यवाद्या निपुणा: सुखिनश्च धनवन्त:।**
नेतारो बहुभृत्या वीणायां कीर्तिता: पुरुषा:।।

दाम योग - **दाम्नि सुजनोपकारी नयधनयुक्तो महेश्वर: ख्यात:।**
बहुसुतरत्नसमृद्धो धीरो जायेत विद्वांश्च।।

पाश योग - **पाशे बन्धनभाज: कार्ये दक्षा: प्रपंचकाराश्च।**
बहुभाषिणो विशीला बहुभृत्या: सम्प्रतानाश्च।।

केदार योग - **सुबहूनामुपयोज्या: कृषीबला: सत्यवादिन: सुखिन:।**
केदारे सम्भूताश्चलस्वभावा धनैर्युक्ता:।।

शूल योग - **तीक्ष्णालसधनहीना हिंस्रा: सुबहिष्कृता महाशूरा:।**
संग्रामे लब्धयशा शूले योगे भवन्ति नरा:।।

युग योग - **पाखण्डवादिनो वा धनरहिता वा बहिष्कृता लोके।**
सुतमातृधर्मरहिता युगयोगे ये नरा जाता:।।

गोल योग - **बलसंयुक्ता विधना विद्याविज्ञानवर्जिता मलिना:।**
नित्यं दु:खितदीना गोले योगे भवन्ति नरा:।।
सर्वास्वपि दशास्वेते भवेयु: फलदायिन:।
प्राणिनामिति विज्ञेया: प्रवदन्ति तवाग्रजा:।।

इस प्रकार **वीणा योग** में उत्पन्न मनुष्य गाने तथा नाचने में एवं बजाने में प्रेम रखने वाला तथा निपुण, सुखी, धनी, नेता और अधिक नौकर वाला होता है। **दाम योग** में उत्पन्न मनुष्य दूसरे का कल्याण करने वाला, नीति के द्वारा धनोपार्जन करने वाला, अधिक ऐश्वर्यवान, विख्यात, पुत्ररत्नादि से युक्त, धीर तथा विद्वान होता है। **पाश योग** में उत्पन्न जातक कारागार का भागी, कार्य में दक्ष, प्रपंची, अधिक वक्ता, शीलरहित, अधिक नौकरवाला और अधिक परिजन वाला होता है। **केदार योग** में उत्पन्न सभी का उपकार करने वाला कृषि कार्यकारक, सत्य बोलने वाला, सुखी, चंचल स्वभाव वाला और धनवान होता है। शूल योग में उत्पन्न जातक तीक्ष्ण स्वभाव वाला, आलसी, धनहीन, हिंसक, समाज से बहिष्कृत, अत्यन्त वीर एवं युद्ध में यश प्राप्त करने वाला होता है। युग योग में उत्पन्न जातक पाखण्डी, धनहीन, समाज से बहिष्कृत एवं पुत्र, माता, पिता तथा धर्म से हीन होता है। गोल योग में उत्पन्न जातक बलवान, धनहीन, विद्या तथा विज्ञान से हीन, मलिन, सदैव दु:खी एवं दीन होता है।

उक्त फल तत् तत् ग्रहों की दशा में प्राणियों को प्राप्त होता है, ऐसा ऋषियों का वचन हैं।

आचार्य वैद्यनाथ कृत जातकपारिजात ग्रन्थ के अनुसार भी नाभसयोग पूर्वोक्तानुसार मुख्यत: चार प्रकार के होते हैं – 1. आकृति योग 2. आश्रययोग 3. दलयोग और 4. संख्यायोग। आकृतियोग के यूप, इषु आदि २० भेद होते है। आश्रय योग के रज्जु, मुसल और नल तीन भेद, दल योग के स्रक् और सर्प- दो भेद तथा संख्यायोग के वीणा, वरदाम आदि – सात भेद होते हैं। इस प्रकार नाभस योग के कुल बत्तीस (32) भेद होते हैं।

जातकपारिजात ग्रन्थ में कथित नाभसयोग का मूल श्लोक –

यूपेषुशक्तियवदण्डगदासमुद्र-
च्छत्रार्द्धचन्द्रशकटाम्बुजपक्षियोगा:।
नौचक्रवज्रहलकार्मुककूटवापी
श्रृंगाटकाश्च विविधाकृतिविंशति: स्यु:।।
रज्जुर्नलश्च मुसलस्त्रितयाश्रयाख्या:
स्रग्भोगिनौ तु दलयोगभवौ भवेताम्।
वीणादयश्च कथिता वरदामपाश
केदारशूलयुगगोलकसप्तसंख्या:।।

अर्थात् यूप, इषु, शक्ति, यव, दण्ड, गदा, समुद्र, छत्र, अर्धचन्द्र, शकट, अम्बुज, पक्षि, नौका, चक्र, वज्र, हल, कार्मुक, कूट, वापी और २० श्रृंगाटक ये बीस योग आकृति योग नाम से जाने जाते हैं। रज्जु , मुसल और नल – ये आश्रय योग के नाम से प्रसिद्ध है। स्रक और भोगिन ये दल योग है तथा वीणा, वरदाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोलक इन सात योगों को संख्या योग कहते हैं। नाभसयोगों की संख्या के सम्बन्ध में वराहमिहिर का निम्न वचन द्रष्टव्य है –

नवदिग्वसवस्त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता द्वित्रिविकल्पजा: स्यु:।
यवनास्त्रिगुणा हि षट्शती सा कथिता विस्तरतोऽत्र सत्समासत:।।

योगों में परस्पर समानता

योगा व्रजन्त्याश्रयजा: समत्वं यावाब्जवज्राण्डगोलकाद्यै:।
केन्द्रोपगै: प्रोक्तफलौ दलाख्यावित्याहुरन्ये न पृथक् फलौ तौ।।

अर्थात् आश्रय योग का फल यव, कमल, वज्र, पक्षि, गोलक, केदार और शूल योगों के समान तथा दलयोगद्वय का फल केन्द्रस्थ ग्रहों के समान होने से इनके फल अलग से नहीं कहा है।

नाभस योगों की संख्या विवेचन –

प्रथम नाभस योगों के आकृति- संख्या- आश्रय और दल ये ४भेद होते हैं। इनमें आकृतियोग

के २०, संख्यायोग के ७, आश्रययोग के ३ और दलयोग के २ भेद होते हैं।

उक्त चारों भेदों में से आकृतियोग अकेला होने के कारण २० ही प्रकार का रहता है। परन्तु और अन्य दो-दो, तीन-तीन, चार-चार अर्थात् आकृति-संख्या, आकृति-संख्या-आश्रय और आकृति-संख्या-आश्रय-दल ये आपस में बदलने के कारण, ९,१०,८ को क्रम से ३,३ तथा ४ से गुणने पर जितने अंक हों उतने भेद होते हैं।

अर्थात् आकृति और संख्या के आपस में बदलने से ९× ३ = २७, आकृति-संख्या-आश्रय इनके आपस में बदलने से १० × ३ =३० और आकृति –संख्या-आश्रय-दल इनके आपस में बदलने से ८×४ = ३२ भेद होते हैं। वृहज्जातकम् में वराहमिहिर ने इन्हें संक्षेप में कहा है जबकि यवनों ने इनके विस्तारपूर्वक १८०० भेद कहे हैं।

यवन मत से आकृति योग के २३ भेद और संख्यादि ती योगों के आपस में बदलने से १२७ भेद ये दोनों भेद मिलकर १५० हुए। यही सब बारह राशियों के बदलने से १८०० हो जाते हैं। जैसे –

एक ही लग्न में सातों ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	७
दो-दो ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	२१
तीन-तीन ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	३५
चार-चार ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	३५
पाँच-पाँच ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	२१
छ:-छ: ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	७
सातों ग्रहों के बदलाव से भेद संख्या -	१
कुल योग =	१२७

आकृति योग यवनाचार्यों के मत से २३ = १५०

अब एक लग्न में १५० तो १२ लग्नों में क्या होगा?

१५० × १२ = १८०० भेद हुए।

कल्याणवर्मा कृत् सारावली में यवनादि आचार्यों द्वारा कथित १८०० प्रकार के नाभस योगों का वर्णन पूर्वोक्त के अनुसार ही है। वहाँ ३२ प्रकार के नाभस योगों का मूल श्लोक इस प्रकार है-

नौच्छत्रकूटकार्मुकश्रृंगाटक्वज्रदामनीपाशा:।
वीणासरोजमुसला वापीहलशरसमुद्रचक्राणि।।
माला सार्पार्धेन्दु यवकेदारौ गदाविहगयूपा:।
युगशकटशूलदण्डा रज्जु: शक्तिस्तथा नलो गोल:।।

सचराचरस्य जगतो योगैरेभि: प्रकीर्त्यते प्रसव:।

आश्रयजातान् प्राहुर्माणित्था मुसलरज्जुनलयोगान्।।

पूर्वोक्त ग्रन्थानुसार ही इस श्लोक में भी नाभस योगों का नाम बतलाया है। इसी प्रकार मन्त्रेश्वर कृत् फलदीपिका नामक ग्रन्थ में भी नाभस योगों का उल्लेख मिलता है, जो लगभग पूर्व के अनुसार ही है।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक महर्षि पराशर द्वारा लिखित 'वृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ के नाभसयोगाध्याय में वर्णन करते हुए लिखा गया है कि नाभस योग के ३२ भेद एवं १८०० प्रभेद हैं। उन ३२ भेदों में से ३ आश्रय योग हैं, २ दल योग हैं, २० आकृति योग हैं तथा ७ संख्या योग कहे गये हैं। इस प्रकार नाभस योग को आश्रय, दल, आकृति एवं संख्या योगों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम नाभस योगों के आकृति-संख्या- आश्रय और दल ये ४भेद होते हैं। इनमें आकृतियोग के २०, संख्यायोग के ७, आश्रययोग के ३ और दलयोग के २ भेद होते हैं। चारों भेदों में से आकृतियोग अकेला होने के कारण २० ही प्रकार का रहता है। परन्तु और अन्य दो-दो, तीन-तीन, चार-चार अर्थात् आकृति-संख्या, आकृति-संख्या-आश्रय और आकृति-संख्या-आश्रय-दल ये आपस में बदलने के कारण, ९,१०,८ को क्रम से ३,३ तथा ४ से गुणने पर जितने अंक हों उतने भेद होते हैं। अर्थात् आकृति और संख्या के आपस में बदलने से ९× ३ = २७, आकृति-संख्या-आश्रय इनके आपस में बदलने से १० × ३ =३० और आकृति –संख्या-आश्रय-दल इनके आपस में बदलने से ८×४ = ३२ भेद होते हैं। वृहज्जातकम् में वराहमिहिर ने इन्हें संक्षेप में कहा है जबकि यवनों ने इनके विस्तारपूर्वक १८०० भेद कहे हैं। आश्रय योग का फल यव, कमल, वज्र, पक्षि, गोलक, केदार और शूल योगों के समान तथा दलयोगद्वय का फल केन्द्रस्थ ग्रहों के समान होने से इनके फल अलग से नहीं कहा है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

नाभस योग – वृहत्पराशरहोराशास्त्र के अनुसार नाभस योग के ३२ प्रकार के भेद एवं १८०० प्रभेद बतलाए गये है। वस्तुत: नाभस योग भी राज योग के अन्तर्गत ही आता है।

आकृति योग – ३२ प्रकार के नाभस योग के अन्तर्गत यूप, इषु आदि २० प्रकार आकृति योग के कहे गये है।

दल योग – दल योग २ प्रकार के हैं।

आश्रय योग – आश्रय के तीन भेद कहे गयें है।

संख्या योग – संख्या योग के ७ भेद कहे गये हैं।

गोल योग – सभी ग्रह एक राशि में स्थित हो तो गोल योग बनता है।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. घ
4. ख
5. क
6. क
7. क

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र - नाभसयोगाध्याय।
2. वृहज्जातकम् – नाभसयोगाध्याय:।
3. जातकपारिजात – नाभसयोगाध्याय:।
4. सारावली – नाभसयोगाध्याय:।

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टीकाकार – गोपेश ओझा।
2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टीकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।
3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।
4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाभस योगों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. आश्रय योग के भेदों का वर्णन करें।

3. दल योग क्या है? स्पष्ट कीजिये।

4. संख्या योग से आप क्या समझते है?

5. आकृति योग के भेद का उल्लेख कीजिये।

6. नाभस योग के भेद-प्रभेदों का स्पष्टतया उल्लेख कीजिये।

इकाई - 2 राज योग

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 राज योग परिचय

2.3.1 विविध ग्रन्थानुसार राज योग विचार

2.3.2 राज योग के स्वरूप एवं प्रभाव

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई षष्ठ सेमेस्टर (BAJY(N)-223) के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – राज योग। इससे पूर्व आपने नाभस योग से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'राज योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'राज योग' फलित ज्योतिष का ही नहीं वरन् मानव जीवन से जुड़ा भी एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में राजा की तरह जीवन व्यतीत करने हेतु इच्छुक रहता है। किसके जीवन में राज योग होगा अथवा नहीं? इन समस्त विषयों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'राज योग' के बारे में उसके स्वरूप, महत्व एवं फल का विधिवत् शास्त्रानुसार अनुशासन करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- राज योग क्या है? इसको परिभाषित कर सकेंगे।
- राज योग को समझा सकेंगे।
- राज योग कैसे बनता है, इसकी जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- विविध प्रकार के राजयोगों का अध्ययन कर सकेंगे।
- मानव जीवन में राज योग की महत्ता को बतला सकेंगे।

2.3 राज योग परिचय

ज्योतिष शास्त्र के फलित या होरा स्कन्ध के अन्तर्गत 'राज योग' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, जिसका मानव जीवन के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि देखा जाय तो प्रायः प्रत्येक मानव अपने जीवन में राज योग की इच्छा या अभिलाषा रखता है, किन्तु सभी मानव के जीवन में राजयोग हो यह कथमपि संभव नहीं है। वस्तुतः राजयोग का निर्माण भी मानव द्वारा पूर्वजन्म में कृत्य शुभाशुभ कर्म फल पर ही आधारित होता है।

ज्योतिषशास्त्र के जातक या होरास्कन्ध के अन्तर्गत जितने भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं उनका अध्ययन करने पर प्राय: सभी ग्रन्थों में राजयोग का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इस इकाई में मेरा यह प्रयास रहेगा कि आप सभी जिज्ञासु अध्येताओं के लिए फलित ज्योतिष के कुछ प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए आपको राजयोग से सम्बन्धित तथ्यों से अवगत करा सकुँ।

राज योग क्या है? यदि इस पर विचार किया जाय तो सामान्यतः जिस मनुष्य का जीवन राजा के समान व्यतीत हो, उसे 'राजयोग' कहा जाता है। राज योग का शाब्दिक अर्थ भी है - राजा के समान योग। ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों ने ग्रहों की स्थिति के आधार पर मानव के जीवन में होने वाले राजयोगों का उल्लेख विविध प्रकार से अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

2.3.1 विविध ग्रन्थानुसार राज योग विचार

सर्वप्रथम वराहमिहिर कृत् **'वृहज्जातकम्'** नामक ग्रन्थ से आरम्भ करते हैं। वृहज्जातकम् के राजयोगाध्याय में यवनाचार्य और जीवशर्मा के मतानुसार 'राजयोग' का वर्णन हमें इस प्रकार मिलता है। **मूल श्लोक-**

प्राहुर्यवनाः स्वतुंगैः क्रूरैः क्रूरमतिर्महीपतिः।
क्रूरैस्तु न जीवशर्मणः पक्षे क्षित्यधिपः प्रजायते।।

श्लोक का अर्थ है कि यदि किसी जातक के जन्मकाल में एक से अधिक शुभग्रह यदि अपने उच्च स्थान में स्थित हों तो वह जातक सुबुद्धि वाला राजा होता है। यदि क्रूरग्रह अपने उच्चस्थान में स्थित हो तो पापबुद्धि वाला राजा होता है। यह यवनाचार्य का मत है।

अपने उच्चस्थानों में क्रूरग्रहों के रहने से वह राजा नहीं होता है किन्तु राजा के तुल्य धनवान् होता है। यह जीवशर्मा का मत है।

बत्तीस प्रकार के राजयोग -

वक्रार्कजार्कगुरूभिः सकलैस्त्रिभिश्च।
स्वोच्चेषु षोडश नृपाः कथितैकलग्ने।।
द्वयेकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने।
स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः।। (वृहज्जातकम् राजयोगाध्याय, श्लोक-2)

अर्थात् जन्मकुण्डली में यदि भौम-शनि-सूर्य और गुरू ये चारों ग्रह अपने उच्चस्थानों में स्थित होकर इनमें से एक लग्न में स्थित हों तो चार प्रकार के राजयोग होते हैं। जैसे- मेष में सूर्य, कर्क में वृहस्पति, तुला में शनि और मकर में मंगल हो तथा शेषग्रह अन्यत्र कहीं भी हों तब लग्न में मेष राशि हो तो **एक**, कर्क राशि हो तो **दो**, तुला राशि हो तो **तीन** और मकर राशि हो तो **चार** ये **राजयोग** होते हैं।

इन्हीं चारों में से तीन ग्रह यदि अपने उच्चस्थानों में स्थित हों और उनमें से एक लग्न में हो तो बारह प्रकार के राजयोग होते हैं। जैसे- मेष में सूर्य, कर्क में गुरू और तुला में शनि तथा शेष ग्रह कहीं भी हों तब ऐसे में लग्न में मेष राशि हो तो **एक**, कर्क राशि हो तो **दो** और तुला राशि हो तो **तीन**।

मेष में सूर्य, कर्क में वृहस्पति और मकर में मंगल हो तथा शेषग्रह कहीं भी हों तब लग्न में मेष राशि हो तो **चौथा**, कर्क राशि हो तो **पाँचवाँ** और मकर राशि हो तो **छठा**।

मेष में सूर्य, तुला में शनि तथा मकर में मंगल हो और शेष ग्रह कहीं भी हों तब लग्न में मेष राशि रहे तो **सात**, तुला राशि रहे तो **आठ** और मकर राशि रहे तो **नव**।

कर्क में वृहस्पति, तुला में शनि और मकर में मंगल हो तथा शेषग्रह कहीं भी हो तब लग्न में कर्क राशि रहे तो **दश**, तुला राशि रहे तो **ग्यारह** और मकर राशि रहे तो **बारह**।

उपरोक्त बारह और चार मिलाकर सोलह राजयोग होते हैं। पूर्वोक्त चारों ग्रहों में से दो ग्रह अपने उच्च स्थानों में स्थित होकर लग्न में स्थित हों और चन्द्रमा अपनी राशि में हो तो बारह प्रकार के राजयोग होते हैं।

जैसे मेष में सूर्य तथा कर्क में चन्द्रमा और वृहस्पति दोनों हों, शेष ग्रह कहीं भी हों तो लग्न में मेष राशि हो तो **एक** और कर्क राशि हो तो **दो**।

मेष में सूर्य तथा कर्क में चन्द्रमा तुला में शनि और शेष ग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में यदि मेष राशि हो तो **तीन**, तुला राशि हो तो **चार**।

मेष में सूर्य तथा कर्क में चन्द्रमा और मकर में मंगल हो शेषग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में यदि मेष राशि हो तो **पाँच**, मकर राशि हो तो **छः**।

कर्क में वृहस्पति और चन्द्रमा, तुला में शनि हो शेषग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में यदि कर्क राशि हो तो **सात** और तुला राशि हो तो **आठ**।

कर्क में वृहस्पति और चन्द्रमा, मकर में मंगल और शेषग्रह कहीं हो, तब लग्न में कर्क राशि हो तो **नव** एवं मकर राशि हो तो **दश**।

तुला में शनि, मकर में मंगल और कर्क में चन्द्रमा तथा शेषग्रह कहीं अन्यत्र हों तो लग्न में तुला राशि हो तो **ग्यारह** और मकर राशि हो तो **बारह**।

पूर्वोक्त सोलह और ये बारह मिलकर (16+12) = 28 राजयोग होते हैं। पूर्वोक्त चारों ग्रहों में एक ग्रह अपने उच्चस्थान में रहकर लग्न में स्थित हो और चन्द्रमा अपने ही स्थान में हो तो चार प्रकार के राजयोग होते हैं।

जैसे - कर्क में चन्द्रमा, मेष में सूर्य और शेष ग्रह अन्यत्र हों तब लग्न में मेश राशि हो तो **एक**। कर्क में चन्द्रमा तथा वृहस्पति और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हो तब लग्न में कर्क राशि हो तो **दो**। कर्क में चन्द्रमा, तुला में शनि और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हों तब लग्न में तुला राशि हो तो **तीन**। कर्क में चन्द्रमा, मकर में मंगल और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हों तब लग्न में मकर राशि हो तो **चार**। इस प्रकार

28 और ये चार मिलकर (28+4)= **कुल 32** प्रकार के राजयोग होते हैं।

अब 44 प्रकार के राजयोग कहते हैं -

वर्गोत्तमेगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्रवर्जितैः।

चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः॥ (श्लोक संख्या -3)

अर्थात् वर्गोत्तम में लग्न हो और उसको (चन्द्रमा को छोड़) अन्य चार, पॉच या छः ग्रह देखते हों तो 22 राजयोग और चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांश में स्थित हों और उसको भी चार, पॉच या छः ग्रह देखते हों तो भी 22 राजयोग इस तरह दोनों मिलकर 44 राजयोग होते हैं।

जैसे - वर्गोत्तम लग्न को देखने वाले सूर्य -मंगल-बुध और वृहस्पति हों तो **एक**

सूर्य-मंगल-बुध और शुक्र हों तो **दो,**

सूर्य-मंगल-बुध और शनि हों तो **तीन,**

सूर्य-मंगल-बृहस्पति और शुक्र हों तो **चार,**

सूर्य-मंगल-वृहस्पति और शनि हों तो **पॉच**,

सूर्य-मंगल-शुक्र और शनि हों तो **छः**,

सूर्य-बुध-वृहस्पति और शुक्र हों तो **सात**,

सूर्य-बुध-वृहस्पति और शनि हों तो **आठ**,

सूर्य-बुध-शुक्र तथा शनि हों तो **नव**,

सूर्य-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **दश**,

मंगल-बुध-वृहस्पति और शुक्र हों तो **ग्यारह**,

मंगल-बुध-वृहस्पति और शनि हों तो **बारह**,

मंगल-बुध-शुक्र और शनि हों तो **तेरह**,

मंगल-बृहस्पति-शुक्र तथा शनि हों तो **चौदह**,

बुध-वृहस्पति-शुक्र तथा शनि हों तो **पन्द्रह**,

वर्गोत्तम लग्न को देखने वाले सूर्य-मंगल-बुध-वृहस्पति और शुक्र हों तो **एक**,

सूर्य-मंगल-बुध-वृहस्पति तथा शनि हों तो **दो**,

सूर्य-मंगल-बुध- शुक्र और शनि हों तो **तीन,**

सूर्य-मंगल-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **चार,**

सूर्य-बुध-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **पॉच,**

मंगल-बुध-वृहस्पति-शुक्र और शनि हों तो **छः**

और शनि हों तो 22 ये राजयोग होते हैं।

ऐसे ही वर्गोत्तम में स्थित चन्द्रमा को चार, पॉच तथा छः ग्रहों को देखने से 22 राजयोग होते हैं। पूर्वोक्त 22 योग मिलाकर कुल 44 राजयोग होते हैं। यहॉं एक-एक राशियों का नियम रखने पर इन योगों की संख्या 528 (44×12) होगी।

पाँच प्रकार के राजयोग –

यमे कुम्भेऽर्केऽजे शशिनि गवि तैरेव तनुगै।
नृयुक्सिंहालिस्थैः शशिजगुरुवक्रैर्नृपतयः।।
यमेन्दू तुंगेऽगे सवितृशशिजौ षष्ठभवने।
तुलाजेन्दुक्षेत्रैः ससितकुजजीवैश्च नरपौ।।(रा0यो0अ0 श्लोक४)

अर्थात् कुम्भ में शनैश्चर, मेष में सूर्य तथा वृष में चन्द्रमा हो तथा यहीं राशिलग्न रहे और बुध-वृहस्पति-मंगल ये क्रमशः मिथुन-सिंह तथा वृश्चिक राशियों में स्थित हों तो **तीन राजयोग** होते हैं। जैसे – शनि कुम्भ में- सूर्य मेष में- चन्द्रमा वृष में- बुध मिथुन में – वृहस्पति सिंह में – मंगल वृश्चिक में और शेष ग्रह कहीं अन्यत्र हों, तब कुम्भ लग्न हो तो **एक**, मेष हो तो **दो**, वृष हो तो **तीसरा राजयोग।**

शनि और चन्द्रमा अपने उच्चस्थानों में स्थित होकर लग्न में स्थित हो और सूर्य-बुध कन्या राशि में स्थित हों तथा तुला-मेष कर्क इन राशियों में क्रमशः शुक्र मंगल एवं वृहस्पति हों तो **दो राजयोग** होता है।

शुक्र-शनि तुला में- चन्द्रमा वृष में- सूर्य-बुध कन्या में – मंगल मेष में वृहस्पति कर्क में और शेष ग्रह अन्यत्र कहीं हो तब लग्न में तुला हो तो **एक** और वृष हो तो **दूसरा** राजयोग होता है। **यही दो और पूर्वोक्त तीन मिलकर (2+3= 5) पाँच राजयोग होते हैं।**

तीन प्रकार के राजयोग –

कुजे तुंगेऽर्केन्द्वोर्धनुषि यमलग्ने च कुपतिः।
पतिर्भूमेश्चान्यः क्षितिसुतविलग्ने सशशिनि।।
सचन्द्रे सौरेऽस्ते सुपरपतिगुरौ चापधरगे
स्वतुंगस्थे भानावुदयमुपयाते क्षितिपतिः।।

अर्थात् मंगल अपने उच्चस्थान मकर में हों और सूर्य तथा चन्द्रमा धनु राशि में और शनि मकरस्थ होकर लग्न में रहे तो उत्पन्न बालक राजा होता है।

मकर राशि लग्न में हो, उसी में चन्द्रमा और मंगल हों और सूर्य धनुराशि में स्थित हो तो जातक राजा होता है।

मेषराशि लग्न में हो और उसी में १० अंश के मध्य में सूर्य हो तथा धनुराशि में वृहस्पति, तुलाराशि में चन्द्रमा और शनि स्थित हों तो जातक राजा होता है। इस प्रकार ये तीन राजयोग हुए।

दो प्रकार के राजयोग –

वृषोदये मूर्तिधनारिलाभगै: शशांकजीवार्किसितैर्नृपोऽपर:।

सुखे गुरौ खे शशितिग्मदीधितीयमोदये लाभगतैर्नृपोऽपरै:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१७)

अर्थात् जन्मकाल में वृषलग्न हो और उसी में चन्द्रमा स्थित हो तथा वृहस्पति मिथुन में शनि तुला में एवं शेषग्रह मीन में स्थित हों तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है, अन्य हो तो धनवान होता है।

वृहस्पति चतुर्थ स्थान में, चन्द्रमा और सूर्य दशमस्थान में, शनि लग्न में तथा शेषग्रह ग्यारहवें स्थान में स्थित हों तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है, अन्य हो तो धनवान होता है।

अन्यं च –

मेषूरणायतनुगा: शशिमन्दजीवा
ज्ञारौ धने सितरवी हिबुके नरेन्द्र:।
वक्रासितौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्या
होरासुखास्तशुभखाप्तिगता: प्रजेश:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१८)

इस श्लोक का अर्थ है कि चन्द्रमा दसवें स्थान में, शनि ग्यारहवें स्थान में, वृहस्पति लग्न में, बुध व मंगल दूसरे स्थान में तथा शुक्र और सूर्य चौथे स्थान में स्थित हो तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है, अन्य हो तो धनवान् होता है।

मंगल व शनि लग्न में, चन्द्रमा चतुर्थ में, वृहस्पति सातवें में, शुक्र नवें में, सूर्य दसवें में और बुध ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो यदि वह राजा का पुत्र हो तो राजा होता है अन्य कुल में पैदा हो तो धनवान होता है।

एक प्रकार का राजयोग –

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेषूरणाश्रिते।
सजीवेऽस्ते निशानाथे राजा मन्दारयो: सुते।। (वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-११)

अर्थात् कन्या लग्न हो तथा उच्च स्थान (कन्या) स्थित बुध लग्नस्थ हो और दसवें (मिथुन) स्थान में

शुक्र, वृहस्पति के साथ चन्द्रमा सप्तम (मीन) में तथा पॉचवें (मकर) में शनि एवं मंगल स्थित हों तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक राजा होता है।

उच्चत्रिकोणगैर्बलसंस्थैस्त्रयाद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्रा:।

पञ्चादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपा: स्यु:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१३)

अर्थात् जिनके जन्मकाल में तीन या चार ग्रह अपने उच्चस्थान या मूल त्रिकोण में बली होकर स्थित हों तो वे यदि राजवंश में उत्पन्न हुए हों तो राजा होते है और एक या दो ग्रहों के उच्चस्थ या मूल त्रिकोणस्थ होने से राजा नहीं होते, किन्तु राजा के तुल्य वैभवशाली होते हैं।

जिनके जन्मकाल में पाँच- छ: या सात ग्रह अपने उच्चस्थान या मूल-त्रिकोण में बली होकर स्थित हों तो वे नीचकुल में जन्म लेकर भी राजा होते हैं और यदि पाँच कम तीन या चार ग्रह उच्चस्थ या मूल त्रिकोणस्थ हों तो राजा नहीं होते, परन्तु धनवान अवश्य होते है।

अपि च –

लेखास्थेऽर्केऽजेन्दौ लग्ने भौमे स्वोच्चे कुम्भे मन्दे।

चापं प्राप्ते जीवे राज्ञ: पुत्रं विद्याद् भूमेर्नाथम्।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१४)

इसका अर्थ है कि यदि मेष लग्न हो तथा उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा स्थित हों और मंगल अपने उच्च राशि (मकर) में, कुम्भ राशि में शनि तथा वृहस्पति धनुराशि में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का पुत्र राजा होता है। कुछ विद्वान लेखास्थे पद के स्थान में लेयस्थे का उल्लेख करते हैं। जिसका अर्थ है कि सिंह में सूर्य स्थित हो और शेष ग्रह पूर्वोक्त हों तो भी राजयोग समझना चाहिए।

स्वर्क्षे शुक्रे पातालस्थे धर्मस्थानं प्राप्ते चन्द्रे।

दुश्चिक्यांगप्राप्तिप्राप्तै: शेषैर्जात: स्वामी भूमे:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१५)

अर्थात् शुक्र यदि अपनी राशि में स्थित होकर चतुर्थ स्थान में स्थित हो और चन्द्रमा नवम स्थान में स्थित हो तथा शेषग्रह 3, 1 और 11 वें स्थान में स्थित हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का पुत्र राजा होता है।

सौम्ये वीर्ययुते तनुसंस्थे वीर्याढये च शुभे शुभयाते।

धर्मार्थोपचयेष्वथ शेषैर्धर्मात्मा नृपज: पृथिवीश:।।(वृहज्जातक- रा0यो0अ0,श्लोक-१६)

श्लोकार्थ है कि बली होकर बुध लग्न में एवं शुभग्रह अर्थात् वृहस्पति या शुक्र इन दोनों में से कोई भी नवम स्थान में तथा शेषग्रह 9,2, 3,6,10 एवं ग्यारहवें स्थानों में स्थित हों तो यदि वह राजपुत्र हो तो धर्मात्मा राजा होता है, यदि अन्य हो तो धर्मात्मा तथा धनवान होता है। कुछ आचार्य इस श्लोक में

शुभ याते पद के स्थान पर सुख याते ग्रहण करते हैं वहाँ सुख से चतुर्थ स्थान समझना चाहिए।

सारावली ग्रन्थानुसार राजयोग -

राजकुलोत्पन्न राजयोग व निम्नकुलोत्पन्न राजयोग एवं धनवान योग ज्ञान –

मूल श्लोक –

स्वोच्चत्रिकोणगृहगैर्बलसंयुतैश्च
त्रयाद्यैर्नृपो भवति भूपतिवंशजात:।
पञ्चादिभिर्जनपदप्रभवोऽपि सिद्धो
हीनै: क्षितीश्वरसमो न तु भूमिपाल:।। (सारावली, अध्याय-३५,श्लोक-२)

श्लोक का अर्थ है कि यदि जन्म के समय में तीन या चार ग्रह अपने उच्च में वा स्वमूलत्रिकोण में अथवा अपने घर में बलवान हों तो राजकुल में उत्पन्न पुरुष राजा होता है। यदि जन्म के समय पाँच अथवा छ: ग्रह पूर्वोक्त स्थिति में हों तो निम्न कुलोत्पन्न भी राजा होता है। यदि दो या एक ग्रह उच्च या मूलत्रिकोण या स्वगृह में हो तो राजा के समान होता है न कि राजा होता है।

अखिलभूमण्डल पालक योग ज्ञान –

उदयिगरिनिविष्टैर्मेषसंस्थैर्ग्रहेन्द्रै:।
शशिरुधिरसुरेडयैर्जायते पार्थिवेन्द्र:।।
जलनिधिरशनाया: पालक: सर्वभूमे-
र्हतरिपुपरिवार: सर्वत: फूत्करोति।। (सारावली, अध्याय-३५,श्लोक-८)

श्लोकार्थ है कि यदि जन्म के समय लग्नस्थ मेष राशि में चन्द्रमा, मंगल, गुरु हों तो जातक समुद्र रूपी मेखला से वेष्टित समस्त भूमण्डल का पालन करने वाला राजाधिराज होता है, तथा शत्रुदल का नाश करके चारों तरफ हुंकार करता है।

अधिक लक्ष्मी से युत राजयोग ज्ञान –

शिशिरकिरणे स्वोच्चे लग्ने पयोम्बुनिधे: समे।
घटधरगते भानो: पुत्रे मृगाधिपतौ रवि:।।
अलिगृहगतो वाचां नाथ: स्फुरत्करराजितो
यदि नरपति: स्फीतश्रीकस्तदा बदुवाहन:।।

अर्थात् यदि कुण्डली में परिपूर्ण चन्द्रमा वृष लग्न में हो तथा कुम्भ राशि में शनि, सिंह राशि में सूर्य, वृश्चिक राशि में शोभित किरणों से युक्त गुरु हो तो जातक अधिक लक्ष्मी व वाहनों से युत

राजा होता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्ट चक्र –

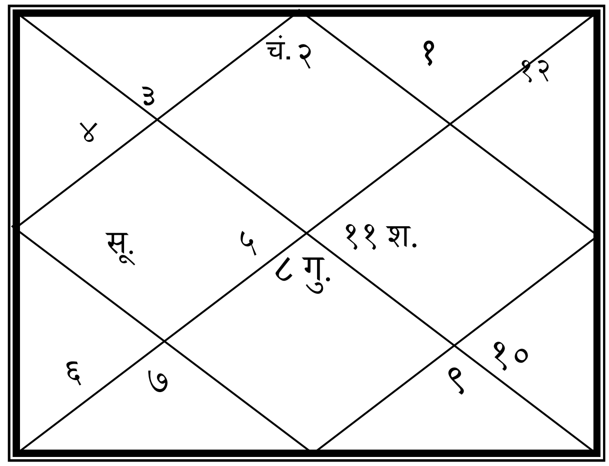

इन्द्र तुल्य राजयोग ज्ञान –

मृगे मन्दे लग्ने कुमुदवनबन्धुश्च तिमिग-
स्तथा कन्यां त्यक्त्वा बुधभवनसंस्थः कुतनयः।
स्थितो नार्यां सौम्यो धनुषि सुरमन्त्री यदि भवेत्
तदा जातो भूपः सुरपतिसमः प्राप्तमहिमा।।

इसका अर्थ है कि यदि कुण्डली में मकर लग्न में शनि, चन्द्रमा मीन राशि में तथा कन्या राशि को छोड़कर बुध के घर में अर्थात् मिथुन में भौम, कन्या में बुध, धनु राशि में गुरु हो तो जातक इन्द्र के समान महिमा (प्रशंसा) पाने वाला राजा होता है।

स्वभुजबल से पृथ्वीपति योग ज्ञान –

उदयति गुरुच्चे तप्तहेमप्रभावो
हरिततुरगनाथो व्योममध्यावगाही।
यदि शशिबुधशुक्रा यस्य सूतो नरस्य
स्वभुजविजितभूमिः सर्वतः पार्थिवेन्द्रः।।

अर्थात् यदि कुण्डली में तपे हुए सुवर्ण की आभा के सदृश गुरु कर्क राशि में लग्न गत हो तथा सूर्य दशम भाव में व वृष राशि में चन्द्रमा-बुध-शुक्र हों तो जातक अपनी भुजाओं के बल से समस्त पृथ्वी को जीतने वाला राजा होता है।

अपारकीर्तिमान राज योग ज्ञान –

कार्मुके त्रिदशनायकमन्त्री भानुजो वणिजि चन्द्रसमेत:।
मेषगस्तु तपनो यदि लग्ने भूपतिर्भवति सोऽतुलकीर्ति:।।

श्लोक का अर्थ है कि यदि कुण्डली में मेष लग्न में सूर्य हो व धनु राशि में गुरु, शनि चन्द्रमा के साथ तुला में हो तो जातक अपार कीर्तिमान राजा होता है।

वृहत्पराशरहोराशास्त्र ग्रन्थानुसार राज योग विचार –

'वृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ पराशर मुनि के द्वारा लिखा गया है। पराशर मुनि ज्योतिषशास्त्र के अष्टादश प्रवर्त्तक में से एक है। उनके द्वारा कथित राजयोग का वर्णन इस प्रकार है-

महाराज योग –

लग्नेशे पंचमे भावे पंचमेशे च लग्नके।
पुत्रात्मकारकौ विप्र! लग्ने च पंचमे स्थिते।
स्वोच्चे स्वांशे स्वभे वाऽपि शुभग्रहनिरीक्षिते
महाराजाख्ययोगोऽत्र जात: ख्यात: सुखान्वित:।।

अर्थात् लग्नेश पंचम भाव में हो और पंचमेश लग्न में हो एवं आत्मकारक तथा पुत्रकारक दोनों लग्न या पंचम में अपनी उच्च राशि का होकर या अपने नवमांश में होकर शुभ ग्रह के द्वारा अवलोकित हों तो यह महाराजनामक योग होता है। इसमें जन्म लेने वाला जातक विख्यात और सुख से युक्त होता है।

राज योग –

भाग्येश: कारको लग्ने पंचमे स्पतमेऽपि वा।
राजयोगप्रदातारौ शुभखेटयुतेक्षितौ।।
लग्नेशात् कारकाच्चापि धने तुर्ये च पंचमे।
शुभखेटयुते भावे जातो राजा भवेद् ध्रुवम्।।
तृतीये षष्ठमे ताभ्यां पापग्रहयुतेक्षिते।
जातो राजा भवेदेवं मिश्रे मिश्रफलं वदेत्।।

भाग्येश तथा आत्मकारक दोनों लग्न, ५,७ भाव में हों, शुभग्रह से दृष्ट या युत हो तो वे राजयोगकारक होते हैं। लग्नेश या कारक से द्वितीय, चतुर्थ, पंचम शुभ ग्रह हो तो जातक निश्चय ही राजा होता है अथवा लग्न एवं कारक से ३,६ भाव में केवल पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो भी

राजयोगकारक होता है। लग्न या कारक से ३,६ भाव में मिश्रित (शुभ, पापग्रह) ग्रह बैठे हों तो मिश्रित (धनवान) फल होता है।

जातक पारिजात ग्रन्थानुसार अनुसार राज योग –

कन्यामीननृयुग्मगोहरिधनु: कुम्भस्थितै: खेचरै:।
सेनामत्तमतंगवाजिविपुलो राजा यशस्वी भवेत्।।
तौलिच्छज्ञगवृषावनागृहगैर्जातोऽखिलक्ष्मापति।
गौंचापान्त्यभकेन्द्रगै: पृथुयशा: पृथ्वीश्वरो जायते।।

अर्थात् जन्मांग में समस्त ग्रह कन्या, मीन, मिथुन, वृष, सिंह, धनु और कुम्भ राशियों में स्थित हों तो जातक सेना, मत्त हाथी, घोड़े आदि के विपुल समूह से युक्त यशस्वी राजा होता है।

तुला, मेष, वृष और मीन राशियों में यदि समस्त ग्रह स्थित हों तो जातक समस्त पृथ्वी का अधिपति होता है।

वृष, धनु, मीन राशियों में स्थित ग्रह यदि केन्द्रस्थ हों तो जातक अनेक यश-कीर्ति से युक्त राजा होता है।

कन्यामेषतुलामृगेन्द्रघटगैर्जाजो महीपालको।
दुश्चिक्यप्रतिभारसातलगतैर्बह्वर्थदेशाधिप:।।
खेटा विक्रमबन्धुपुत्रगृहगा द्वौ वित्तधर्मस्थितौ।
शेषौ लग्नकलत्रराशिसहितौ राजा भवेद्धार्मिक:।।

यदि समस्त ग्रह कन्या, मेष, तुला, सिंह और कुम्भ राशियों में स्थित हों तो इस ग्रहयोग में उत्पन्न जातक राजा होता है।

तृतीय, पंचम और चतुर्थ भावों में यदि समस्त ग्रह स्थित हों तो अतुल धन-वैभवादि से युक्त अनेक देशों का राजा होता है।

यदि तृतीय, चतुर्थ, पंचम, द्वितीय, नवम, लग्न और सप्तम भावों में सभी ग्रह स्थित हों तो जातक धार्मिक राजा होता है।

इन्हीं योगों के सदृश अन्य जातक ग्रन्थों में सिंहासन योग, चतुश्चक्र योग, एकावली योग, चतु:सागर योग, प्रचण्ड योग एवं श्रीछत्र योग (भावकुतूहल ग्रन्थ में), तथा कनकदण्ड योग, डमरूक योग एवं ध्वज योग, राजहंस योग, गृद्धपुच्छ योग एवं चिह्नपुच्छ योगादि का उल्लेख (सोमजातक ग्रन्थ में), प्राप्त होता हैं।

अन्य राज योग –

चापाजसिंहभवनोदयगे धराजे
मित्रेक्षिते निजबलार्जितराज्यकर्ता।
दुश्चिक्यधर्मसुतगा रविचन्द्रजीवा
वीर्यान्विता यदि कुबेरसमो नृपालः।।

अर्थात् धनु, मेष अथवा सिंह राशि के लग्न में स्थित भौम यदि अपने मित्रग्रह (सूर्य, चन्द्रमा, और वृहस्पति) से दृष्ट हो तो इस योग में उत्पन्न जातक स्वार्जित राज्य का स्वामी होता है। सूर्य, चन्द्रमा और वृहस्पति यदि तृतीय, नवम और पंचम भावों में बलवान होकर स्थित हों तो जातक कुबेर के समान वैभवादि सम्पन्न राजा होता है।

नीचस्थितग्रहनवांशपतौ त्रिकोणे।
केन्द्रेऽथवा चरगृहे यदि जन्मलग्ने।।
तद्भावपे चरगृहांशसमन्विते वा।
जातो महीपतिरतिप्रबलोऽथवा स्यात्।।

अर्थात् नीचराशिगत ग्रह के नवमांशपति यदि त्रिकोण या केन्द्र में स्थित हो अथवा चरराशि का लग्न हो और जन्मलग्नाधिपति चरराशि के नवमांश में हो तो जातक राजा अथवा प्रबल प्रतापी होता है।

जातकपारिजात ग्रन्थ के राजयोगाध्याय का अध्ययन करने पर हमें उसके अन्तर्गत पंचमहापुरूष योग, सुनफादि योग, भास्कर, इन्द्र, मरूत, बुधादि योग, भौमादि पंचताराग्रहोत्पन्न सुनफादि योग फल, गजकेसरी योग तथा नाभस योगादि समस्त योग का उल्लेख मिलता है।

सर्वार्थचिन्तामणि ग्रन्थानुसार राजयोग –

षड्भिर्ग्रहैरूच्चसमन्वितैः स्याद्राजाधिराजो बहुदेशभर्त्ता।
उच्चस्थितैः पंचभिरत्र राजा शक्त्यान्वितो देवगुरो विलग्ने।।

जिस किसी की कुण्डली में यदि षड्ग्रह (6 ग्रह) अपनी उच्चराशि में स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य निश्चय कर राजाधिराज होकर अनेक देशों का पालनहार होता है। यदि कुण्डली में पंचग्रहों की स्थिति अपनी-अपनी उच्च राशिगत हो तथा लग्नभाव में गुरूस्थित हो, तो मनुष्य सामर्थ्यशाली राजा होता है।

राजा होने का योग कथन –

लग्ने वृषे तत्र गते शशांके षड्भिग्रहैरूच्चगतैर्नृपः स्यात्।

कस्मिन् गृहे स्वोच्चयुते तु सर्वैः स्वक्षेत्रगैर्भूपतितुल्यजात:।।

अर्थात् जिस किसी की कुण्डली में यदि वृष लग्न में चन्द्रमा और षड्ग्रह अपनी-अपनी उच्च राशि में अवस्थित हो, तो इस योग में मनुष्य राजा होता है। सभी ग्रह कुण्डली के जिस किसी भी भाव में अवस्थित होकर उच्चस्थ होना चाहिए, तो मनुष्य राजा होता है, सभी ग्रह यदि स्वराशिगत हों, तो मनुष्य इस योग में केवल राजा के तुल्य होता है।

सम्राट योग कथन –

दृश्यते युज्यते वापि चन्द्रजेन वृहस्पति:।
शिरसा शासनं तस्य धारयन्ति नृपास्तदा।।

जिस किसी की कुण्डली में गुरु यदि बुध से देखा जाता हो अथवा युक्त हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य की आज्ञा को राजे-महाराजे अपने शिर पर धारण करने वाले होते हैं अर्थात् मनुष्य सम्राट होता है।

धार्मिक व चक्रवर्ती नीच भंग राजयोग कथन -

नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रह: स्यात्तद्राशिनाथोऽथ तदुच्चनाथ:।
स चेद्विलग्नाद्यदि केन्द्रवर्ती राजा भवेद्धार्मिकचक्रवर्ती।।

श्लोक का अर्थ है कि जिस किसी की कुण्डली में यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि में स्थित हो और उस ग्रह की उच्चराशि का स्वामी अथवा जिस राशि में वह ग्रह स्थित है, उस राशि का स्वामी ग्रह जन्मलग्न से केन्द्र में स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न होने पर मनुष्य धार्मिक और चक्रवर्ती राजा होता है।

भूपतितुल्य भाग्यवान योग कथन –

निशाकरे केन्द्रगते विलग्नं त्यक्त्वा त्रिकोणे यदि जीवदृष्टे।
शुक्रेण दृष्टे बलपूर्णयुक्ते जातो नरो भूपतितुल्यभाग:।।

जिस किसी की कुण्डली में यदि बलवान चन्द्र लग्न को छोड़कर अन्य केन्द्र भाव ४,७,१० में अथवा त्रिकोण ५,९ भाव में स्थित होकर गुरु अथवा शुक्र से देखा जाता हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य राजा के तुल्य भाग्यवान होता है।

नीचोच्च भंग राजयोग कथन –

नीचस्थिता जन्मनि ये ग्रहेन्द्रा: स्वोच्चांशगा राजसमानभाग्या:।
उच्चस्थिता चेदपि नीचभागा ग्रहा न कुर्वन्ति तथैव भाग्यम्।।

अर्थात् जिस किसी की कुण्डली में यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि में होकर नवमांश में अपनी उच्च राशि में स्थित हो, तो इस स्थिति में मनुष्य राजा के समान भाग्यवान होता है।

कुण्डली में यदि कोई ग्रह अपनी उच्चराशि में होकर नवमांश में वह अपनी नीच राशि में स्थित हो, तो इस स्थिति में मनुष्य का राजा के समान भाग्य नहीं होता है।

राजयोग भंग योग कथन –

तुलायां दशमे भागे स्थित: पंकजबोधन:।
सहस्रराजयोगानां फलं नीचत्वमाप्नुयात्।।

जिस किसी की कुण्डली में सूर्य यदि अपनी नीचराशि तुला के दस (१०) अंश में स्थित हो, तो इस स्थिति के प्राप्त रहने पर मनुष्य सहस्र या हजार राजयोगों के रहने पर भी हीनता को प्राप्त हो जाता है।

भृगो: पुत्रोऽपि नीचस्थो राजयोगविनाशद:।
उल्कापातद्यप्रकाशे ग्रहे जातोऽपि भंगग:।।

अर्थात् जिस किसी की कुण्डली में यदि शुक्र भी नीच राशिगत हो, तो मनुष्य के राजयोग का विनाश हो जाता है तथा जन्म के समय उल्का, पात आदि अप्रकाश ग्रह लग्न में स्थित होकर राजयोग को नष्ट करते हैं।

बोध प्रश्न –

1. राज योग का अर्थ है।
   क. राजा के समान योग ख. राजा ग. राज्याधिपति घ. कोई नहीं
2. किसी जातक के जन्मकाल में एक से अधिक शुभग्रह यदि अपने उच्च स्थान में स्थित हों तो वह जातक राजा होता है।
   क. सुबुद्धि वाला ख. दुर्बुद्धि वाला ग. विद्यावान घ. चतुर
3. वृहज्जातक में कितने प्रकार के राजयोग का वर्णन है।
   क. २४ ख.३२ ग.२६ घ. २८
4. जातकपारिजात निम्न में किसकी रचना है।
   क. वैद्यनाथ ख. पराशर मुनि ग. वराहमिहिर घ. गणेश
5. जिस जातक की कुण्डली में शुक्र नीच राशि गत हो तो क्या होता है।
   क. राजयोग ख. राजयोग का विनाश ग. विद्यावृद्धि घ. शत्रुवृद्धि

6. जिस किसी की कुण्डली में गुरु यदि बुध से देखा जाता हो अथवा युक्त हो तो कौन सा योग बनता है।

क. सम्राट योग ख. रंक योग ग. दानवीर योग घ. धार्मिक योग

7. निम्न में सारावली नामक ग्रन्थ के लेखक कौन है।

क. वराहमिहिर ख. कल्याणवर्मा ग. कमलकार घ. भास्कर

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के फलित या होरा स्कन्ध के अन्तर्गत 'राज योग' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, जिसका मानव जीवन के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि देखा जाय तो प्रायः प्रत्येक मानव अपने जीवन में राज योग की इच्छा या अभिलाषा रखता है, किन्तु सभी मानव के जीवन में राजयोग हो यह कथमपि संभव नहीं है। वस्तुतः राजयोग का निर्माण भी मानव द्वारा पूर्वजन्म में कृत्य शुभाशुभ कर्म फल पर ही आधारित होता है।

ज्योतिषशास्त्र के जातक या होरास्कन्ध के अन्तर्गत जितने भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं उनका अध्ययन करने पर प्राय: सभी ग्रन्थों में राजयोग का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इस इकाई में मेरा यह प्रयास रहेगा कि आप सभी जिज्ञासु अध्येताओं के लिए फलित ज्योतिष के कुछ प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए आपको राजयोग से सम्बन्धित तथ्यों से अवगत करा सकुँ।

राज योग क्या है? यदि इस पर विचार किया जाय तो सामान्यतः जो राजा के समान जीवन व्यतीत करें, उसे राजयोग कहा जाता है। राज योग का शाब्दिक अर्थ भी है - राजा के समान योग। ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों एवं आचार्यों ने ग्रहों की स्थिति के आधार पर मानव के जीवन में होने वाले राजयोगों का उल्लेख विविध प्रकार से अपने-अपने ग्रन्थों में किया है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

राज योग – राजा के समान योग।

भृगु – शुक्र

इज – वृहस्पति

केन्द्र – १,४,७,१० भाव को केन्द्र कहते है।

आर – मंगल

त्रिकोण – ५ एवं ९ स्थान को त्रिकोण कहते है।

नवमांश – राशि का नवॉं अंश नवमांश कहलाता है। ३ अंश २० कला १ नवमांश का मान होता है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. ख
4. क
5. ख
6. क
7. ख

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्जातकम् - राजयोगाध्याय:।
2. जातकपारिजात – राजयोगाध्याय:।
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – राजयोगाध्याय:।
4. सारावली – राजयोगाध्याय:।
5. सर्वार्थचिन्तामणि – राजयोगाध्याय:।
6. फलदीपिका – राजयोगाध्याय:।

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टिकाकार – गोपेश ओझा।
2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टिकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।
3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।
4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टिकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृहज्जातक ग्रन्थानुसार दो प्रकार के राजयोगों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ग्रन्थाधारित बत्तीस प्रकार के राजयोगों का व्याख्या कीजिये।

2. वराहमिहिर के अनुसार पाँच प्रकार के राजयोग का उल्लेख करें।।

3. जातकपारिजात के अनुसार राजयोग का वर्णन कीजिये।

4. राज योग किसे कहते हैं? सोदाहरण विस्तार पूर्वक लिखिये।

5. नीचोच्च भंग राजयोग से आप क्या समझते है?

6. वृहत्पराशर होराशास्त्र एवं सारावली के अनुसार राजयोग का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 3 पंचमहापुरूष योग विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 पंचमहापुरूष योग परिचय

3.3.1 पंचमहापुरूष योग फल

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.6 सहायक पाठ्यसामग्री

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई षष्ठ सेमेस्टर (BAJY(N)-223) के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – पंचमहापुरुष योग। पंचमहापुरुष योग ज्योतिष शास्त्र में वर्णित उन अत्यंत प्रभावशाली और श्रेष्ठ राजयोगों में से एक है, जो मनुष्य के जीवन को विशिष्ट ऊँचाइयों तक ले जाने की क्षमता रखते हैं। प्राचीन आचार्यों जैसे महर्षि पराशर, वराहमिहिर तथा कल्याणवर्मा ने अपने-अपने ग्रंथों में इन योगों का विस्तार से वर्णन किया है। विशेषतः बृहत् पाराशर होरा शास्त्र, बृहत् जातक तथा सारावली में पंचमहापुरुष योगों की उत्पत्ति, स्वरूप, फल और प्रभाव का गहन विवेचन प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जब पंचतारा ग्रह—मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—अपनी उच्च (उच्च राशि) या स्व राशि में होकर केंद्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम भाव) में स्थित होते हैं, तब क्रमशः रूचक, भद्र, हंस, मालव्य और शश नामक पंचमहापुरुष योगों का निर्माण होता है। ये योग न केवल व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाते हैं, बल्कि उसे समाज में प्रतिष्ठा, अधिकार, वैभव और नेतृत्व प्रदान करते हैं। इसीलिए इन्हें राजयोगों की कोटि में सर्वोपरि स्थान दिया गया है। पंचमहापुरुष योग का महत्व इस तथ्य में निहित है कि ये योग जन्मकुंडली में अत्यंत दुर्लभ होते हुए भी यदि पूर्ण रूप से विद्यमान हों, तो व्यक्ति को राजा के समान सुख-संपन्नता, यश और प्रभाव प्रदान कर सकते हैं। ज्योतिषीय दृष्टि से ये योग केवल भौतिक उन्नति का ही संकेत नहीं देते, बल्कि व्यक्ति के नैतिक बल, निर्णय क्षमता और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी सुदृढ़ करते हैं। अतः पंचमहापुरुष योगों का अध्ययन न केवल फलित ज्योतिष के लिए आवश्यक है, बल्कि यह मानव जीवन के उत्थान और उसके भाग्य के गूढ़ रहस्यों को समझने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण साधन है।

3.2 उद्देश्य

- पंचमहापुरूष योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- पंचमहापुरूष योगों के प्रकार को समझा सकेंगे।
- पंचमहापुरूष योगों को जान जायेंगे।
- पंचमहापुरूष योगों के फल को समझ सकेंगे।
- फलित ज्योतिष में पंचमहापुरूष योग की भूमिका को जान लेंगे।

3.3 पंचमहापुरूष योग परिचय

पंचमहापुरुष योगों का ज्योतिष में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। यदि इन योगों का सृजन किसी जातक की जन्मपत्रिका में होता है तो वह जातक सुखी व समृद्धशाली होता है। पंच महापुरुष योग एक ऐसा योग है जिसमें जातक को सभी प्रकार के सुख मिलते हैं।

मूलत्रिकोणनिजतुङ्गगृहोपयाता भौमज्ञजीवसितभानुसुता बलिष्ठाः ।

केन्द्रस्थिता यदि तदा रूचभद्रहंसमालव्यचारूशशयोगकरा भवन्ति ।। (जातकपारिजात7-59)

अर्थात् यदि बलवान मंगल मूलत्रिकोण, स्वगृह उच्चगृह में प्राप्त होकर केन्द्र में स्थित हो तो " रूचक " योग होता है। बुध हो तो "भद्र" योग होता है। बृहस्पति हो तो हंस योग होता हैं। शुक्र हो तो "मालव्य" योग होता हे और शनि हो तो "शश" योग होता है।

स्वगेहतुङ्गाश्रयकेन्द्रसंस्थैरुच्चो पगैर्वाचनसूनुमुख्यैः ।

क्रमेण योगा रुचकाख्यभद्रहंसाख्यमालव्यशशाभिधानाः ।। मानसागरी,

यदि मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि ग्रह अपनी राशि या अपनी उच्च राशि में संस्थित होकर केन्द्र में (प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम में) स्थित हों तो क्रम से रुचक, भद्र, हंस, मालव्य एवं शश, पंच महापुरुष राजयोग का निर्माण करते हैं। अर्थात् (1) यदि मंगल अपनी राशि (मेष, वृश्चिक) अथवा उच्च राशि (मकर) में होकर केन्द्र में स्थित हो तो रुचक (2) यदि बुध स्वराशि (कन्या, मिथुन) में केन्द्रगत हो, तो भद्र, (बुध का उच्च भी कन्या ही है) (3) बृहस्पति यदि स्वराशि धनु, मीन उच्च राशि (कर्क) में केन्द्रगत हो तो हंस महापुरुष राजयोग होता है। (4) इसी तरह शुक्र, वृष, तुला और मीन में रहते हुए केन्द्रगत हो जाय तो मालव्य तथा शनि मकर, कुम्भ, तुला में संस्थित होकर केन्द्र में स्थित हो तो शश महापुरुष राजयोग का निर्माण होता है।

रुचकभद्रकहंसकमालवाः सशशका इति पञ्च च कीर्तिताः ।

स्वभवनोच्चगतेषु चतुष्टये क्षितिसुतादिषु तान् क्रमशो वदेत् ।। फलदीपिका,

यदि मंगल मेष, वृश्चिक या मकर राशि का होकर जन्मांग के केन्द्र में स्थित हो, तो 'रुचक' योग निर्मित होता है। यदि मिथुन या कन्या राशि में स्थित बुध केन्द्र में हो तो 'भद्र' योग निर्मित होता है। यदि कर्क, धनु या मीन राशि में स्थित होकर बृहस्पति केन्द्र में स्थित हो तो 'हंस' योग का निर्माण

होता है। यदि वृष, तुला या मीन राशि में शुक्र स्थित होकर केन्द्र में हो तो मालव्य योग निर्मित होता है। यदि तुला, मकर या कुम्भ राशि में शनि संस्थित हो एवं जन्म लग्न चतुर्थ, सप्तम, या दशम इन चारों स्थानों में से किसी एक में हो तो 'शश' योग का निर्माण होता है।

स्वोच्चस्वक्षेत्रगतैः केन्द्रस्थैः कुजबुधेड्यसितमन्दैः ।
रुचको भद्रो हंसो मालव्यः शश इति क्रमाद्योगः ।। जातकदेशमार्ग,

यदि मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनि स्वराशि या अपनी उच्च राशि में होकर केन्द्र में स्थित हो तो क्रमशः रुचक, भद्रक, हंस, मालव्य एवं शश योग निर्मित होता है। मंगल स्वराशि या उच्च राशि में हो तो रुचक, बुध से भद्रक, बृहस्पति से हंस, शुक्र से मालव्य और शनि से शश योग का निर्माण होता है।

स्वक्षोच्चगाः केन्द्रगताः कुजाद्या वीर्य्यैरुपेताः क्रमशः प्रदिष्टाः ।
योगा मुनीन्द्रै रुचभद्रहंसा मालव्यकाख्यः शशनामधेयः ।। ज्योतिषतत्त्वम्,

बलवान् भौमादि पाँच ग्रह स्वराशि में अथवा स्वोच्चराशि में स्थित होकर केन्द्र में हों तो मुनियों ने क्रम से रुच, भद्र, हंस, मालव्य और शश नामक ये पाँच महापुरुष योग कहे हैं अर्थात् बलवान् मंगल स्वराश्यादि में स्थित होकर केन्द्र में हों तो 'रुच योग' एवं बुध हो तो 'भद्र योग' गुरु हो तो 'हंस योग' शुक्र हो तो 'मालव्य योग' और शनि हो तो 'शश योग' होता है।

पांच ग्रह अर्थात् मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि में से कोई एक ग्रह स्वगृही, उच्च राशि, अथवा मूलत्रिकोण में होकर लग्न से केन्द्र में स्थित हो, तो पांच प्रकार का महापुरुष-योग निर्मित होता है और यदि वह पूर्ण बली हो तो फल अति उत्कृष्ट होता है।

3.3.1 पंचमहापुरूष योग फल

रूचकयोग फल

जातः श्रीरूचके बलान्वितवपुः श्रीकीर्तिशीलान्वितः
शास्त्री मन्त्रजपाभिचारकुशलो राजाऽथवा तत्समः ।
लावणयारूणकान्तिकोमलतनुस्त्यागी जितारिर्धनी
सप्तयब्दमितायुषा सह सुखी सेनातुरङ्गाधिपः ।। (जातकपारिजात7-60)

अर्थात् रूचक योग में उत्पन्न होने वाला मनुष्य बलयुक्त शरीरवाला, कीर्ति और शील से युक्त, ड़ास्त्री, मंत्र के जप और अभिचार में कुशल, राजा वा उसके सदृश धनी, सौन्दर्ययुक्त लाल कान्ति, कोमल शरीर, त्यागी, शत्रुजित्, धनी और 70 वर्ष की आयु तक सुखी, सेना और घोड़ो से युक्त होता है।

दीर्घायुः स्वच्छकान्तिर्बहुरुधिरवलः साहसप्राप्तसिद्धि-
श्चरुभ्रूनीलकेशः समकरचरणो मन्त्रविच्चारुकीर्तिः ।
रक्तः श्यामोऽतिशूरो रिपुवलमथनः कम्बुकण्ठो महौजाः
क्रूरो भक्तो नराणां द्विजगुरुविनतः क्षामजानूरुजङ्घः ।।
खट्वाङ्गपाशवृषकार्मुकचक्रवीणाविज्ञाङ्कहस्तचरणः सरलाङ्गुलिः स्यात् ।
मंत्राभिचारकुशलस्तुलयेत्सहस्रं मध्यं च तस्य गदितं मुखदैर्घ्यतुल्यम् ।।
सह्यस्य विन्ध्यस्य तथोज्जयिन्याः प्रभुः शरत्सप्ततिरायुरस्य ।
शस्त्राग्निचिहो रुचकाभिधागे देवालयान्ते निधनं प्रयाति ।।मानसागरी,

जिस जातक का जन्म रूचक योग में हुआ हो, वह दीर्घायु होता है। उसकी कान्ति मनोहर, रक्त वर्ण एवं बलशाली होता है। कार्यों में साहस से सिद्धि प्राप्त करने वाला, सुन्दर भौंहं, काले मुलायम केशों वालां, एवं हाथ-पैर सुन्दर एवं सुगठित हों, मन्त्रविद्या को जानने वाला, सुकीर्ति (धर्मशाला आदि बनाने में) प्राप्त करे। शरीर का रंग रक्त एवं श्यामता से परिपूर्ण हो, महा शूर-वीर, शत्रुओं को परास्त करने वाला, शंख की तरह सौम्य कंठ वाला प्रभावशाली, उग्र प्रकृति का, मनुष्यों का शुभेच्छु, देवता गुरु के समक्ष विनम्र होता है तथा ऐसा जातक पतली जाँघ एवं जानु वाला एक विलक्षण भाग्यवान् पुरुष होता है।

जिस जातक का जन्म रूचक योग में हुआ हो, उसके हाथ पैरों में खट्वांग चिह्न (शिवजी का अस्त्रविशेष) एवं पाश, वृष, धनुष, शर, चक्र, वीणा, विद्या आदि रेखाएं प्रदर्शित होती हैं, ये चिन्ह भाग्यशाली होने के द्योतक हैं। अंगुलियां सुन्दर होती है, समस्त विषयों एवं विचारों पर स्वतन्त्र सम्मति देने वाला होता है, हजारों मनुष्यों की स्वयं तुलना करने वाला अर्थात् अत्यन्त बुद्धिमान्, उसका मध्य भाग (कटिप्रदेश) मुख की लम्बाई के समान ही हो यानि पतली कटि वाला होता है।

जिस जातक का जन्म रूचक योग में हुआ हो, वह जातक सह्य तथा विन्ध्य (दोनों कुलपर्वत हैं) इनके आस-पास की पृथ्वी का अर्थात् उन प्रान्तों का तथा उज्जैन देश का राजा हो, उसकी आयु

लगभग 70 वर्ष तक हो हाथ में शस्त्र (तलवार आदि) तथा अग्नि का चिन्ह हो एवं 70 वर्ष पूर्ण होने के उपरान्त उसका देहावसान किसी देवालय (काशी प्रयाग आदि) में हो इसमें सन्देह नहीं है।

दीर्घास्यो बहुसाहसाप्तविभवः शूरोऽरिहन्ता बली।
गर्विष्ठो रुचके प्रतीतगुणवान् सेनापतिर्जित्वरः ।। (फलदीपिका)

जिस व्यक्ति का जन्म रूचक योग में होता है उसका मुखमण्डल दीर्घ हो, वह शूरवीर एवं बलशाली हो, एवं अपने साहस से वैभव प्राप्त करे। शत्रुओं का नाश करने वाला एवं अभिमानी हो, ऐसा व्यक्ति सेनापति एवं अभिमानी प्रकृति का (सेनापति से तात्पर्य समझना चाहिए उच्च पदाधिकारी) होता है एवं जातक अपने गुणों के कारण प्रसिद्ध, कीर्ति एवं प्रत्येक उद्योग में सफलता प्राप्त करता है।

उत्साहशौर्यधनसाहसवान् प्रसिद्धः
श्रीमन्रणेषु विजयी नृपवल्लभश्च।
वित्तोल्बणो बलयुतश्चपलोऽतिरोषो
जातो भवेच्च रुचके कृशमध्यमात्रः ।। जातकदेशमार्ग,

रूचक योग वाला व्यक्ति उत्साहशौर्य-युक्त, धनवान्, साहसी, प्रसिद्ध श्रीमान्, नृप का वल्लभ, रण में विजयी, बलवान्, चपल, क्रोधी हो। उसमें पित्त (गुण) अधिक होता है। जातक की कमर पतली होती है।

सेनाश्वाधिपतिर्धनी रुचभवः शीलेन कीर्त्या युतो
मर्त्येशः किमु तत्समः सह नभोऽगाब्दायुषा स्यात्सुखी।
भाखतुल्यरुचिः सुकोमलतनुर्लावण्ययुङ् मंत्रवि-
ज्छास्त्रज्ञो बलवांस्तपोजपकरो दानी जितारातिकः ।। ज्योतिषतत्त्वम्

रूचक योग में उत्पन्न मनुष्य, सेना तथा घोड़ों का स्वामी, धनवान्, शील तथा कीर्ति से युक्त, मनुष्यों का स्वामी (राजा) अथवा राजा के समान एवं 70 वर्ष की आयु के साथ सुखी, सूर्य के समान कान्ति, अत्यन्त कोमल शरीर, सौन्दर्ययुक्त, मंत्र तथा शास्त्र का ज्ञाता, बली, तप तथा जप करने वाला, दाता और शत्रु पक्ष को जीतने वाला होता है।

भद्र योगफल फल

शार्दुलप्रतिमाननो गजगतिः पीनोरूवक्षस्थलो
लम्बापीनसुवृत्तबाहुयुगलस्तत्तुल्यमानोच्छ्रयः।

मानी बन्धुजनोपकारनिपुणः श्रीभद्रयोगोद्भवो
राजाऽशीतिमितायुरेति विपुलप्रज्ञायशोवित्तवान् ।। जातकपारिजात

अर्थात् भद्र योग में जायमान मनुष्य शेर के समान सुख, मतवाले हाथी के सदृश गति, मोटे जंघा, छाती, लम्बा- मोटा और गोला दोनों बाहु उसी के समान ऊंचा, मानी, बन्धु जनोके उपकार में निपुण , विशेष बुद्धिवाला, तथा यश- धन -वाला और 80 वर्षकी आयु प्राप्त करनेवाला राजा होता है।

शार्दूलप्रतिमाननो द्विपगतिः पीनोरुवक्षःस्थलो ।
रम्यापीनसुवृत्तबाहुयुगलस्तत्तुल्यगात्रोच्छ्रयः
कामी कोमलसूक्ष्मरोमनिचयैः संरुद्धगण्डस्थलः ।
प्राज्ञः पङ्कजगर्भपाणिचरणः सत्त्वाधिको योगवित् ।।

जिस जातक का जन्म भद्रयोग में होता है उसका शरीर शार्दूल (पक्षिविशेष) के सदृश, हाथी के समान मन्दगति, अत्यन्त विशाल वक्षस्थल, हष्ट, पुष्ट एवं मनोहर भुजा उन्हीं दोनों के योग से समान शरीर की लम्बाई (यही चतुरस्र है यानि दोनों हाथ के फैलाने से जो दैर्ध्य हो उतनी ही पदतल से शीर्षस्थान तक), काम चेष्टा अधिक, अत्यन्त कोमल गाल, सुदृढ़ केश (दाढ़ी) आदि अतीव रमणीय हो, शास्त्रों का सम्पूर्ण ज्ञाता, कमल के गर्भस्थ पत्र के समान अत्यन्त मृदुल हाथों वाला, बलशाली एवं प्रसिद्ध तथा योगशास्त्र में भी जिज्ञासु प्रकृति वाला योग्य पुरुष होता है।

शङ्खासिकुञ्जरगदाकुसुमेषुकेतुचक्राब्जलाङ्गलविचिह्नितपाणिपादः ।
यात्रागजेन्द्रमदवारिकृतार्द्रभूमिः सत्कुंकुमप्रतिमगन्धतनुः सुघोषः ।।

जातक के हाथ-पैरों में शंख, खड्ग, हस्ती, गदा, फूल, शर, पताका चक्र, चन्द्रमा तथा लांगल आदि सुन्दर फलदायक चिन्ह हों, इसके यात्राकाल में अत्यधिक मत्त हाथियों की बड़ी संख्या रहे कि समस्त मार्ग उसके स्रवित मदों से आर्द्र हो जाय, अच्छी कुंकुम के समान शरीर की गन्ध हो तथा उसकी आवाज बहुत सौम्य एवं सर्वप्रिय हो।

संभ्रूगुगोऽतिमतिमान् खलु शास्त्रवेत्ता
मानोपभोगसहितोऽपि निगूढगुह्यः ।
सत्कुक्षिधर्मनिरतः सुललाटपट्टो
धीरो भवेदसितकुञ्चितकेशपाशः ।।

जातक की दोनों भौंह अत्यन्त कमनीय हों, स्वयं महाबुद्धिमान् हो, शास्त्रों का ज्ञाता, आदर एवं सांसारिक पदार्थों का उपभोग करने वाला हो, अपने रहस्यों को गोपनीय रखने वाला, सुन्दर उदर वाला होता है, अपने परंपरागत धर्म में लीन, सुन्दर ललाट (खूब लम्बा चौड़ा जैसा कि सुभाग्य सूचक है) वाला, कार्यो को धैर्यता के साथ पूर्ण करने वाला तथा उसके सिर के बाल अति कमनीय, काले एवं घुंघराले होते हैं।

स्वतन्त्रः सर्वकार्येषु स्वजनं प्रति न क्षमी ।
भुज्यते विभवस्तस्य नित्यमर्थिजनैः परैः ।।

भद्र महापुरुष राजयोग होने से जातक समस्त कार्यों को अपनी इच्छा के अनुकूल करने वाला होता है। अपने आत्मीय जनों के प्रति क्षमा भाव न रखने वाला एवं अन्य जनों के लिए उपकारी होता है तथा उसके वैभव का उपयोग सदैव अन्य लोगों के द्वारा किया जाता है स्वजनों के लिए निष्ठुर हो, सारांश यह कि अन्य के लिए महादानी परन्तु स्वजनों के लिए क्रूर, विचित्र प्रकृति का पुरुष होता है।

भारं तुलायां तुलयेत्प्रयत्नैः श्रीकान्यकुब्जाधिपतिर्भवेत्सः ।
भद्रोद्भवः पुत्रकलत्रसौख्यो जीवेन्नृपालःशरदामशीतिम् ।। मानसागरी,

भद्र महापुरुष राजयोग के जातक के पास अत्यधिक स्वर्ण, चांदी, रत्न आदि होते है जिनका अनुमान लगाना अत्यन्त दुष्कर हो, बहुधा यह जातक कान्यकुब्ज (कन्नौज) देश का महाराजा होता है, सदैव पुत्र, स्त्री आदि सुखों की पराकाष्ठा तक पहुंचने वाला हो तथा अस्सी वर्ष के उपरान्त इस संसार को त्याग परलोक में जाता है यह भद्र योग का फल है।

आयुष्मान् सकुशाग्रबुद्धिरमलो विद्वज्जनश्लाघितो ।
भूपो भद्रकयोगजोऽतिविभवश्चास्थानकोलाहलः ।। फलदीपिका

जिस जातक का जन्म भद्रयोग में होगा वह कुशाग्र बुद्धि वाला हो, विद्वान उसकी प्रशंसा करें, वह स्वभाव से अत्यन्त चतुर एवं वक्ता हो, ऐसा व्यक्ति वैभवशाली और राजा (उच्च पदाधिकारी) होता है।

वाग्मी पटुः पवनपित्तकफप्रधानः
शास्त्रार्थविद्धतियुतो द्विजदेवभक्तः ।
श्यामः कलासु निपुणो बहुवर्षजीवी
भद्रे स्वकर्मनिरतश्च भवेत्प्रजातः ।। जातकदेशमार्ग,

भद्र महापुरुष राजयोग में जन्म लेने वाला जातक वाग्मी (बोलने में प्रवीण), पटु, शास्त्रों के अर्थ का ज्ञाता, धैर्ययुक्त, देवता और ब्राह्मणों का भक्त, श्यामवर्ण, कलाओं में निपुण, अपने कार्य में निरत तथा दीर्घायु होता है। ऐसे व्यक्ति में वात, पित्त, कफ आदि अधिक मात्रा में होते हैं।

शार्दूलतुल्यलपनो धनवान् यशस्वी
मनी मतङ्गजगतिः शुभवृत्तबाहुः ।
बन्धूपकारनिरतो नृपतिर्बृहद्धी-
र्जीवेत्स भद्रजनितः शरदामशीतिः ।। ज्योतिषतत्त्वम्

भद्र योग में उत्पन्न मनुष्य शार्दूल के समान, मुखवाला, धनी, यशस्वी, मानी, हाथी के समान चाल वाला, उत्तम चरित्र और भुजावाला, बन्धुजनों के उपकार में तत्पर, राजा, विशाल और अस्सी वर्ष जीवित रहता है।

हंस योगफल

रक्तास्योन्नतनासिकः सुचरणो हंसस्वरः श्लेष्मको
गौराङ्गः सुकुमारदारसहितः कन्दर्पतुल्यः सुखी ।
शास्त्रज्ञानपरायणोऽतिनिपुणः श्रीहंसयोगे गुणी
यातोऽशीतिकमायुरेति सयुगं साधुक्रियाचारवान् ।।(जातकपारिजात7-63)

अर्थात् हंस योग में उत्पन्न होने वाला मनुष्य लाल मुख, ऊँची नासिका, सुन्दर चरण, हंस स्वर, कफ प्रकृति, गौरांग, सुकुमार स्त्रीयुत, कामदेव के तुल्य सुन्दर, सुखी, शास्त्रज्ञान में परायण, अत्यन्त निपुण, गुणी, अच्छी क्रिया का आचार वाला और 84 वर्ष आयु वाला होता है।

रक्तास्योन्नतनासिकासुचरणो हंसप्रसन्नेन्द्रियो
गौरः पीनकपालरक्तकरजो हंसस्वनः श्लैष्मिकः ।
शङ्खाब्जाङ्कुशमत्स्यदामयुगकैः खट्वाङ्गमालाघटै-
श्चञ्चत्पादकरस्थलो मधुनिभे नेत्रे सुवृत्तं शिरः ।।
जलाशयप्रीतिरतीव कामी न याति तृप्तिं वनितासु नूनम् ।
औच्च्यं रसाष्टाङ्गुलसम्मितं तत्तनोस्तथायुर्मितिरत्र षष्टिः ।।
वाहीकदेशादर शूरसेनगान्धर्वगङ्गायमुनान्तरालान् ।
भुक्त्वा वनान्ते निधनं प्रयाति हंसोऽयमुक्तो मुनिभिःप्रमाणैः ।।मानसागरी,

जिस जातक के जन्मकाल में हंस महापुरुष राजयोग का निर्माण हो वह रक्त वर्ण, ऊँची नाक तथा सुन्दर पैरों वाला होता है, हंस के समान इसके समस्त अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुन्दर होते है। गौर वर्ण, विशाल ललाट वाला होता है, उसके हाथों की अंगुलियां लालिमा से युक्त होती है, हंस की आवाज के समान इसकी वाणी हो, श्लेष्म प्रकृति का होता है, हाथ पैरों में शंख, चन्द्रमा अंकुश, मछली, माला एवं कलश आदि की चित्रात्मक रेखाएं होती हैं । मधुवर्ण नेत्र अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते हैं, तथा मस्तक अधिक वर्तुलाकार भव्य होता है, अर्थात् इस जातक के सम्पूर्ण अंग अत्यन्त सुरम्य होते हैं ।

जलाशय (सरोवर, कुआं वगैरह) से बड़ी प्रीति रखे यानि स्नान, जलक्रीड़ा आदि को अत्यन्त पसन्द करे, अत्यधिक कामचेष्टा वाला हो, यहां तक कि अनेक स्त्रियों से भी उसको तृप्ति न मिले, उनके शरीर की ऊँचाई 86 अंगुल यानि 3 हाथ 14 अंगुल साधारणतः हो। साठ वर्ष तक इस लोक में सुख भोगकर परलोक सिधारे।

अनेक देश विदेशों (वाह्लीक, शूरसेन, गान्धर्व) आदि गंगा, यमुना के बीच वाले प्रदेश (दोआब) में अपना राज्यशासन जमाकर अन्त में किसी वन में मृत्यु को प्राप्त हो। इस प्रकार का फल हंस महापुरुष राजयोग होने से प्राप्त होता है ऐसा महान ऋषिमुनियों का कथन है ।

हंसे सद्भिरभिष्टुतः क्षितिपतिः शङ्खाब्जमत्स्याङ्कशै-

श्चिह्नैः पादकराङ्कितः शुभवपुर्मृष्टान्नभुग्धार्मिकः ।। फलदीपिका,

जिस जातक का जन्म हंस योग में हुआ हो उसके हाथ और पैरों में शंख, कमल, मत्स्य और अकुंश के चिन्ह हों। उसका शरीर देखने में अत्यन्त सुन्दर (शुभ, सौम्य) हो। ऐसा व्यक्ति उत्तम भोजन को प्राप्त करने वाला हो और सज्जन लोग उसकी प्रशंसा करें।

अर्थधर्मसुखभाक् नृपपूज्यः श्लेष्मलो गुरुसुरद्विजभक्तः ।

सुस्वरः प्रथितकीर्तिरुदारो हंसजः सुरुचिर श्चिरजीवी ।। जातकदेशमार्ग,

जिस जातक का जन्म हंस योग में हुआ हो वह धर्मात्मा, धनवान्, सुखी, राजा द्वारा पूजित (सम्मानित), देवता और गुरुओं का भक्त होता है। ऐसे व्यक्ति का स्वर अच्छा होता; वह देखने में अति सुन्दर और दीर्घायु होता है। ऐसा व्यक्ति उदार होता है एवं उसे सुयश प्राप्त होता है । उसमें कफ की मात्रा अधिक होती है।

हंसोद्भवः स्मरसमो निपुणः सुपादो

हंसस्वरोऽस्रवदनोन्नतनासिकश्च

गौराङ्ग एति गगनेभमिताद्बमायुः

श्लेष्मा सुखी तनयशास्त्रगुणाङ्गनाढ्यः ।। ज्योतिषतत्त्वम्

हंस योग में उत्पन्न मनुष्य कामदेवतुल्य शरीरवाला; प्रवीण, सुन्दर पाद वाला; हंस के समान स्वरवाला; रुधिर के समान मुख और ऊंची नासिका वाला; गौर वर्णः 80 वर्ष की आयु; श्लेष्म (कफ) प्रकृति; सुखी; पुत्र शास्त्र, गुण और स्त्री से युक्त होता है

मालव्ययोग फल

स्त्रीचेष्टो ललिताङ्गसन्धिनयनः सौन्दर्यशाली गुणी

तेजस्वी सुतदारवाहनधनी शास्त्रार्थवित्परिडतः।

उत्साहप्रभ ुशक्तिमन्त्रचतुरस्त्यागी परस्त्रीरतः

सप्तत्यब्दमुपैति सप्तसहितं मालव्ययोगोद्भवः।। जातकपारिजात

मालव्य योग में जायमान प्राणी स्त्री की तरह स्वभाववाला, सुन्दर शरीर की सन्धि और नेत्रवाला, सुन्दर, गुणी, तेजस्वी, पुत्र - स्त्री वाहन - वाला, धनी, शास्त्रार्थज्ञ पंडित, उत्साही, प्रभूशक्ति वान् मन्त्रज्ञ चतुर, त्यागी, परस्त्रीरत और 77 वर्ष की आयुवाला होता है।

अस्थूलौष्ठोऽप्यविषतवपुर्नैव रक्ताङ्गसन्धि-

र्मध्ये क्षामः शशिधररुचिर्हस्तिनासः सुगण्डः ।

सद्दीप्ताक्षः समितिविदितो जानुदेशाप्तपाणि-

र्मालव्योऽयं विलसति नृपः सप्ततिर्वत्सराणाम् ।।

जिस जातक के जन्माग में मालव्य योग का समावेश हो उसका ओंठ पतला शरीर सुगठित, हाथ-पैर आदि अवयवों के सन्धिस्थान लाल, मध्य (कटिप्रदेश) में श्यामता, लम्बी नाक, मनोहर कपोल एवं नेत्र अत्यन्त प्रकाशवान सुन्दर होते हैं, स्वयं सभा-समिति के द्वारा अति प्रसिद्ध हो, उसके हाथ स्वभावतः घुटने के नीचे तक लम्बे अर्थात् आजानुबाहु (यह राजा का प्रधान चिन्ह है) हो, तथा सत्तर वर्ष तक अपनी जीवनावस्था में अत्यन्त कार्यकुशल तथा सर्वतः दैदीप्यमान रहे, उसके बाद मोक्ष को प्राप्त हो।

वक्त्रं त्रयोदशमितांगुलमस्य दीर्घं

तिर्यग्दशांगुलमितं श्रवणान्तरालम् ।

मालव्यसंज्ञनृपतिः ससुतो भुनक्ति

लाटांश्च मालवससिन्धुसुपारियात्रान् । । मानसागरी,

मालव्य महापुरुष राजयोग में उत्पन्न जातक के मुख का दैर्घ्य तेरह अंगुल, लम्बाई 10 अंगुल के तुल्य (दोनों कान के बीच में) हो (यह भाग्यसूचक है) तथा लाट, मालवा, सिन्ध (पश्चिम गुजरात के करीब वाला) एवं पारियात्र इन देशों का प्रधान शासक बन कर योग्य पुत्रों के साथ रहे, यह मालव्य योग का फल है जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है।

पुष्टोङ्गो धृतिमान्धनी सुतवधूभाग्यान्वितो वर्धनो ।

मालव्ये सुखभुक्सुवाहनयशा विद्वान्प्रसन्नेन्द्रियः । । फलदीपिका,

जिस जातक का जन्म मालव्य महापुरुष राजयोग में होता है वह धैर्यवान् और पुष्ट अंग वाला होता है। उत्तम भोजन करने वाला, विद्वान्, प्रसन्नमुख, शान्तचित्त, पुत्र और स्त्रियों के सुख से युक्त, सदैव वृद्धि को प्राप्त, यशस्वी और अच्छे वाहनों का (मोटर आदि) भोक्ता होता है।

गीतप्रियो रजतरत्नपरिच्छदस्त्री-

सद्वस्त्रभूषणयुतो विषयोपभोक्ता ।

रामामनोहरयषुः कफवातशाली

मालव्यजो भवति सप्ततिवर्षजीवी ।। जातकदेशमार्ग,

जिस जातक का जन्म मालव्य महापुरुष राजयोग में होता है, वह गायन विद्या में निपुण और कामिनी के समान मनोहर शरीर वाला होता है। उसमें कफ और वात अधिक मात्रा में होते हैं। ऐसा व्यक्ति चांदी के पदार्थ, रत्न, सद्वस्त्र, भूषण, स्त्रीसुख आदि भोग पदार्थों को प्राप्त करता है । ऐसे व्यक्ति को 70 वर्ष की आयु प्राप्त होती है।

मालव्यजो बुधवरः परदारगामी

योषास्वभावललिताङ्गविलोचनश्च ।

उत्साहशक्तिगुणयानसुतार्थदार-

तेजोयुतोऽगतुरगोन्मितमायुरेति ।। ज्योतिषतत्त्वम्

मालव्य योग में उत्पन्न मनुष्य श्रेष्ठ विद्वान्; परस्त्रीगामी; स्त्री स्वभाव वाला; मनोहर शरीर और नेत्र वाला; उत्साह, शक्ति, गुण, वाहन, पुत्र, धन, स्त्री और तेज से युक्त एवं 70 वर्ष की आयु को प्राप्त होता है।

शशयोग फल

भूपो वा सचिवो वनाचलरतः सेनापतिः क्रूरधी-
र्धातोर्वादविनोदवञ्चनपरो दाता सरोषेक्षणः ।
तेजस्वी निजमातृभक्तिनिरतः शूरोऽसिताङ्गः सुखी
जातः सप्ततिरायुरेति शशके जारक्रियाशीलवान् ।।

अर्थात् शश योग में उत्पन्न होने वाला पुरुष राजा वा राजमंत्री होता है, वन और पर्वत में रत, सेनानायक, क्रूरबुद्धि, धातु के वाद में विनोदी, उगहारी में निरत, दानी, रोषान्वित दृष्टि - वाला, तेजस्वी , अपनी मातृभक्ति में निरत, पराक्रमी, श्यामाङ्ग सुखी, जारक्रिया में तत्पर होता है ओर 70 वर्ष आयु पाता है

लघुर्द्विजास्योऽद्विगतः सकोपः शठोऽतिशूरो विजनप्रचारः ।
वनाद्रिदुर्गेषु नदीषु सक्ताः प्रियातिथिर्नातिलघुः प्रसिद्धः ।।
नानासेनानिचयनिरतो दन्तुरश्चापि किञ्च-
द्धातोर्वादि भवति कुशलश्चञ्चलो लोलनेत्रः ।
स्त्रीसंसक्तः परधनहरो मातृभक्तः सुजङ्घो
मध्ये क्षामः सुललितमती रन्ध्रवेदी परेषाम् ।।
पर्यङ्कशङ्खशरशस्त्रमृदङ्गमाला
वीणोपमाःखलु करे चरणे च रेखाः ।
वर्षाधि सप्ततिमितानि करोति राज्यं
प्राप्तं शशाख्यनृपतिः कथितो मुनीद्रैः ।। मानसागरी,

जिस जातक का जन्म शश महापुरुष राजयोग में होता है उसका कद छोटा, शरीर सौष्ठव ब्राह्मण की तरह होता है, अधिक समय तक किसी पर्वत पर निवास करने वाला होता है, अत्यन्त क्रोधी, लोगों के साथ कभी-कभी शठता का व्यवहार करने वाला, अति शूरवीर, निर्जन प्रदेशों में अधिक भ्रमण करने वाला, वन-पर्वत दुर्गस्थानों में एवं नदी के किनारे विचरण करे, अतिथि-अभ्यागतों का सत्कार करने वाला हो, अधिक छोटा भी न हो, एवं अपने प्रान्त में अधिक प्रसिद्ध पुरुष विशेष होता है।

शश महापुरुष राजयोग का जातक विशाल सेनाओं के समूह के साथ जहां-तहां भ्रमण करे, उसके दांत असंबद्ध रहें, धातुसम्बन्ध की बातों से परिचित हो, चंचल स्वभाव एवं चंचल आंखें हो, अनेक स्त्रियों में अनुरक्त रहे, अन्य के धन का हरण करना कर्त्तव्य समझे, अपनी माता का परम सेवक हो,

उसकी जांघे अधिक प्रशंस्य हों, मध्य में दौर्बल्य रहे एवं उसकी बुद्धि अत्यधिक कुशाग्र हो तथा अन्य के गुप्तभेद को जानने वाला हो ।

जातक के हाथ एवं पैरों में पलङ्ग, शंख, शर, शस्त्र (अनेक प्रकार के) मृदंग (वाद्य विशेष) माला, वीणा आदि चिन्ह हो, तथा सत्तर वर्ष तक प्राप्त हुए राज्य का सर्वथा उपभोग कर तत्पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हो या राज्यच्युत हो जाए। इस योग में जन्म लेने वाला जातक शशक राजा कहलाता है, यह प्राचीन मुनियों का कथन है, इसमें सन्देह नहीं है।

भूपो वा सचिवो वनाचलरतः सेनापतिः क्रूरधी-
र्धातार्वादविनोदवञ्चनपरो दाता सरोषेक्षणः ।
तेजस्वी निजमातृभक्तिनिरतः शूरोऽसिताङ्गः सुखी
जातः सप्ततिरायुरेति शशके जारक्रियाशीलवान् ।। जातकपारिजात,

जिस जातक का जन्म शश महापुरुष राजयोग में हुआ हो वह राजा या राजा के समान हो, वन और पर्वतों में रहने या भ्रमण करने वाला, सेनापति (अर्थात् उसके अधीन बहुत व्यक्ति हों) क्रूर बुद्धि, धातु (लोहा, पीतल, चांदी सोना) के वाद-विवाद में विनोद करने वाला और ठग विद्या में निपुण (भावार्थ यह है कि धातु का काम करे और ठगी से धन को प्राप्त करे), दाता (देने वाला), जो अत्यन्त क्रोधी हो, तेजस्वी तथा अपनी माता का भक्त, शूरवीर, श्याम वर्ण, सुखी, जार क्रिया (परस्त्री से मैथुन कार्य) स्वभाव वाला होता है और सत्तर वर्ष की आयु को प्राप्त करता है ।

शस्तः सर्वजनैः सुभृत्यबलवान् ग्रामाधिपो वा नृपो
दुर्वृत्तः शशयोगजोऽन्यवनितावित्तान्वितः सौख्यवान् ।
लग्नेन्द्वोरपि योगपञ्चकमिदं साम्राज्यसिद्धिप्रदं
तेष्वेकादिषु भाग्यवान् नृपसमो राजा नृपेन्द्रोऽधिकः ।। फलदीपिका,

जिस जातक का जन्म शश महापुरुष राजयोग में होता है वह अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। किसी ग्राम के स्वामी हों या नृप (बहुत से मनुष्यों का स्वामी) अर्थात् उच्च पदाधिकारी हो। ऐसा व्यक्ति स्वयं बलवान् होता है और उसकी संरक्षण में अच्छे-अच्छे लोग कार्य करते हैं । ऐसे लोगों की विद्वानजन प्रशंसा करते हैं । किन्तु वास्तव में शश योग में उत्पन्न लोगों का आचरण उत्तम नहीं होता है। ऐसे-व्यक्ति अन्य पुरुषों की स्त्रियों में आसक्त रहते हैं । ऐसे लोग धनी और सुखी होते हैं।

राजप्रियो देशपुराधिनाथो भक्तो जनन्यां कृषिधान्ययुक्तः ।

वातोल्बणश्यामकृशाङ्गयष्टिः शशोद्भवः स्यात्परशाठ्यवेदी ।।

जातकदेशमार्ग,

जिस जातक का जन्म शश महापुरुष राजयोग में होता है वह श्याम वर्ण होता है उसमें वात प्रकृति की प्रधानता होती है, उसका शरीर कृश हो, वह राजा का प्रिय हो- किसी देश या ग्राम का अधिपति तथा कृषि एवं धनधान्य से सम्पन्न होता है। वह अपनी माता का भक्त एवं अन्य से शठता को ज्ञात करने में कुशल हो। यह पांचों योग पंचमहापुरुष योग कहलाते हैं। जो ग्रह केन्द्र में स्वराशि या उच्चराशि का होता है, वह बलवान् होता है। स्वभावतः उसके गुण, धर्म जातक में आ जाते हैं।

सेनेट् क्रूरमतिः सरोषनयनोऽमात्यो महीपोऽथ वा
तेजस्वी वनपर्वतेषु निरतो मत्त्र्योऽम्बिकाभक्तिमान् ।
शूरः कृष्णतनुः सुखी शशभवोऽन्यस्त्रीरतः सप्तति-
वर्षायुश्च विनोदवञ्चनपरो वादी स धातोस्तथा ।। ज्योतिषतत्त्वम्

शशयोग में उत्पन्न पुरुष सेनापति, क्रूर बुद्धि, रोष युक्त नेत्र, मंत्री वा राजा, तेजस्वी, वन तथा पर्वत में भ्रमण करनेवाला, पार्वती की भक्तिवाला शूरवीर, कृष्णदेह, सुखी, अन्य स्त्रीगामी, विनोद तथा वंचनकार्य में तत्पर एवं धातु का वादी और सत्तर वर्ष की आयु को प्राप्त होता है ।

1. पंचमहापुरुष योग किन ग्रहों से बनते हैं?

क. सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु

ख. मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि

ग. राहु, केतु, सूर्य, चंद्र, शुक्र

घ. चंद्र, बुध, शुक्र, शनि, राहु

2. पंचमहापुरुष योग बनने की मुख्य शर्त क्या है?

क. ग्रह त्रिकोण भाव में हों

ख. ग्रह नीच राशि में हों

ग. ग्रह उच्च या स्व राशि में होकर केंद्र में हों

घ. ग्रह अस्त हों

3. रूचक योग किस ग्रह से बनता है?

क. बुध

ख. मंगल

ग. शुक्र

घ. शनि

4. भद्र योग किस ग्रह से संबंधित है?

क. बुध

ख. बृहस्पति

ग. शुक्र

घ. मंगल

5. हंस योग किस ग्रह के कारण बनता है?

क. शुक्र

ख. शनि

ग. बृहस्पति

घ. मंगल

6. मालव्य योग का संबंध किस ग्रह से है?

क. शनि

ख. बुध

ग. शुक्र

घ. बृहस्पति

7. शश योग किस ग्रह के कारण बनता है?

क. शनि

ख. मंगल

ग. बुध

घ. बृहस्पति

8. पंचमहापुरुष योग किस प्रकार के योग माने जाते हैं?

क. अरिष्ट योग

ख. दारिद्र योग

ग. राजयोग

घ. दोष योग

9. केंद्र भाव कौन-कौन से होते हैं?

क. 1, 2, 3, 4

ख. 1, 4, 7, 10

ग. 3, 6, 9, 12

घ. 2, 5, 8, 11

10. पंचमहापुरुष योग का मुख्य प्रभाव क्या होता है?

क. रोग और कष्ट

ख. धन की हानि

ग. प्रतिष्ठा, वैभव और अधिकार

घ. अल्पायु

3.4 सारांश

पंचमहापुरुष योग विषयक इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ज्योतिष शास्त्र में वर्णित ये योग अत्यंत उच्च कोटि के राजयोगों में गिने जाते हैं, जिनका प्रभाव व्यक्ति के जीवन को असाधारण ऊँचाइयों तक ले जाने में सक्षम होता है। प्राचीन आचार्यों जैसे महर्षि पराशर, वराहमिहिर तथा कल्याणवर्मा ने अपने ग्रंथों—बृहत् पाराशर होरा शास्त्र, बृहत् जातक और सारावली—में इन योगों का विस्तृत वर्णन किया है, जिससे इनके महत्व और फलादेश को समझना सरल हो जाता है। इस इकाई में यह बताया गया है कि पंचमहापुरुष योग पाँच ग्रहों—मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—के विशेष स्थिति में होने पर बनते हैं, जब ये ग्रह अपनी उच्च राशि या स्व राशि में स्थित होकर केंद्र भावों (लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम) में आते हैं। ऐसी स्थिति में क्रमशः रूचक, भद्र, हंस, मालव्य और शश योगों का निर्माण होता है, जो जातक को विशिष्ट गुणों और क्षमताओं से संपन्न बनाते हैं।

इस इकाई के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक योग का अपना अलग प्रभाव और विशेषता होती है—रूचक योग साहस और पराक्रम प्रदान करता है, भद्र योग बुद्धिमत्ता और वाणी की प्रखरता देता है, हंस योग ज्ञान, धर्म और आध्यात्मिकता को प्रबल करता है, मालव्य योग सौंदर्य, सुख-सुविधा और भोग-विलास प्रदान करता है, जबकि शश योग प्रशासनिक क्षमता, धैर्य और नेतृत्व शक्ति को विकसित करता है। इस प्रकार ये योग व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुआयामी रूप से सुदृढ़ करते हैं।

अंततः, इस इकाई के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पंचमहापुरुष योग ज्योतिषीय विश्लेषण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधार हैं, जो किसी भी जातक के जीवन में सफलता, प्रतिष्ठा, अधिकार और समृद्धि के संकेतक होते हैं। ये योग व्यक्ति को केवल भौतिक उन्नति ही नहीं, बल्कि मानसिक दृढ़ता, नैतिकता और सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान करते हैं, जिससे वह समाज में एक प्रभावशाली और सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकता है। अतः पंचमहापुरुष योगों का गहन अध्ययन ज्योतिष शास्त्र के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं के लिए अत्यंत आवश्यक और उपयोगी सिद्ध होता है।

3.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख 2. ग 3. ख 4. क 5. ग 6. ग 7. क 8. ग 9. ख 10. **ग**

3.6 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र
2. वृहज्जातकम्
3. जातकपारिजात
4. सारावली
5. मानसागरी

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंचमहापुरुष योग का अर्थ, स्वरूप एवं ज्योतिष शास्त्र में इसका महत्व विस्तार से स्पष्ट कीजिए।
2. रूचक योग का विस्तार से वर्णन करते हुए इसके प्रभाव, गुण एवं जीवन पर पड़ने वाले परिणामों की व्याख्या कीजिए।
3. पंचमहापुरुष योगों का किसी जातक के व्यक्तित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं जीवन की दिशा पर पड़ने वाले समग्र प्रभाव का विवेचन कीजिए।

इकाई - 4 दारिद्र्य एवं मारक योग विचार

इकाई की संरचना

4.1प्रस्तावना

4.2उद्देश्य

4.3दारिद्र्य योग

4.3.1 मारक योग

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई षष्ठ सेमेस्टर (BAJY(N)-223) के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दारिद्रय एवं मारक योग विचार। इससे पूर्व आपने पंचमहापुरूष योग से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'दारिद्रय एवं मारक योग के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'दारिद्रय योग' से तात्पर्य दरिद्रता अथवा निर्धनता से है। कुण्डली में कैसे ग्रहों की स्थितियों के कारण यह योग उत्पन्न होता है। इस योग के होने से मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन सभी विषयों का आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

अब आप इस इकाई में 'मारक योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

मारक योग का अर्थ है- मृत्युतुल्य कष्ट प्रदान करने वाला योग। वस्तुत: कुण्डली में प्रधानतया द्वितीय एवं सप्तम भाव को मारक स्थान कहा गया है। इसलिए द्वितीयेश एवं सप्तमेश मारकेश कहे जाते हैं। अष्टम स्थान मृत्यु का होता है। आप मारक योग के कारक ग्रहों के साथ-साथ अन्य मारक योग के बारे में इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

आइए इस इकाई में हम लोग 'दारिद्रय एवं मारक योग' के बारे में उसकी विभिन्न स्थितियों एवं शुभाशुभ फलों जानने का प्रयास करते है।

4.4 उद्देश्य

- ❖ दरिद्र योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- ❖ विभिन्न प्रकार के दारिद्रय योग से परिचित हो जायेंगे।
- ❖ फलित ग्रन्थों में वर्णित दरिद्र योग को समझा सकेंगे।
- ❖ दारिद्रय योग के प्रभाव को समझ लेंगे।
- ❖ मारक योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- ❖ मारक योग के कारक ग्रह को जान लेंगे।
- ❖ कुण्डली फलादेश में मारक योग को समझा सकेंगे।
- ❖ मारक योग का महत्व जान लेंगे।

4.3 दारिद्रय योग

सर्वविदित है कि मानव जीवन सदैव खुशियों से भरा नहीं होता। कभी सुख तो कभी दु:ख और कभी-कभी व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ भी हो जाता है। राजा या दरिद्र होना मानव का उसके कर्मफल पर आधारित है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह योग के आधार पर यह ऋषियों ने अनुसंधान कर पता लगाया है कि कैसे कोई जातक ग्रह के प्रभाव तथा उसके दशादि में दरिद्रता को प्राप्त करता है। विविध ग्रन्थों के आधार पर, ऋषियों एवं आचार्यों के कथनानुसार इस इकाई में आप सभी के ज्ञानार्थ दारिद्रय योग का उल्लेख किया जा रहा है।

दारिद्रय योग का अर्थ है- दरिद्रता या निर्धनता। इस योग के प्रभाव से जातक की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं कमजोर हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह अपने व अपने परिवार का पालन करने में समर्थ नहीं रह जाता है। अतएव आइए सर्वप्रथम वृहत्पराशरहोराशास्त्र के प्रणेता पराशर मुनि के वचनों का अध्ययन करते हैं। मैत्रेय के पूछे जाने पर आचार्य पराशर जी ने दारिद्रय योग का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहा है कि -

मूल श्लोक: -

पराशर उवाच

लग्नेशे च व्ययस्थाने व्ययेशे लग्नमागते।
मारकेशयुते दृष्टे निर्धनो जायते नरः।।
लग्नेशे षष्ठभावस्थे षष्ठेशे लग्नमागते।
मारकेशन युगदृष्टे धनहीनः प्रजायते।।
लग्नेन्दू केतुसंयुक्तौ लग्नपे निधनं गते।
मारकेशयुते दृष्टे जातो वै निर्धनो भवेत्।
षष्ठाष्टमव्ययगते लग्नपे पापसंयुते।
धनेशे रिपुभे नीचे राजवंश्योऽपि निर्धनः।।
त्रिकेशेन समायुक्ते पापदृष्टे विलग्नपे।
शनियुक्तेऽथवा सौम्यैरदृष्टे निर्धनो नरः।।
मन्त्रेशो धर्मनाथश्च क्रमात् षष्ठव्ययस्थितौ।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन निर्धनो जायते नरः।।

श्लोक का अर्थ है कि पराशर जी ने कहा – यदि लग्नेश व्यय भाव में हो और व्ययेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। लग्नेश षष्ठ में हो और षष्ठेश लग्न में हो तथा

मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक धनहीन होता हैं। लग्न या चन्द्रमा केतु से युत हो और लग्नेश अष्टम में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। लग्नेश 6, 8, 12 भाव में हो; पाप ग्रह से युक्त हो तथा धनेश अपनी नीच राशि का हो या शत्रुभाव में हो तो जातक राजवंश में उत्पन्न होने पर भी निर्धन होता हैं। त्रिक (6, 8, 12) स्थान के स्वामी से युक्त तथा शनि से युक्त लग्नेश हो, पाप ग्रह से दृष्ट एवं शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। पंचमेश षष्ठ में एवं नवमेश व्यय भाव में हो और मारकेश से दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं।

पापग्रहे लग्नगते राज्यधर्माधिपौ विना।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो भवेत्।।
त्रिकेशा यत्र भावस्था तद्भावेशास्त्रिकस्थिताः।
पापदृष्टयुता बालो दुःखाक्रान्तश्च निर्धनः।।
चन्द्राक्रान्तनवांशेशो मारकेशयुतो यदि।
मारकस्थानगो वाऽपि जातोऽत्र निर्धनो नरः।।
लग्नेशलग्नभागेशौ रिष्फरन्ध्रारिगौ यदि।
मारकेशयुतौ दृष्टौ जातोऽसौ निर्धनो नरः।।
शुभस्थानगताः पापाः पापस्थानगताः शुभाः।
निर्धनो जायते बालो भोजनेन प्रपीडितः।।
कोणेशदृष्टिहीना ये त्रिकेशैः संयुता ग्रहाः।
ते सर्वे स्वदशाकाले धनहानिकराः स्मृताः।।
कारकाद् वा विलग्नाद् वा रन्ध्रे रिष्फे द्विजोत्तम!।
कारकाङ्गपयोर्दृष्टया धनहीनः प्रजायते।।

यदि दशमेश और नवमेश को छोड़कर अन्य पाप ग्रह लग्नगत हों तथा मारकेश से युक्त या दृष्ट हों तो जातक निर्धन होता हैं। त्रिक (6, 8, 12) स्थान के स्वामी जिस भाव में हों और उन भावों के स्वामी 6, 8, 12 भाव में बैठे हों तथा पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक दुःखों से आक्रान्त एवं निर्धन होता हैं। चन्द्राक्रान्त नवमांश का स्वामी यदि मारकेश से युत या मारक स्थानगत हो तो जातक निर्धन होता हैं। लग्नेश तथा लग्न का नवंमाशपति दोनों 6, 8, 12 में मारकेश के साथ हो या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता हैं। शुभग्रह की राशि में पाप ग्रह और पाप ग्रह की राशि में शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक भोजन से भी पीड़ित रहता हैं और निर्धन होता हैं। जो ग्रह त्रिकोणेश की दृष्टि से हीन हो और 6, 8, 12 के स्वामी से युक्त हो उस ग्रह की दशा या अन्तर्दशा-काल में धन की हानि होती हैं।

आत्मकारक से या लग्न से 8, 12 भाव में आत्मकारक और लग्नेश की दृष्टि हो तो भी जातक धनहीन (दरिद्र) होता हैं।।

कारकेशो व्ययं स्वस्मात् लग्नेशो लग्नतो व्ययम्।
वीक्षते चेत्तदा बालो व्ययशीलो भवेद् धुरवम्।।

आत्मकारक राशि का स्वामी कारक से द्वादश भाव को एवं लग्नेश लग्न से द्वादश भाव को देखते हों तो जातक अधिक खर्च करने वाला होता हैं।।

दारिद्रयभंग योग -

अथ दारिद्रययोगांस्तु कथयामि सभङगकान्।
धनसंस्थौ तु भौमार्की कथितौ धननाशकौ।।
बुधेक्षितौ महावित्तं कुरुते नात्र संशयः।
निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः।।
महाधनयुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ।
शनिश्चापि रवेर्दृष्टया फलमेवं प्रयच्छति।।

अर्थात् यदि धनभाव में भौम-शनि हों तो धननाशक योग होता हैं; परन्तु यदि उन पर बुध की दृष्टि हो तो जातक महाधनी होता हैं-इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। धनभाव में रवि हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है; किन्तु यदि शनि की दृष्टि नहीं हो तो जातक महाधनी होता हैं। धनभाव में शनि हो और उस पर सूर्य की दृष्टि रहे तो जातक निर्धन होता हैं, परन्तु रवि की दृष्टि न हो तो जातक महाधनी होता हैं।

जातकपारिजात के अनुसार दरिद्र योग –

भाग्येश्वरादतिबलो निधनेश्वरो वा
लग्नाधिपस्त्रिदशनाथगुरुर्यदि स्यात्।।
केन्द्राद्बहिर्दिनकरस्य कराभितप्तो।
लाभाधिपो यदि विहीनबलो दरिद्रः।।

अर्थात् अष्टम भाव का स्वामी यदि भाग्याधिपति से बलवान हो अथवा लग्न, तृतीय या दशम भाव का स्वामी वृहस्पति हो और केन्द्रेतर भाव में सूर्य सान्निध्य से निस्तेज एवं निर्बल होकर स्थित हो तथा एकादश भाव का स्वामी बलहीन हो तो जातक दरिद्र होता है।

लाभारिव्ययरन्ध्रपुत्रगृहगा जीवारमन्देन्दुजा।
नीचस्थानगता यदा रविकरच्छन्नास्तदा भिक्षुकः।।

भाग्यस्थानगतो दिनेशतनय: सौम्येतरैरीक्षितो

लग्नस्थ: शशिनन्दनो रवियुतो नीचांशगो भिक्षुक:।।

यदि वृहस्पति, भौम, शनि और बुध लग्न से ११,६,१२,८,५ वें भावों में स्थित हो तथा अपनी-2 नीच राशि में हो अथवा सूर्यरश्मि से निस्तेज हों तो जातक भिक्षुक होता है। यदि शनि भाग्यस्थान में स्थित हो तथा उस पर किसी पाप ग्रह की दृष्टि हो, सूर्य के साथ बुध अपनी नीच राशि के नवमांश में लग्नस्थ हो तो जातक भिक्षुक होता है।

जीवज्ञशुक्ररविनन्दनभूमिपुत्रा

रन्ध्राररिः फसुतकर्मगता यदि स्यात्।

लग्नेश्वरादतिबली व्ययभावनाथो

नीचस्थितो रविकराभिहतो दरिद्र:।।

वृहस्पति, बुध, शुक्र शनि और मंगल यदि ८,६,१२,५,१० भावों में स्थित हो तथा रि:फेश १२ लग्नेश से बलवान हो और अपनी नीचराशि में सूर्यरश्मियों से आहत होकर निस्तेज हो तो इस योग में उत्पन्न जातक दरिद्र होता है।

लग्ने चरे चरनांशगतेऽसितेन।

दृष्टे च नीचगुरुणा यदि भिक्षुक: स्यात्।

जातो विनाऽमरपुरोहितलग्नराशिं

जीवे रिपुव्ययगते तु भवेद्दरिद्र:।।

अर्थात् लग्न में चरराशि और चरराशि का नवांश हो और शनि तथा नीचराशि के वृहस्पति से दृष्ट हो तो जातक भिक्षुक होता है। जन्मकाल में गुरु स्वराशि से भिन्न राशि का होकर यदि ६,१२ में हो तो जातक दरिद्र होता है।

उदाहरण –

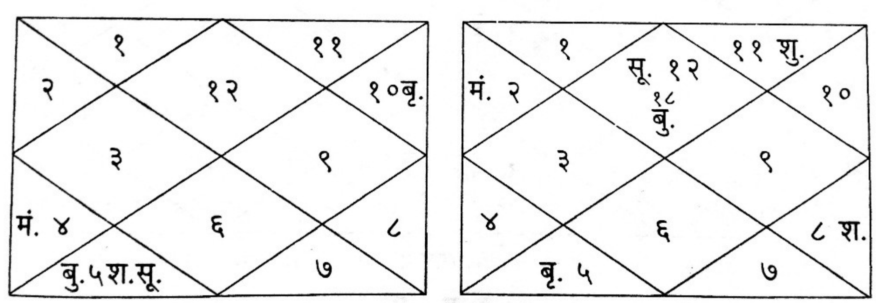

दरिद्रयोग

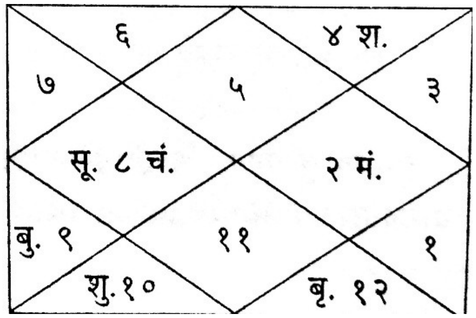

दरिद्र योग

फलदीपिका ग्रन्थ के अनुसार दारिद्रय योग –

दुस्थैर्भावगृहेश्वरैरशुभसंयुक्तेक्षितैर्वा क्रमा
द्धावैः स्युस्त्ववयोगनिः स्वमृतयः प्रोक्ताः कुहूः पामरः।
हर्षो दुष्कृति रित्यथापि सरलो निर्भाग्यदुर्योगकौ
योगा द्वादश ते दरिद्रविमले प्रोक्ता विपश्चिज्जनैः।।

श्लोक का अर्थ है कि यदि लग्न या लग्नेश अशुभ ग्रह से युत या देखा जाता हो और लग्नेश दु:स्थान में हो तो अवयोग होता है। जो अवयोग में जन्म लेता है उसकी स्थिति बहुत चंचल होती है। ऐसा व्यक्ति असज्जनों के साथ रहता है, न उसका शरीर अच्छा रहता है, न उसका चरित्र अच्छा होता है। जातक स्वल्पायु और अप्रसिद्ध रहता है, और **घोर दरिद्रता** तथा अपमान को प्राप्त करता है। फलदीपिका के रचयिता मन्त्रेश्वर जी का कथन है कि लग्न और लग्नेश के बलवान होने से समस्त कुण्डली का सुधार हो जाता है, अन्यथा कुण्डली निरर्थक हो जाती है।

अप्रसिद्धिरतिदुसहदैन्यं स्वल्पमायुरवमानमसद्भिः।
संयुतः कुचरितः कुतनुः स्याच्चंचलस्थितिरिहाप्यवयोगे।।
सुवचनशून्यो विफलकुटुम्बः कुजनसमाजः कदशनचक्षुः।
मतिसुतविद्याविभवविहीनो रिपुहृतवित्तः प्रभवति निःस्वे।।

यदि दूसरे गृह का स्वामी पापग्रह से युत अथवा देखा जाता हो या ६,८,१२ इन तीनों स्थानों में से कहीं हो और दूसरे घर में पापग्रह बैठे हों या पापग्रह दूसरे भाव को देखते हो तो 'नि:स्वयोग' होता है। जिसके पास अपना कुछ नहीं होता अर्थात् वह **दरिद्र** होता है। यहाँ नि:स्व का अर्थ दरिद्र है। ऐसे जातक के दाँत और नेत्र खराब होते है। वह कटुवाणी बोलता है। उसका कुटुम्ब भी विफल होता है। द्वितीय भाव से विचारणीय समस्त विषयों धनादि का उसे सदैव अभाव रहता है।

अरिपरिभूत: सहजविहीनो

मनसि विलज्जो हतबलवित्त:।

अनुचितकर्मश्रमपरिखिन्नो

विकृतिगुण: स्यादिति मृतियोगे।।

यदि तृतीय स्थान का स्वामी दु:स्थान में स्थित हो और तृतीय भवन और तृतीयेश अशुभ ग्रहों से युत या देखा जाता हो तो **'मृति'** योग होता है। ऐसे योग में उत्पन्न मनुष्य शुत्रुओं से पराजित, अनुचित कर्म करने वाला, परिश्रम से खिन्न और निर्लज्ज होता है। उसके बल और धन का हरण हो जाता है और उसे भाई-बहन का सुख भी नहीं मिलता। ऐसा व्यक्ति अनियंत्रित होता है।

मातृवाहनसुहृत्सुखभूषाबन्धुभिर्विरहित: स्थितिशून्य:।

स्थानमाश्रितमनेन हतं स्यात् कुस्त्रियामभिरत: कुहुयोगे।।

अर्थात् यदि लग्न से चतुर्थ गृह या चतुर्थेश अशुभ ग्रहों से युत या देखा जाता हो और चतुर्थेश ६,८,१२ इन स्थानों में से किसी में हो, तो कुहूयोग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक को माता, वाहन, मित्र, आभूषण तथा बन्धुओं का सुख प्राप्त नहीं होता। चतुर्थ गृह सुख स्थान कहलाता है और इस गृह के खराब हो जाने से मनुष्य सुखहीन होता है। ऐसे व्यक्ति को कहीं आश्रय नहीं मिलता। कोई न कोई संकट सदैव बना रहता है।

विशेषत: यहाँ टिकाकार का कथन है कि शनि यदि चौथे घर में हो और चौथे घर का स्वामी भी अशुभ हो तो बुढ़ापा बहुत दरिद्रता में व्यतीत होती है। नीचे दी गयी कुण्डली में जातक का युवावस्था में तो राज योग रहा किन्तु बुढ़ापा अत्यन्त दरिद्रता में व्यतीत हुआ।

उदाहरण –

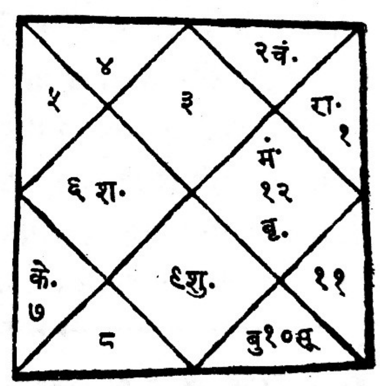

पित्रार्जितक्षेत्रगहादिनाशकृत्

साधून गुरुन्निन्दति धर्मवर्जित:।

प्रत्नातिजीर्णाम्बरधृच्च दुर्गतो
निर्भाग्ययोगे बहुदु:खभाजनम्।।

यदि कुण्डली के नवें स्थान का स्वामी लग्न से ६,८,१२ वें भाव में हो और नवमेश तथा नवम गृह पर अशुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वहाँ अुशभ ग्रह बैठे हों तो **'निर्भाग्य'** योग होता है। जो व्यक्ति इस योग में पैदा होता है वह बहुत दु:ख उठाने वाला, पुराने कपड़े पहनने वाला तथा दुर्गति को प्राप्त करता है। नवम भाव धर्म भाव है यह बिगड़ने से मनुष्य साधुओं और गुरुओं की निन्दा करता है। ऐसे व्यक्ति को जो कुछ पैत्रिक सम्पत्ति प्राप्त होती वह भी सब नष्ट हो जाती है और वह परम दरिद्रता को प्राप्त करता है।

ऋणग्रस्त उग्रो दरिद्राग्रगण्यो
भवेत्कर्णरोगी च सौभ्रात्रहीन:।
अकाग्रप्रवृत्तो रसाभासवादी
परप्रेष्यक: स्याद् दरिद्राख्ययोगे।।

अर्थात् यदि जन्मकुण्डली में ११ वें भाव का स्वामी दु:स्थान में हो तो **दारिद्रय योग** होता है। भावेश दु:स्थान में हो और वह अशुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो विविध योग होते है। किन्तु इसका अपवाद है कि यदि भाव में सर्वत्र अशुभ ग्रह होने से अशुभ योग बने तो एकादश भाव में पापग्रह बैठने से दारिद्रय योग बनता चाहिये? किन्तु ज्योतिषियों का आप्त वाक्य है कि लाभे सर्वे प्रशस्त:। सारावली में भी कल्याण वर्मा ने लिखा है कि –

लग्नस्था: सुखसंस्था: दशमस्थापि कारका: सर्वे।
एकादशमपि केचित् वांछन्ति न तन्मतं मुनीन्द्राणाम्।।

अत: इसका अर्थ है कि यदि एकादशेश त्रिक ६,८,१२ में हो या अशुभ ग्रहों से युत हो अथवा देखे जाते हो तो दारिद्रय योग होता है। जिसकी जन्मकुण्डली में यह योग हो वह कर्जदार, अत्यन्त दरिद्र, कान की बीमारी से पीड़ित, अच्छे भाईयों से हीन, दुष्कर्म करने वाला, अप्रशस्त वचन बोलने वाला, दूसरे का नौकर और दु:ख उठाने वाला होता है।

4.3.1 मारक योग

मृत्यु मानव जीवन का शाश्वत् सत्य है। कोई भी जीव इस मृत्युलोक में जन्म लेने के पश्चात् एक न एक दिन मृत्यु को अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमें कथमपि संशय नहीं है। ज्योतिष शास्त्र कुण्डली के ग्रहों के आधार पर मारक योग का निर्धारण करता है। कुण्डली में २ एवं ७ वें स्थान को

मारक स्थान कहते है। अष्टम स्थान मृत्यु का होता है। इन्हीं स्थानों एवं उनमें स्थित ग्रहों के आधार पर एवं अन्यान्य आधार पर भी ऋषियों ने मारक योग की कल्पना की है। यद्यपि हम सब जानते है कि जीवन-मृत्यु सब विधि के हाथ से नियन्त्रित होता है। तथापि एकमात्र ज्योतिष शास्त्र मारक योग का निर्धारण करने में सक्षम है। अत: इस इकाई में हम ऋषियों द्वारा अनुसन्धान किये गये उन्हीं विविध मारक योगों का आपके ज्ञानार्थ उल्लेख करने जा रहे है।

वृहत्पराशर होराशास्त्र में आचार्य पराशर जी ने मैत्रेय से मारक योग का वर्णन करते हुए कहा कि -

मूल श्लोक: -

पराशर उवाच

तृतीयमष्टमस्थानमायु:स्थानं द्वयं द्विज!।
मारकं तद्व्ययस्थानं द्वितीयं सप्तमं तथा।।
तत्रापि सप्तमस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम्।
तयोरीशौ तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः।।
ये खेटाः पापिनस्ते च सर्वे मारकसंज्ञकाः।
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम्।।
अल्प-मध्यम-पूर्णायुः प्रमाणमिह योगजम।
विज्ञाय प्रथमं पुंसां मारकं परिचिन्तयेत्।।

पराशर ने मैत्रेय से कहा कि हे द्विज! प्राणियों के तृतीय तथा अष्टम स्थान आयुस्थान होते हैं। इन दोनों के व्यय स्थान, द्वितीय तथा सप्तम भाव मारक स्थान होते हैं। उन दोनों मारक स्थानों में द्वितीय स्थान प्रबल मारक स्थान होता हैं। उन (सप्तम, द्वितीय) स्थानों के तथा उन (सप्तम, द्वितीय) स्थानों में रहने वाने पाप ग्रह, द्वितीयेश तथा सप्तमेश के साथ रहने वाले पाप ग्रह-ये सभी मारक-संज्ञक होते हैं। उन्हीं ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में अल्प, मध्य, पूर्णायु आयुर्दाय के अनुरूप मृत्यु की सम्भावना होती हैं। अतएव पहले योगज के अनुसार अल्प, मध्य, दीर्घ आदि आयुर्दाय का ज्ञान करके तदनन्तर मारक का विचार करना चाहिए।

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च।
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने।।

गणित से समुत्पन्न आयुर्दाय के योगानुसार प्राणियों को पूर्वकथित मारक का समय उपलब्ध न हो तो व्ययेश के सम्बन्धी शुभ ग्रह की दशा में भी मरण होता हैं एवं अष्टमेश की दशा में या केवल पाप ग्रह की दशा में भी कभी-कभी मरण होता हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त मारकेश के अभाव में प्राणियों के मरण का विचार विद्वानों को कल्पना द्वारा करना चाहिए।

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु।।

मारक-कारक ग्रह अपने सम्बन्धी होने पर भर शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में नहीं मारता परन्तु अपने से सम्बन्धित न होने पर भी पापग्रह की अन्तर्दशा में मृत्युदायक होता हैं।

मारकग्रहसम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्यत्र न संशयः।।

यदि शनि पाप फलप्रद हो और मारकेश के साथ उसका सम्बन्ध (दृष्ट, युतादि) हो तो सभी मारक-कारक ग्रहों को हटाकर स्वतः मारक होता हैं, इसमें सन्देह नहीं हैं।

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि द्विज! मारकलक्षणम्।
त्रिविधाश्चायुषो योगाः स्वल्पायुर्मध्यमोत्तमाः।।
द्वात्रिंशत् पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततः परम्।
चतुष्षष्टयाः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम्।।
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं ज्ञातव्यं द्विजसत्तम!।
जनैर्विंशतिवर्षान्तमायुर्ज्ञातुं न शक्यते।।
जप-होम-चिकित्साद्यैर्बालरक्षां हि कारयेत्।
म्रियन्ते पितृदोषैश्च केचिन्मातृग्रहैरपि।।
केचित् स्वारिष्टयोगाच्च त्रिविधा बालमृत्यवः।
ततः परं नृणामायुर्गणयेद् द्विजसत्तम!।।

हे द्विज! और भी मारक ग्रह के लक्षण कहता हूँ। पूर्व में जो अल्पायु, मध्यमायु और पूर्णायु - यह तीन प्रकार का आयुर्दाय बताया गया हैं, उनमें 32 वर्ष से पूर्व अल्पायु, तदनन्तर 64 वर्षपर्यन्त मध्यमायु और उसके बाद 100 वर्ष तक दीधायु तथा 100 वर्ष से ऊपर उत्तमायु जानना चाहिए। 20 वर्ष तक जातकों के आयुर्दाय का निर्धारण करना कठिन होता हैं। अतः जन्म से 20 वर्ष तक पापग्रहों से रक्षा हेतु जप-होम, चिकित्सादि द्वारा जातक की रक्षा करनी चाहिए। 20 वर्ष तक कोई पिता के दोष से, कोई माता के दोष से, कोई अपने पूर्वार्जित कुकर्म से उत्पन्न अरिष्ट योगों से मृत्यु को प्राप्त हो

जाते हैं। अतः बाल्यावस्था में मरण के तीन कारण होते हैं। इसलिए 20 वर्ष के बाद ही आयुर्दाय का गणित करके आयु का निर्धारण करना चाहिए।

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि नृणां मारकलक्षणम्।
अल्पायुर्योगजातस्य विपद्धे च मृतिर्भवेत्।।
मध्यायुर्योगजस्यैवं प्रत्यरौ च मृतिर्भवेत्।
दीर्घायुर्योगजातस्य वधभे तु मृतिर्भवेत्।।
द्वाविंशत्र्यंशपश्चैव तथा वैनाशिकाधिपः।
विपत्तारा-प्रत्यरीशा वधभेशस्तथैव च।।
आद्यन्तपौ च विज्ञेयौ चन्द्राक्रान्तगृहाद् द्विज!।
मारकौर पापखेटौ तौ शुभौ चेद्रोगदौ स्मृतौ।।
षष्ठाधिपदशायां च नृणां निधनसम्भवः।
षष्ठाष्टरिष्फनाथानामपहारे मृतिर्भवेत्।।
मारका बहवः खेटा यदि वीर्यसमन्विताः।
तत्तद्दशान्तरे विप्र! रोगकष्टादिसम्भवः।।
उक्त ये मारकास्तेषु प्रबलो मुख्यमारकः।
तदवस्थानुसारेण मृतिं वा कष्टमादिशेत्।

हे द्विज! और भी मारक के लक्षण कहता हूँ। अल्पायु योग में जन्म लेने वाले जातक का विपत्ति नामक तारा में, मध्यमायु वालों को प्रत्यरि नामक तारा में और दीर्घायु योग में जन्म लेने वालों को वध नामक तारा में मारण की सम्भावना करनी चाहिए। लग्न के द्रेष्काण से 22 वाँ जो द्रेष्काण हो, उसका जो स्वामी हो उसमें, वैनाशिक नक्षत्र (अपने जन्मनक्षत्र में 23 वाँ नक्षत्र) का स्वामी एवं विपत्, प्रत्यरी, वध ताराओं के स्वामी चन्द्रमा जिस राशि में हो, उससे द्वितीय तथा द्वादश स्थान के स्वामी, दोनों पापी ग्रह हो तो ये सब मारक-कारक होते हैं। यदि दोनों शुभ ग्रह हों तो रोगकारक होते हैं। षष्ठेश की दशा में भी मरण की सम्भावना होती है। मारकेश की महादशा में षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश की अन्त्रतदशा में भी मृत्यु की सम्भावना रहती हैं। यदि बहुत मारक-कारक ग्रह हों तो उनमें जो ग्रह सर्वाधिक बलयुक्त हो उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण या रोगादि कष्टकारक समय का प्रादुर्भाव होता हैं। उक्त मारकेश कारक ग्रहों में सबसे बली ग्रह ही मुख्य मारक होता हैं। अतः उस ग्रह की अवस्था के अनुरूप जातक का मरण या कष्टदायक समय का भय जानना चाहिए।

राहु-केतु का मारकत्वविवेचन

राहुश्चेदथवा केतुर्लग्ने कामेऽष्टमे व्यये।
मारकेशान्मदे वाऽपि मारकेशेन संयुतः।।
मारकः स च विज्ञेयः स्वदशान्तर्दशास्वपि।
मकरे वृश्चिके जन्म राहुस्तस्य मृतिप्रदः।।
षष्ठाऽष्टरिष्फगो राहुस्तद्दाये कष्टदो भवेत्।
शुभग्रहयुतो दृष्टो न तदा कष्टकृन्मतः।।

राहु अथवा केतु लग्न में, सप्तम, अष्टम या द्वादश भाव में हो अथवा मारकेश से सप्तम में हो या मारकेश से युक्त हो तो वह भी मारक होता हैं। अतः उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण का भय होता हैं। मकर और वृश्चिक लग्न में जन्म लेने वालों के लिए राहु मारक होता हैं। उसकी दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु की सम्भावना होती है। षष्ठ, अष्टम, द्वादश में राहु स्थित हो तो उसकी दशा में कष्टदायक होता हैं। यदि उस पर शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट न हो तो कष्टकारक नहीं होता।

तृतीय स्थान से मरण कारण-कथन

लग्नातृतीयभावे तु बलिना रविणा युते।
राजहेतोश्च मरणं तस्य ज्ञेयं द्विजोत्तम!।।
तृतीये चेन्दुना युक्ते दृष्टे वा यक्ष्मणा मृतिः।
कुजेन व्रणशस्त्राग्नि-दाहाद्यैर्मरणं भवेत्।।
तृतीये शनि-राहुभ्यां युक्ते दृष्टेऽपि वा द्विज!।
विषार्तितो मृतिर्वाच्या जलाद्वा वह्निपीडनात्।।
गर्तादुच्चात् प्रपतनाद् बन्धनाद् वा मृतिर्भवेत्।
तृतीये चन्द्रमान्दिभ्यां युक्ते वा वीक्षिते द्विज!।।
कृमिकुष्ठादिना तस्य मरणं भवति धु्रवम्।
तृतीये बुधसंयुक्ते वीक्षिते वापि तेन च।।
ज्वरेण मरणं तस्य विज्ञेयं द्विजसत्तम!।
तृतीये गुरुणा युक्ते दृष्टे शोफादिना मृतिः।।
तृतीये भृगुयुग्दृष्टे मेहरोगेण तन्मृतिः।
बहुखेटयुते तस्मिन् बहुरोग भवा मृतिः।।

लग्न से तृतीय भाव बलवान रवि से युत हो तो राजा के कारण से उसकी मृत्यु होती है। तृतीय भाव चन्द्रमा से युत या दृष्ट हो तो यक्ष्म (क्षय) रोग से उसकी मृत्यु होती हैं। यदि तृतीय भाव मंगल से युक्त

या दृष्ट हो तो व्रण (घाव) या अग्नि से, तृतीय में शनि, राहु से युत या दृष्ट हो तो विष से या जल से अथवा अग्निपीड़ा से या गड्डे में गिरकर या उच्च स्थान से गिरकर या बन्धन से उसकी मृत्यु हो जाती हैं। तृतीय भाव में चन्द्रमा और मान्दि (गुलिक) युक्त हो या दृष्ट हो तो कीड़े से अथवा कुष्ठादि रोग से, तृतीय भाव में बुध से युक्त हो या दृष्ट हो तो ज्वर से, तृतीय भाव में गुरू से युक्त या दृष्ट हो तो शोफ आदि रोग से, तृतीय भाव में शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो प्रमेह रोग से उसकी मृत्यु हो जाती हैं। यदि तृतीय भाव में बहुत ग्रहों के योग अथवा दृष्टि हो तो उन सभी ग्रहों के कारणों से उस जातक की मृत्यु जाननी चाहिए।

मरण का स्थान-कथन

तृतीये च शुभैर्युक्ते शुभदेशे मृतिर्भवेत्।
पापैश्च कीकटे देशे मिश्रैर्मिश्रस्थले मृतिः।।

यदि तृतीय भाव शुभ ग्रह से युत अथवा दृष्ट हो तो शुभ स्थान (काशी आदि पुण्य तीर्थों) में मरण होता हैं। यदि तृतीय भाव पापी ग्रहों से युक्त हो या दृष्ट हो तो अशुभ स्थान में मरण होता हैं। शुभ तथा अशुभ दोनों ग्रह तृतीय भाव में बैठे हो या देखते हो तो मध्यम स्थान में उस जातक का देहावसान होता हैं।

ज्ञानाज्ञानपूर्वक मरणयोग

तृतीये गुरुशुक्राभ्यां युक्ते ज्ञानेन वै मृतिः।
अज्ञानेनाऽन्यखेटैश्च मृतिर्ज्ञेया द्विजोत्तम!।।

तृतीय भाव गुरू-शुक्र युक्त हो तो वह जातक ज्ञानपूर्वक मरता हैं। हे द्विजोत्तम! अन्य ग्रह तृतीय भाव में स्थित हों तो जातक का अज्ञानपूर्वक मरण होता हैं।।33।।

मरण देशज्ञान

चरराशौ तृतीयस्थे परदेशे मृतिर्भवेत्।
स्थिरराशौ स्वगेहे च द्विस्वभावे पथि द्विज!।।

तृतीय भाव में चर राशि हो तो परदेश में मरण होता हैं। स्थिर राशि हो तो स्वदेश में एवं द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मरण करना चाहिए।

अष्टमस्थ ग्रह से मृत्यु का कारण-ज्ञान

लग्नादष्टमभावाच्च निमित्तं कथितं बुधैः।
सूर्येऽष्टमेऽग्नितो मृत्युश्चन्द्रे मृत्युर्जलेन च।

शस्त्राद् भौमे ज्वराज्ज्ञे च गुरौ रोगात् क्षुधा भृगौ।
पिपासया शनौ मृत्युर्विज्ञेयो द्विजसत्तम!।।

लग्न से अष्टम भाव में सूर्य स्थित हो तो अग्नि के माध्यम से उसकी मृत्यु विद्वानों ने कही हैं। अष्टम चन्द्र हो तो जल से, अष्टम मंगल हो तो शस्त्र से, अष्टम बुध हो तो ज्वर से, अष्टमस्थ गुरू हो तो रोग से, शुक्र हो तो क्षुधा से और अष्टम शनि हो तो प्यास से उस जातक की मृत्यु हो जाती हैं।

तीर्थातीर्थ में करण-कथन

अष्टमे शुभदृग्युक्ते धर्मपे च शुभैर्युते।
तीर्थे मृतिस्तदा ज्ञेया पापाख्यैरन्यथा मृतिः।।

अष्टम भाव शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो और धर्मेश शुभ ग्रह से युत हो तो वह जातक किसी तीर्थ में देह-त्याग करता हैं। अष्टम पापग्रह से युत, दृष्ट हो और धर्मेश पापग्रह से युत हो तो तीर्थ से अन्यत्र मरण कहना चाहिए।

शवपरिणाम

अग्न्यम्बु मिश्रभत्र्यंशैर्ज्ञेयो मृत्युर्गृहाश्रितैः।
परिणामः शवस्याऽत्र भस्मसंक्लेदशोषकैः।।
व्यालवर्गदृकाणैस्तु विडम्बो भवति ध्रुवम्।
शवस्य स्वश्रृगालाद्यैर्गृध्रकाकादिपक्षिभिः।।

लग्न से अष्टम स्थान में अग्नि तत्व वाले ग्रह का द्रेष्काण हो अर्थात् अशुभ ग्रह का द्रेष्काण हो तो जातक का शव अग्नि में जलाया जाता हैं। जलचर वाले ग्रह का द्रेष्काण हो तो जल में फेंका जाता हैं। मिश्र (शुभ तथा अशुभ) का द्रेष्काण रहने से जातक का शव सूख जाता हैं। यदि व्याल (सर्प) द्रेष्काण हो तो कुक्कुर, श्रृगालादि हिंसक जन्तुओं से या कौवा आदि पक्षियों से चंचु द्वारा चोंच से नोचकर शव का भक्षण किया जाता हैं।

व्याल द्रेष्काणकथन

कर्कटे मध्यमोऽन्त्यश्च वृश्चकाद्याद्वितीयकौ।
मीनेऽन्तिमस्त्रिभागैश्च व्यालवर्गाः प्रकीर्तिताः।।

कर्कट राशि के द्वितीय तथा तृतीय दे्रष्काण, वृश्चिम राशि के प्रथम तथा द्वितीय द्रेष्काण एवं मीन राशि के तृतीय द्रेष्काण को व्याल वर्ग (सर्प द्रेष्काण) कहते हैं।

पूर्वजन्म-योनि और स्थान-कथन

रविचन्द्रबलाक्रान्तं त्र्यंशनाथे गुरौ जनः।

देवलोकात् समायातो विज्ञेयो द्विजसत्तम!।।

शुक्रेन्द्वोः पितृलोकात्तु मत्र्याच्च रविभौमयोः।

बुधाऽऽक्र्योर्नरकादेवं जन्मकालाद्वदेत् सुधीः।।

राशि और चन्द्रमा में जो बली हो वह ग्रह यदि गुरू के द्रेष्काण में हो तो जातक देवलोक ये आया है अर्थात् वह इससे पूर्वजन्म में देवलोक में रहता था, ऐसा जानना चाहिए। यदि शुक्र या चन्द्रमा के दे्रष्कण में हो तो वह पितृलोक (चन्द्रलोक) से आया हैं। इसी प्रकार रवि-भौम के द्रेष्काण में मृत्युलोक से एवं बुध या शनि के द्रेष्काण में हो तो वह जातक नरक से आया है, ऐसा जानना चाहिए।

मरण के अनन्तर गन्तव्य स्थान

गुरुश्चन्द्रसितौ सूर्यभौमौ ज्ञार्की यथाक्रमम्।

देवेन्दुभूम्यधोलोकान् नयन्त्यस्तारिरन्ध्रगाः।।

लग्न से 7, 6, 8 भावों में गुरू गया हो तो जातक देवलोक में जाता हैं एवं उक्त स्थानों में चन्द्रमा-शुक्र हो तो जातक चन्द्रलोक (पितृलोक) में जाता हैं तथा सूर्य-मंगल हो तो मत्र्य (भूलोक) में और बुध-शनि उक्त भावों में स्थित हो तो अधोलोक (नरक) में मरण के अनन्तर जातक जाता हैं। उक्त स्थानों मे अधिक ग्रह बैठे हो तो जो ग्रह सर्वाधिक बली हो, वह ग्रह जिस लोक का कारक हो, उसी लोक में मरण के बाद जातक जाता हैं।

अथ तत्र ग्रहाभावे रन्ध्रारित्र्यंशनाथयोः।

यो बली स निजं लोके नयत्यन्ते द्विजोत्तम!।।

हे द्विजोत्तम! यदि 6।7।8 भावों में ग्रह नहीं हो तो षष्ठ और अष्टम भाव के द्रेष्काणाधिप में जो ग्रह बली हो, उस ग्रह के लोक में मरण के पश्चात् जीव चला जाता हैं।।

तस्य स्वोच्चादिसंस्थित्या वरमध्याऽधमाः क्रमात्।

तत्तल्लोकेऽपि संजाता विज्ञेया द्विजसत्तम!।।

हे द्विजोत्तम! पूर्वकथित भावों में पूर्वोक्त ग्रह की उच्चादि स्थितिरश उस लोक में भी जीव को उत्तम, मध्यम एवं अधम पंक्ति में जानना चाहिए। अर्थात् उच्चस्थ ग्रह हो तो देव आदि लोकों में वह जीव श्रेष्ठ, नीच में हो तो नीच श्रेणी का और मध्य में ग्रह हो तो मध्यम श्रेणी का होता हैं।

अन्यान् मारकभेदांश्च राशिग्रहकृतान् द्विज!।

दशाध्यायप्रसडेग्गषु कथयिष्यामि सुव्रत!।।

श्लोकार्थ है कि हे द्विज! अन्य जो ग्रह तथा राशि के माध्यम से मारक भेद हैं, उन सभी को दशाध्याय-प्रसंग में कहूँगा।

अब यहाँ वृहत्पराशरहोराशास्त्र के पश्चात् अन्य मन्त्रेश्वर द्वारा लिखित ग्रन्थ फलदीपिका से मारक योग का विचार करते हैं।

फलदीपिका के अनुसार मारक अथवा मृत्यु योग विचार –

शशांकसंयुक्तदृगणपूर्वत:।
खरत्रिभागेशगृहं गतेऽपि वा।।
त्रिकोणगे वा मरणं शरीरिणां
शशिन्यथ स्यात्तनुरन्ध्ररि:फगे।।

अर्थात् मृत्यु के समय चन्द्रमा कहाँ होगा? निम्न स्थानों में चन्द्रमा की स्थिति हो सकती है-

1. जन्मकालीन जिस द्रेष्काण में चन्द्रमा हो उसमें जब गोचर वश चन्द्रमा आ जाये।

2. जन्मकाल में चन्द्रमा जिस स्थान पर है वहाँ से गणना करने पर जो बाइसवाँ द्रेष्काण हो उस २२ वें द्रेष्काण के स्वामी की राशि में।

3. ऊपर 4. लग्न में 5. लग्न से अष्टम में 6. लग्न से द्वादश में। इनमें से कहीं भी चन्द्रमा की स्थिति हो सकती है।

निधनेश्वरगतराशौ भानाविन्दौ तु भानुगतराशौ।
निधनाधिपसंयुक्ते नक्षत्रे निर्दिशेन्मरणम्।।

अर्थात् यदि जन्म लग्न से अष्टम का स्वामी जहाँ स्थित हो उस राशि में सूर्य गोचरवश जा रहा हो और चन्द्रमा जिस राशि में जन्मकुण्डली में बैठा हो उस में जा रहा हो अथवा जन्म लग्न से अष्टमेश जन्मकुण्डली में जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र में चन्द्रमा गोचरवश हो तो जातक की मृत्यु हो सकती है।

तिष्ठन्त्यष्टमरि: फषष्ठपतयो रन्ध्रत्रिभागेश्वरो।
मान्दिर्यद्भवनेषु तेष्वपि गृहेष्वार्कीडयसूर्येन्दव:।।
सर्वे चारवशात्प्रयान्ति हि यदा मृत्युस्तदा स्यान्नृणां
तेषामंशवशाद्वदन्तु निधनं तत्तत्त्रिकोणेऽपि वा।।

अर्थात् कुण्डली में निम्न की स्थितयाँ देखनी चाहिए-

1.अष्टमेश

2.व्ययेश

3. षष्ठेश

4. अष्टम भाव मध्य जिस द्रेष्काण में है उसका स्वामी

5. मान्दि।

जब गोचरवश शनि, गुरु, सूर्य और चन्द्र उपर्युक्त ६,८,१२ राशियों में जा रहे हो तो जातक की मृत्यु हो सकती है।

बोध प्रश्न –

1. फलदीपिका के लेखक कौन है?

   क.मन्त्रेश्वर ख. कल्याण वर्मा ग. भास्कर घ. कमलाकर

2. यदि लग्नेश व्यय भाव में हो और व्ययेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक क्या होता हैं?

   क. सुखी ख. दु:खी ग. निर्धन घ. राजा

3. निम्न में त्रिक् स्थान कौन सा है।?

   क. १,४,७ ख.६,८,१२ ग. ४,९,१२ घ. २,५,८

4. यदि धनभाव में भौम-शनि हों तो कौन सा योग होता है?

   क. धनवृद्धि योग ख. धननाशक योग ग. राज योग घ. कोई नहीं

5. यदि कुण्डली के नवें स्थान का स्वामी लग्न से ६,८,१२ वें भाव में हो और नवमेश तथा नवम गृह पर अशुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वहाँ अुशभ ग्रह बैठे हों तो योग होता है?

   क. निर्भाग्य ख. चामर योग ग. कूर्म योग घ. धनहीन

6. यदि जन्मकुण्डली में ११ वें भाव का स्वामी दु:स्थान में हो तो क्या होता है?

   क. दारिद्रय ख. राज ग. दानवीर घ. धार्मिक

7. कुण्डली में मारक स्थान कौन होता है।

   क. २, ७ ख. ५,८ ग. १,५ घ. ६,१२

8. पराशर जी के अनुसार मृत्यु का स्थान है?

   क. २,५ ख. ३,८ ग. १,४ घ. ५,७

9. निम्न में मारकेश होता है।

   क. लग्न का स्वामी ख.मारक स्थान का स्वामी ग. द्वितीय का स्वामी घ. कोई नहीं

10. लग्न से अष्टम स्थान में अग्नि तत्व वाले ग्रह का द्रेष्काण हो अर्थात् अशुभ ग्रह का द्रेष्काण हो तो जातक के शव का क्या होता है।

    क. अग्नि में दाह ख. जल में बहना ग. पक्षी भोजन घ. पशु भोजन

11. लग्न से 7, 6, 8 भावों में गुरू गया हो तो जातक मृत्यु के बाद कहाँ जाता हैं

क. नरक लोक में ख. देवलोक में ग. पाताल में घ. नाग लोक में

12. तृतीय भाव गुरू-शुक्र युक्त हो तो वह जातक कैसे मरता हैं।

क. ज्ञानपूर्वक ख. अज्ञानता में ग. नींद में घ. कार्य करते हुए

13. निम्न में मन्त्रेश्वर लिखित ग्रन्थ का नाम क्या है।

क. जातकपारिजात ख. फलदीपिका ग. वृहत्संहिता घ. ग्रहलाघव

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सर्वविदित है कि मानव जीवन सदैव खुशियों से भरा नहीं होता। कभी सुख तो कभी दु:ख और कभी-कभी व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ भी हो जाता है। राजा या दरिद्र होना मानव का उसके कर्मफल पर आधारित है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह योग के आधार पर यह ऋषियों ने अनुसंधान कर पता लगाया है कि कैसे कोई जातक ग्रह के प्रभाव तथा उसके दशादि में दरिद्रता को प्राप्त करता है। विविध ग्रन्थों के आधार पर, ऋषियों एवं आचार्यों के कथनानुसार इस इकाई में आप सभी के ज्ञानार्थ दारिद्रय योग का उल्लेख किया जा रहा है।

दारिद्रय योग का अर्थ है- दरिद्रता या निर्धनता। इस योग के प्रभाव से जातक की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं कमजोर हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह अपने व अपने परिवार का पालन करने में समर्थ नहीं रह जाता है।

मृत्यु मानव जीवन का शाश्वत् सत्य है। कोई भी जीव इस मृत्युलोक में जन्म लेने के पश्चात् एक न एक दिन मृत्यु को अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमें कथमपि संशय नहीं है। ज्योतिष शास्त्र कुण्डली के ग्रहों के आधार पर मारक योग का निर्धारण करता है। कुण्डली में २ एवं ७ वें स्थान को मारक स्थान कहते है। अष्टम स्थान मृत्यु का होता है। इन्हीं स्थानों एवं उनमें स्थित ग्रहों के आधार पर एवं अन्यान्य आधार पर भी ऋषियों ने मारक योग की कल्पना की है। यद्यपि हम सब जानते है कि जीवन-मृत्यु सब विधि के हाथ से नियन्त्रित होता है। तथापि एकमात्र ज्योतिष शास्त्र मारक योग का निर्धारण करने में सक्षम है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

दारिद्रय योग – निर्धन योग।

लग्नेश – लग्न का स्वामी

त्रिक् – ६,८,१२ स्थान।

केन्द्र – १,४,७,१० भाव को केन्द्र कहते है।

आपोक्लिम – ३,६,९,१२

त्रिकोण – ५,९ स्थान को त्रिकोण कहते है।

पणफर – २,५,८,११

व्यय भाव – १२ वाँ भाव

मारक योग – मृत्यु देने वाला योग।

मारक स्थान – २,७,८

चन्द्र लोक – पितृ लोक

अधो लोक – भू लोक अथवा नरक लोक

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क 2. ग 3. ख 4. ख 5. क 6. क 7. क 8. ख 9. ख 10. क 11. ख 12.क 13.ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – दारिद्रय योगाध्याय:।

2. जातकपारिजात – जातकभंगाध्याय:।

2. फलदीपिका – षष्ठाध्याय:।

1. वृहज्जातकम् - चन्द्राध्याय:।

2. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – चन्द्रादियोगाध्याय:।

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. फलदीपिका – मूल लेखक – आचार्य मन्त्रेश्वर। टीकाकार – गोपेश ओझा।

2. सारावली – मूल लेखक – कल्याणवर्मा। टीकाकार- मुरलीधर चतुर्वेदी।

3. वृहज्जातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार- आचार्य सत्येन्द्र मिश्र।

4. लघुजातकम् – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीकाकार – कमलाकान्त पाण्डेय।

5. सर्वार्थचिन्तामणि – मूल लेखक – श्री वेंकटेश

6. जातकपारिजात – आचार्य वैद्यनाथ

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दारिद्रय योग से क्या तात्पर्य है।
2. फलदीपिका के अनुसार दारिद्रय योग लिखिये।
3. दारिद्रय योग पर टिप्पणी लिखिये।
4. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा दारिद्रय योग एवं दारिद्रय भंग योग को समझाइये।
5. मारक योग से क्या तात्पर्य है।
6. महर्षि पराशर द्वारा प्रणीत प्रमुख मारक योगों का वर्णन कीजिये।
7. कुण्डली में मारक स्थान कौन होता है। उससे मारक योग का निर्धारण कैसे करते है।
8. मारक योग पर टिप्पणी लिखिये।

खण्ड -2

प्रश्न विचार

इकाई -1 प्रश्न प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्रश्न प्रयोजन

बोध प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.7निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई BAJY(N) – 223 , द्वितीय खण्ड के प्रथम इकाई से संबंधी है इस इकाई के अन्तर्गत ताजिक शास्त्र के अनुसार प्रश्न प्रयोजन के विचारों का उल्लेख किया जा रहा है। प्रश्न प्रयोजन से तात्पर्य जातक के जीवन सम्बन्धित प्रश्नों से है । प्रस्तुत इकाई ज्योतिष शास्त्र की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा प्रश्न शास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्वरूप है। ज्योतिष वेदांग के रूप में काल, कर्म और फल के सूक्ष्म संबंधों का विवेचन करता है तथा इन्हीं परम्पराओं के अंतर्गत प्रश्न शास्त्र का विकास हुआ है, जो आकस्मिक, तात्कालिक और जटिल जीवन स्थितियों के समाधान में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। इस इकाई में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रश्न कुंडली उस क्षण की ब्रह्माण्डीय स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है, जब प्रश्नकर्ता अपने भविष्य अथवा समस्या के समाधान की जिज्ञासा लेकर दैवज्ञ के पास उपस्थित होता है। जन्म कुंडली जहाँ जीवन के दीर्घकालिक प्रारब्ध कर्मों का संकेत देती है, वहीं प्रश्न कुंडली वर्तमान कर्मों एवं तात्कालिक परिस्थितियों को अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट करती है। इस इकाई के माध्यम से प्रश्न प्रयोजन की प्राचीन परम्परा, उसके शास्त्रीय आधार तथा ताजिक और पराशरी सिद्धान्तों के समन्वय का विवेचन किया गया है। साथ ही इसमें दैवज्ञ की योग्यता, आचार, शास्त्रज्ञान एवं प्रश्नकर्ता की पात्रता पर भी प्रकाश डाला गया है, जिससे फलित की सत्यता एवं विश्वसनीयता सुनिश्चित हो सके। प्रश्न शास्त्र को केवल भविष्य कथन का माध्यम न मानकर जीवन के उचित नियोजन, निर्णय और कर्म मार्गदर्शन का सशक्त साधन माना गया।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि -

- ❖ प्रश्न क्या है।
- ❖ प्रश्न के प्रयोजन क्या है।
- ❖ ताजिकोक्त प्रश्न प्रयोजन की परम्परा क्या है ।
- ❖ प्रश्न प्रयोजन की विधि क्या है।
- ❖ प्रश्न प्रयोजन का क्या महत्व है।

1.3 प्रश्न प्रयोजन

ज्योतिष वेदांग के छह अंगों में से एक है। ये हैं- शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद व्याकरण और ज्योतिष। ज्योतिष को फिर गणित, संहिता और होरा नामक तीन स्कंधों में विभक्त किया गया है। प्रथम स्कंध, गणित खगोल विज्ञान और गणितीय ज्योतिष से संबंधित है। द्वितीय स्कंध, संहिता, प्राकृतिक तथ्य, जैसे भूकम्प, मौसम, अकाल, महामारी आदि से संबंधित है। तृतीय स्कंध, होरा अथवा जातक, जन्मकालीन फलित ज्योतिष से संबंधित है। कालांतर में इस क्षेत्र में हुई प्रगति ने ज्योतिष को प्रारंभिक तीन स्कंधों के स्थान पर छह स्कंधों में वर्गीकृत कर दिया। ये थे गणित, संहिता, होरा, शकुन, मुहूर्त और प्रश्न। चतुर्थ स्कंध, शकुन या पूर्वाभास, भविष्य में घटने वाली घटनाओं अथवा तथ्यों के प्रभावों से संबंधित है। पंचम स्कंध, मुहूर्त, नक्षत्र, तिथि, वार आदि पर आधारित किसी कार्य से संबंधित अनुकूल समय ढूँढने से जुड़ा है और ग्रहों की जन्मकालीन स्थिति के साथ-साथ गोचर स्थिति से भी संबंधित है। षष्ठ स्कंध प्रश्न, घटना या विचार के समय का कुंडली निर्माण और कोई भी स्कंध परस्पर भिन्न नहीं हो सकता।

जन्म कुंडली और प्रश्न कुंडली

जन्म कुंडली और प्रश्न कुंडली का अंतःसंबंध पिछले और वर्तमान कर्मों की स्थिति सूचित करता है। जन्म कुंडली जन्म के समय पर आकाश का मानचित्र है और इस जीवन के प्रारब्ध अथवा संचित कर्मों को भोगने की अनुमति देता है। जन्म कुंडली पर शुभ प्रभाव पिछले जन्म के अच्छे कर्मों की ओर संकेत करता है जबकि अशुभ प्रभाव बुरे कर्मों को बताता है। यह दृष्टिकोण कर्म और दुष्टात्माएँ वाले अध्याय में विस्तार से व्याख्यायित किया गया है। जन्म कुंडली में एक अच्छी दशा और प्रश्न कुंडली में एक बुरा समय वर्तमान जीवन में प्रबल अशुभ कर्मों को दिखाता है। जन्म कुंडली में एक अशुभ दशा और प्रश्न कुडंली में अच्छा समय पुनः प्रबल होने वाले वर्तमान शुभ कर्मों को सूचित करता हैं। दोनों कुण्डलियों में शुभ अथवा अशुभ समय पिछले जन्म के अच्छे या बुरे दृढ़ कर्मों में संबंध बताएगा।

इसी प्रकार वर्ग कुंडलियों के विश्लेषण में, एक प्रासंगिक वर्ग कुंडली जन्म कुंडली के अध्ययन में केवल सहायक हो सकती है परन्तु उसकी जगह कभी नहीं ले सकती। जन्म कुंडली में किसी आश्वासन की अनुपस्थिति और वर्ग कुंडली में उपस्थिति फल नहीं दे सकती। ऐसा इसलिए कि महर्षि पराशर द्वारा विभिन्न वर्गों के 20 विंशोपक बल में से जन्म कुंडली को सर्वाधिक बिंदुओं का बल प्रदान किया गया है जबकि उसकी तुलना में अन्य वर्गों की कुंडलियों का बल बहुत कम है। इसी प्रकार प्रश्न कुंडली भी जन्म कुंडली की सहायक हो सकती है। यद्यपि फलित में असंख्य ऐसे

क्षेत्र हैं जिनका उत्तर केवल प्रश्न द्वारा सर्वोत्तम रूप से दिया जा सकता है। अतः जब जन्मकुंडली उपलब्ध है तो प्रश्न कुंडली के अतिरिक्त जन्मकुंडली को भी विवेकपूर्ण ढंग से देखें। ऐसे मामलों में जहाँ जन्मकुंडली उपलब्ध नहीं है तब प्रश्न कुंडली न केवल वर्तमान प्रश्न का उत्तर देती है बल्कि उसे विस्मयकारी उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए जन्म कुंडली की तरह भी पढ़ा जा सकता है।

प्रश्न कुंडली का विशिष्ट उपयोग

जहाँ ठीक जन्म कुंडली उपलब्ध है वहाँ भी प्रश्नकर्त्ता की चिंताओं, आकस्मिक भविष्य को जानने अथवा आकस्मिक समस्याओं का समाधान करने जैसे अनेक पहलू हैं जिन्हें केवल प्रश्न कुंडली द्वारा ही हल किया जा सकता है। अतः प्रश्न कुंडली की भूमिका एक अच्छे सहायक की हो सकता है। उदाहरणार्थ, चोरी के मामले में, चोरी हुई संपत्ति की पुनः प्राप्ति, चोर की आकृति आदि। लापता व्यक्ति के मामले में, कि वह जीवित है या मर गया, उसकी ठीक-ठीक वर्तमान शारीरिक स्थिति, बंदी स्थिति में है या नहीं, उसके छूटने की आशाएँ। बीमारी के मामले में क्या, पुनः ठीक होने की संभावना है, क्या दवा ठीक है ? क्या उपचार ठीक हैं? शादी के मामले में क्या व्यक्ति अपनी पसंद की लड़की प्राप्त करेगा : शादी की अनुकूलता और संभावना। संतान के मामले में, क्या स्त्री गर्भवती है ? बच्चे का लिंग क्या होगा ? इन जैसे असंख्य प्रश्नों में आश्चर्यजनक उचित परिणाम देने में केवल प्रश्न कुंडली पर ही विश्वास किया जा सकता है। ज्योतिष के इस क्षेत्र का महत्त्व इस बात से मापा जा सकता है कि कोई भी ज्योतिषी अपने आपको प्रश्न में गहराई से पैठ किए बिना फलित करने में सफल नही हो सकता। हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार, एक बार ब्राह्मण के रचयिता भगवान ब्रह्मा पालक विष्णु के पास पहुँचे और आकस्मिक भविष्य से संबध रखने वाली चिंताओं के समाधान हेतु प्रश्न सीखने की अपनी इच्छा व्यक्त की। इस प्रश्नशास्त्र की उत्पत्ति इतनी प्राचीन है।

प्रश्न का आधार

जन्म कुंडली बच्चे के जन्म के समय के लिए निर्मित की जाती है। उसी प्रकार प्रश्न कुंडली भी उसी समय के लिए निर्मित की जाती है जब प्रश्नकर्त्ता अपने भविष्य को जानने के लिए ज्योतिषी के पास आता है और जब व्यक्ति के मन में अनेक अंतर्द्वंद्व हो सकते हैं जिनके विषय में ज्योतिषी को सावधानी से विश्लेषण करने की आवश्यकता है। इन निर्णयों को लेने में यद्यपि मनुष्य अत्यधिक योग्य होने पर भी बड़ी कठिनाई अनुभव करता है और इसीलिए वह सलाह और परामर्श के लिए ज्योतिषी के पास जाने के लिए लालायित रहता है। ज्योतिष का प्रमुख प्रयोजन भविष्य सुनियोजन

के लिए सही दिशा में सलाह देना और यथा शक्ति प्रयत्नों के लिए मार्ग बतलाना है तथा परामर्श, शक्तियों अथवा प्रयासों का माध्यम बनना है। हम अपने चारों ओर बहुत सी विषमताएं देखते हैं। बहुत से व्यक्ति हैं जो अपने प्रयासों को एक दिशा में कार्यरत रखते हैं, लेकिन सफल न होने पर अपना मार्ग बदलने पर विवश हो जाते हैं। अगर उन्हें पहले ही ज्योतिषीय परामर्श मिल जाता तो उनके जीवन का स्वरूप भिन्न ही होता । अतः यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या एक व्यक्ति अपना भाग्य बदल सकता है। हाँ, उचित क्रिया, प्रयास अथवा कर्मों से। भाग्य कभी भी निर्धारित नहीं है। हमारे वर्तमान कर्म हमारे भाग्य को अदृढ़ कर्म फल की सीमा में बदल सकते हैं।-

ज्योतिष के कई ग्रन्थों के अध्ययन से यह बोध होता है कि पूर्वाचार्यों ने ग्रन्थ के आरम्भ में प्रश्न करने की परम्परा कही है, बाद में उसका समाधान कहा है। आरम्भिक प्रश्न प्रयोजन दैवज्ञों की विशेषता रही है । सामान्य रूप से हम भी विचार करे तो यह पाते हैं कि किसी भी प्रश्न के बिना उसका समाधान कैसे हो सकता है ? अतः प्रश्न प्रयोजन दैवज्ञों के मत में भी प्रासांगिक था, आज भी है। इसी क्रम में प्रस्तुत इकाई ताजिक ग्रन्थों के प्रश्न प्रयोजन से जुड़ा है। प्रश्न प्रयोजन को बताते

आचार्य का कथन है कि -

दैवज्ञस्य हि दैवेन सदसत्फलवाञ्छया ।
अवश्यं गोचरे मर्त्यः सर्वः समुपनीयते ॥
अश्रौषीच्च पुरा विष्णार्ज्ञानार्थं समुपस्थितः ।
वच लोकनाथोऽपि ब्रह्मा प्रश्नादिनिर्णयम् ॥

ज्योतिषीयों के मत से दैव (भावी प्रारब्ध कर्म) से प्रेरित सभी लोग अवश्य ही गोचर में शुभाशुभ फल की इच्छा से प्राप्त होते हैं । अर्थात् लोगों को गोचर और प्रश्नों से भी भावी शुभाशुभ फल होते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल में लोकस्वामी ब्रह्माजी भी प्रश्न निर्णय ज्ञान के हेतु श्री भगवान विष्णु के पास गये थे । यह दर्शाता है कि देव काल से ही प्रश्न प्रयोजन की परम्परा रही है। आचार्य भास्कराचार्य भी सिद्धान्तशिरोमणि में प्रश्न प्रयोजन को बताते हुये कहते है कि -

प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणक: प्रश्नैर्विना प्रायशोऽ-
तस्ताम् वच्मि विचित्रभङ्गि चतुरप्रीतिप्रदानाय यान् ।
आकर्ण्यापि सुवर्णवर्णवदनं वैवर्ण्यमेति क्षणात्।
तस्याखर्वकुगर्वपर्वतशिरः प्रौढयाधिरूढोऽत्र यः॥

पाटया च बीजेन च कुट्टकेन वर्गप्रकृत्या च तथोत्तराणि ।
गोलेन यन्त्रैः कथितानि तेषां बालावबोधे कतिचिच्च वच्मि ॥

अर्थात् ज्योतिष की परिपक्व बुद्धि वाला गणक किसी भी ज्योतिषज्ञों की सभा में प्रश्न ज्ञान के बिना प्रौढ़ ज्योतिष विज्ञ नहीं कहला सकता। इसलिए आचार्य विचित्र-विचित्र प्रकार के प्रश्नों को चतुर बुद्धिवालों को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए यहाँ कहेंगे। इन प्रश्नों को सुनकर जिहन ज्योतिषियों के चेहरे तथा शरीर की कांति सुवर्ण की आभा के समान है उनके चेहरे का रंग क्षणभर में क्षीण हो जा है तथा उनका भी जो ज्योतिष के ज्ञान में अपंग समान तथा छोटे कद के होते हुए भी जिनका कुत्सिगर्व अर्थात् घमंड से पर्वत के समान सिर ऊँचा करके प्रौढ़ ज्योतिषी के पद पर आरूढ़ है । गोल व यन्त्रों, पाटी गणित, बीजगणित और कुट्टक तथा वर्ग प्रकृति से संबंधित कुछ । प्रश्नों तथा उत्तरों को भी कहेंगे आपने देखा कि उपर्युक्त श्लोक में कैसे आचार्य ने प्रश्न प्रयोजन के महत्व को बतलाया है। मुहूर्त्तचिन्तामणिकार रामदैवज्ञ भी प्रश्न प्रयोजन को इस प्रकार कहते है

"आदौ सम्पूज्य रत्नादिभिरथ गणकं वेदयेत्स्वस्थचित्त ।"

अर्थात् सर्वप्रथम गणक को पूष्प एवं रत्नादि (द्रव्यों) को अर्पित करके प्रसन्नचित्त होता हुआ देखकर ही प्रश्नकर्ता को उसके सामने अपने प्रश्न रखना चाहिये।

प्रश्नकर्त्ता की योग्यता तथा अयोग्यता

क्षुद्र पाखण्डि धूर्तेषु श्रद्धाहीनोपहासके ।
नोत्तरं तथ्यतामेति यदि शम्भुः स्वयं वदेत् ॥
सभायां नैव वक्तव्यं नैव प्रश्नोत्तरं निशि ।
नापराह्णे त्वविश्वस्ते त्वरितं न कदाचन ॥
भक्तायार्तदीनाय दैवज्ञो न दिशेद्यदि ।
विफलं भवति तस्मात्तेभ्यः सदा वदेत् ॥

जो प्रश्नकर्त्ता क्षुद्र, पाखण्डी, धूर्त, श्रद्धाहीन उपहास करने वाला है उसको दिया हुआ उत्तर चाहे भगवान् शंकर ने भी क्यों न दिया हो सटीक नहीं निकलेगा । बहुत लोगों के समूह में प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहिये। इसी प्रकार रात्रि के समय प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहिये। दोपहर (मध्याह्न) के बाद अपराह्न के समय में तथा अविश्वस्त पृच्छक को भी उत्तर नहीं देना चाहिये। प्रश्नों का उत्तर कभी शीघ्रतापूर्वक नहीं देना चाहिये । परन्तु यदि प्रश्नकर्त्ता भक्त, दीन या आर्त्त है तो उसके प्रश्न का उत्तर न

देने पर ज्योतिपी का ज्ञान निष्फल हो जाता है। अतः ऐसे व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर अवश्य ही देना चाहिये ॥ इन तीनों श्लोको में प्रश्नकर्त्ता की योग्यता तथा अयोग्यता का संकेत किया गया है। जो आचरण में खोटे होते हैं, उन्हें क्षुद्र व्यक्ति कहा जाता है। जिनके आचरण में दोष होता है। परन्तु ऊपर से भलमनसाहत का लबादा ओढ़े रहते हैं उनको पाखण्डी कहते हैं; जो चालाक होते हैं उन्हें धूर्त कहा जाता है। जिनमें ज्योतिषशास्त्र, प्राचीन ज्ञान तथा ऋषि प्रणीत शास्त्रों पर श्रद्धा न हो तथा जो इन सबकी खिल्ली उड़ाते हों (उपहासक हों) इन सबको प्रश्न का उत्तर देने से वह सही नहीं निकलता है; क्योंकि ऐसे लोग तो केवल परीक्षा लेने के लिये ही या ज्योतिषी का मजाक उड़ाने की गरज से ही आते हैं।

अथ दैवज्ञलक्षणमुच्यते

ज्योतिषशास्त्रविदग्धो गणितपटुवृत्तवांश्च सत्यवचाः ।
विनयी वेदाध्यायी ग्रहयजनपटुश्च भवतु दैवज्ञः ॥
दैवविदेवम्भूतो यद्वदति फलं शुभाशुभं प्रष्टुः ।.
तत्सर्वं न च मिथ्या भवति प्राज्ञैस्तया चोक्तम् ॥
दशभेदं ग्रहगणितं जातकमवलोक्य निरवशेषं यः ।
कथयति शुभमशुभं वा तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी ॥
अनेकहोरातत्त्वज्ञः पञ्च सिद्धान्तकोविदः ।
ऊहापोहपटुः सिद्धमन्त्रो जानाति जातकम् ॥

दैवज्ञ को ज्योतिषशास्त्र में पारंगत होना चाहिए। वह सच्चरित्र तथा गणितशास्त्र में कुशल हो, सत्य बोलता हो। वह विनयशील, नित्य वेदों का स्वाध्याय करने वाला, ग्रहयज्ञ (शान्तिकर्म एवं अनुष्ठानादि) करने में निपुण होना चाहिए ॥

इस प्रकार की अर्हता को प्राप्त दैवज्ञ प्राश्निक के प्रश्न का जो कुछ भी शुभाशुभ उत्तर कहता है वह सब प्राचीन ऋषियों के मतानुसार कभी असत्य नहीं होता है ॥

दैवज्ञ को दश प्रकार के ग्रहगणित को सीखना बहुत आवश्यक है। उसे सम्पूर्ण जातकशास्त्र का सविस्तर अध्ययन करना चाहिए, फिर वह जो भी शुभाशुभ फल कहेगा वह सत्य होगा (कभी मिथ्या न होगा) ॥

अनेक विद्वानों द्वारा रचित होराग्रन्थों (जातक) के अध्ययन करने वाला, सिद्धान्त ग्रन्थों में पाँच प्रकार के सिद्धान्त ग्रन्थों (ब्राह्म सिद्धान्त, वसिष्ठ सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त) में निष्णात हो, ऊहापोह (विचार) में निपुण हो तथा मन्त्रों को सिद्ध करने वाला दैवज्ञ ही जातकशास्त्र के वास्तविक रहस्य को समझ सकता है॥

आप सभी को ज्ञात होना चाहिए कि दैवज्ञ शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है- जो दैव अर्थात भाग्य के बारे में जानने वाला हो। आचार्य ने ज्योतिषी को दैवज्ञ कहकर सम्बोधित किया है, क्योंकि ज्योतिषी भाग्य को जानने वाला होता है। दैव का एक अर्थ विधि अर्थात् ब्रह्मा भी होता है।

वृहत्संहिता के अनुसार दैवज्ञ लक्षण

वृहत्संहिता में वराहमिहिर दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण बतलाते हुए कहते हैं-

तत्र सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसूयकः समः सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारूकरचरणनखनयनचिबुकदशन-श्रवणलालभ्रूत्तमांगो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोषः । प्रायः शरीरकारानुवर्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति ।

ज्योतिषी कैसा होना चाहिए? इस श्लोक के अर्थ में वह कहते है

ज्योतिषी को कुलीन, देखने में प्रिय, विनम्र, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष नहीं निकालने वाला, राग-द्वेष से रहित, दृढ़ और पुष्ट शारीरिक सन्धि वाला, सर्वांगपूर्ण, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथ, पैर, नाखून, आँख, ठोढ़ी, दाँत, कान, मस्तक और शिर वाला, सुन्दर तथा बोलने में गम्भीर और उदात्त प्रकृति वाला होना चाहिये। विदित हो कि शरीर की आकृति के अनुरूप ही दोष-गुण होते हैं। अत: दैवज्ञ को उक्तकथनानुसार होना चाहिये।

शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्विको न पर्षद्भीरूः सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतः स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभाव: पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययाद् ग्रहगणितसंहिता होराग्रन्थार्थवेत्तेति ।।

दैवज्ञ के अन्य गुणों को बतलाते हुए आचार्य कहते है कि – दैवज्ञ को पवित्र, चतुर, सभा में बोलने वाला, वाचाल, प्रतिभाशाली, देश-काल को जानने वाला, व्यसनों से रहित, शान्तिक (उत्पातों के निवारणार्थ वेदोक्त मन्त्र पाठ विनियोग का अनुष्ठान), पौष्टिक (आयु, धन आदि को बढ़ाने वाली विद्या), अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि विद्या) इनको जानने वाला, देवपूजन, व्रत, उपवासों में निरत, अपने शास्त्र द्वारा आश्चर्यजनक विषय लाकर प्रभाव को बढ़ाने वाला, प्रश्नोत्तर करने वाला, दैवात्यय (प्राकृतिक अशुभ उत्पात) के निवारणार्थ बिना पूछे भी शान्तिकर्म बताने वाला और ग्रहों के गणित, संहिता, होरादि के ग्रन्थों का ज्ञाता - समस्त गुणों से युक्त होना चाहिए।

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पंचस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युग वर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्त्तनाडीप्रमाणत्रुटित्रुटयाद्यवयवादिकस्य` कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता।।

दैवज्ञों में अब तक कहे गये गुणों के अतिरिक्त और अन्य गुणों का भी उल्लेख करते हुए आचार्य कथन है कि दैवज्ञ को ग्रहगणित के प्रसंग में पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर, पैतामह- इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त, घटी, पल, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण(राशिचक्र), राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों का ज्ञाता होना चाहिए। दैवज्ञ के गुणों के क्रम में विस्तृत वर्णन करते हुए आचार्य कहते है कि -

चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः ।

युगों का प्रमाण, सौरवर्ष प्रमाण, अयनज्ञान प्रमाण, सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र मासों को, अधिकमास, क्षयमास इनके उत्पत्ति कारणों को जानने वाला ज्योतिषी होना चाहिए।

षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित्।

प्रभव आदि ६० संवत्सर, तदन्तर्गत युग, वर्ष, मास, दिन, होरा इनके अधिपतियों की प्रतिपत्ति और छेद निवृत्ति का ज्ञान भी दैवज्ञ को होना चाहिये।

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः।

दैवज्ञ को अनेक शास्त्रों में कहे गये सौर आदि मानों में यथार्थ और अयथार्थ का विचार करने में सकुशल होना चाहिये अर्थात् इन शास्त्रोक्त भिन्न-भिन्न मानों में कौन ठीक है? कौन नहीं? इसका विचार करने में योग्य होना चाहिये।

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितां शकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः॥

सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अयननिवृत्ति के भेद, सममण्डल प्रवेशकालिक उदित अंशों के भेद, छाया जलयन्त्र से दृग्गणितैक्य को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः॥

सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाण स्थितिविमर्दवर्णा देशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा।।

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान, स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रहसमागम और ग्रहयुद्धों को बताने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः॥

प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीक प्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः॥

पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश, चापखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः
कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति।

कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की तरह अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार से जनित प्रश्नभेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होना चाहिये।

दैवज्ञ कैसा नहीं होना चाहिए-

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः।
निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ज्ञेयः॥

जो शास्त्रयुक्त अर्थ को नहीं कहता, प्रश्न पूछने पर एक का भी उत्तर नहीं देता और छात्रों को नहीं पढ़ाता, वह किस तरह शास्त्रज्ञ हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। इसलिए दैवज्ञ को ऐसा नहीं होना चाहिए।

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थ करणं यश्चान्यथा करोत्यबुधः।
स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम्।।

जिस तरह ग्रन्थ का आशय है, उसको नहीं समझकर जो मूर्ख उसका विरुद्ध अर्थ करता है, वह मान ब्रह्मा जी के पास में जाकर वेश्या की तरह उनकी स्तुति करता है। अतः दैवज्ञ को इस प्रकार का नहीं होना चाहिए।

उत्तमफलितज्ञज्योतिर्ज्ञालक्षण-

दशभेदं ग्रहगणितं जातकमवलोक्य निरवशेषमपि।
यः कथयति शुभमशुभं तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी॥

जो ज्योतिषी दस प्रकार के भेद वाले ग्रहगणित को और सभी जातक ग्रन्थ को देखकर त्रिप्रश्न सहित अध्ययन मनन कर शुभाशुभ फल को कहता है उसका फलादेश कभी असत्य नहीं होता है। समरसार में कहा है कि - विनयावनताय दीयमाना। प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय॥

अर्थात् ज्योतिष विद्या विनय नम्रता वाले को ही दी जाने पर सफल होती है। कुपात्रों को इस विद्या को नहीं देना चाहिये।

ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न प्रयोजन की प्राचीनकाल से परम्परा रही है। इसके अन्तर्गत प्राचीन आचार्यो ने स्व-स्व ग्रन्थों में जातको के ज्ञानार्थ प्रश्न एवं उसके समाधान करने का वर्णन किया है।

ज्योतिष के प्रश्न विधान में यह भी कहा गया है कि किसी व्यक्ति को अपनी समस्या के समाधान अर्थात् समाधान रूपी प्रश्न लेकर गणक के पास विनम्रतापूर्वक यथासामर्थ्य उसको द्रव्यादि देकर उसके समक्ष अपना प्रश्न रखना चाहिये।

ताजिक शास्त्र के अन्तर्गत वर्ष में प्रश्न विचार-

सामान्यतया आमजनमानस को यह जिज्ञासा होती है कि उसके वर्तमान वर्ष में विवाह, सम्मान, राजयोग या अन्य शुभ फल अथवा अशुभ फल कितना होगा ? एतदर्थ मूल रूप से प्रश्न शाखा में बताई गई नियमावली का प्रयोग किया जाता है। उसमें भी विशेषतया लग्नेश व कार्येश का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध, उन पर चन्द्रमा की विशेष दृष्टि, उनकी शुभ भाव स्थिति व बलवत्ता कार्यसिद्धि बताती है। अन्यथा होने पर कार्यहानि कहनी चाहिए।

उदाहरणार्थ-

किसी ने वर्ष में विशेषतया धन - लाभ पर विचार करने के लिए कहा है तो मुन्था की शुभता व वर्षे की बलवत्ता एवं शुभस्थान स्थिति, सामान्यतया जन्मकुण्डली के नियमानुसार लग्न व भावों की शुद्धता का विचार करना चाहिये।

इसके बाद भी प्रधानतया लग्नेश व लाभेश तथा लग्नेश व धनेश की दृष्टि का, इत्थशालादि विशेष विचार करके तथा इन पर चन्द्रयोग दृष्टि या इत्थशाल हो तो पूरे वर्ष में व इनकी दशा में विशेष लाभ कहना चाहिए। यही विधि अन्य प्रश्नों पर भी लागू होगी।

ज्योतिष के आचार्यो का मन्तव्य है कि जातक शास्त्र के सभी नियमों का प्रयोग प्रश्न शाखा में भी

किया जा सकता है। यथा -

जन्मसमये यदुक्तं शुभाशुभं दिव्यदृग्भिराचार्यैः।
पृच्छाकालेऽपि नृणां तदेव भवतीति विज्ञेयम्॥

अत: पहले जन्मपत्र के सम्बन्ध में फल विचार जो मूलभूत बातें कही गई हैं, उन्हें हृदयंगम करने के पश्चात् प्रश्न शाखा का अभ्यास करना चाहिए। जातक शाखा में परिश्रम किए बिना ही जो व्यक्ति प्रश्न शास्त्र में प्रयत्न करता है, मानो वह छेद वाले बर्तन में पानी समेटना का व्यर्थ परिश्रम कर रहा हो।

प्रश्न पीठिका -

1. भावों के विचारणीय विषय एवं ग्रहों का कारकत्व पूर्ववत् मस्तिष्क में बिठाना चाहिए।
2. विचारणीय भाव, भावेशत्व व कारक का सिद्धान्त यहां भी लागू करना चाहिये।
3. ताजिक शास्त्र के षोडश योग, मुन्था फल तथा वर्षफल का सम्यक् ज्ञान रखना चाहिये।
4. केन्द्र, त्रिकोण में शुभ ग्रह व ३, ६, ११ में पापग्रह सदैव प्रश्न कर्ता की सफलता बताते हैं।
5. ८,१२ भावों में ग्रह न हो तो अच्छा है, अन्यथा, शुभ ग्रह भी मध्यम हो जाता है। सामान्यतया प्रश्न में अष्टम व द्वादश में सभी ग्रह रिष्ट होते हैं। सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः ऐसा कहा जाता है।
6. विचारणीय भाव को लग्नवत् मान कर उससे भी अनिष्ट व इष्ट भावों का विचार करना है।
7. जिस भाव से २,१२,४,१० व ७ वें में शुभ ग्रहों का योग हो उस भाव की वृद्धि होगी। यदि उक्त स्थानों में पापग्रह हों तो बाधा होगी। ऐसा समझना चाहिये।

वैदिक ज्योतिष की अनेक शाखाएं हैं जिनके द्वारा फलित का विचार किया जाता है। इसमें से एक शाखा प्रश्न शास्त्र नाम से है जिसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह किसी व्यक्ति विशेष के अचानक पूछे गए प्रश्न के आधार पर कि जाती है। प्रश्न शास्त्र एक ऐसी विद्या है जो समय के अभाव में भी एक महत्वपूर्ण फलित देने में समर्थ होती है। प्रश्न का उत्तर उस समय पूछे गए प्रश्न की कुण्डली बना कर दिया जाता है।

संस्कृत भाषा में समय को अहोरात्री के रूप में दर्शाया जाता है। अहो का अर्थ होता है दिन था रात्री का अर्थ होता है रात। इसी प्रकार अहो से हो तथा रात्रि से रा लेकर निर्माण होता है होरा का यही दो भागों में विभक्त होती है जिसे दिन कि होरा व रात की होरा कहा जाता है। यह दिन और रात को बताती है। यह और कुछ नहीं केवल रात और दिन की प्रक्रिया को अभियक्त करने की पद्धति होती है।

इस विषय के बारे में ऋषि पराशर जी ने विस्तार पूर्वक अपनी पुस्तक बृहतपराशरहोरा में बताया है। इसी के साथ ही कल्याण वर्मा, वराहमिहिर और कालिदास जी ने भी इस पर काफी कुछ लिखा है। कई पाश्चात्य विद्वानों जैसे क्लाडियस टॉलमी, विलियम लिली, एलन लिओ ने भी इसमें अपना योगदान दिया।

प्रश्न शास्त्र में फलित के लिए व्यक्ति द्वारा पूछे गए प्रश्न से ही फलित किया जाता है । परंतु कुछ ज्योतिषी इसके साथ जन्म कुण्डली और वर्ष कुण्डली को भी जोड़कर देखते हैं जिसके द्वारा वह कर्म की अवधारणा को समझकर व्यक्ति का भविष्य कथन करते हैं।

प्रश्न कुण्डली एक बहुत ही प्रभावी फलित कथन है यदि इसका ध्यान पूर्वक विश्लेषण किया जाए तो यह काफी सटीक भविष्यवाणी करने में सहायक बनती है। एक ज्योतिषी को पराशरी सिद्धातों के साथ-साथ ताजिक ज्योतिष व योगों की भी पूर्ण जानकारी होनी चाहिए. उसे ग्रहों की स्थिति, डिग्री, लग्न इत्यादि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

प्रश्न शास्त्र के अनुसार प्रश्न पूछने वाले व्यक्ति का स्थान एवं उसके द्वारा पूछे गए प्रश्न का समय उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना की जन्म कुण्डली में दिया आपका जन्म समय। व्यक्ति का जन्म उसके कर्मों द्वारा निर्धारित होता है इसलिए उसके जन्म समय का बहुत महत्व होता है। जब जातक अपना भविष्य जानने हेतु किसी ज्योतिषी के पास जाता है। 'उस समय जो दैविय शक्ति और समय का संयोजन होता है वह बहुत महत्वपुर्ण होता है इसलिए जन्म कुण्डली और पश्न शास्त्र की अभिव्यक्ति में कुछ न कुछ अंतर अवश्य देखा जा सकता है।

प्रश्न कुण्डली निर्माण -

जो व्यक्ति प्रश्न पूछता है वह प्रश्नकर्ता या क्वेश्चन क्वेरी कहा जाता है. जब एक व्यक्ति प्रश्न पूछता है तो उस विशेष पल में ग्रहों की स्थिति की गणना करके प्रश्न कुंडली का निर्माण होता है. हालांकि, प्रश्न शास्त्र में चौदह प्रकार के लक्ष्णों से इसे समझा जाता है जो इस प्रकार से हैं-:सटीक समय, देश अर्थात प्रश्नकर्ता का स्थान), जातक की सांस की प्रकृति, उसकी हालत या स्थिति, स्पर्श, आरूढा, दिशा, प्रश्नाक्षर, स्थिति(प्रश्नकर्ता की चाल ढाल), चेष्टा, भाव (मानसिक रवैया), अवलोकन, उसकी पोशाक और निमित्त (उस समय के शुभ, अशुभ संकेत चिह्न) ।

प्रश्न कुण्डली में कारक तत्वों का निर्धारण

प्रश्न कुण्डली का लग्न प्रश्नकर्ता का प्रतिनिधित्व करता है। प्रश्न या समस्या को व्यक्ति विशेष का सवाल कहा जाता है, तो जातक के पूछे गए प्रश्न के भाव एवं उसके स्वामी द्वारा उसका निर्धारण किया जाता है।

प्रश्नकर्ता का प्रश्न रिश्ते, वित्तीय निवेश, कैरियर मुद्दों, पारिवारिक मामलों, संघर्ष और मुकदमों, वस्तुओं के खोने या लापता लोगों आदि के बारे में हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि पति या पत्नी से संबंधित प्रश्न हो तो सप्तम भाव को देखा जाएगा तथा सप्तमेश उसका कारक होगा।

इसी प्रकार से बिजनेस या काम से संबंधित प्रश्न हो तो दशम भाव एवं दशमेश का अवलोकन किया जाता है. इस प्रकार प्रश्नकर्ता की समस्या में कारक ग्रह प्रभावित होता है. विशेष रूप से उस भाव में स्थित किसी भी अन्य ग्रहों का होना भी हो सकता है जो आगे वर्णनात्मक जानकारी प्रदान कर सकता है, लेकिन समस्या के लिए एक ही कारक लिया जाना चाहिए।

अधिकांशत: चंद्रमा अनेक स्थिति के लिए एक सामान्य कारक रहता है. इसके द्वारा प्रशनकर्ता की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है. क्योंकि घटना या सवाल से तुरंत स्पष्ट नहीं हो सकता है

कि मामले की गहराई से संबंधित मुद्दों को कैसे समझें इसलिए, चंद्रमा की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण सामान्य कारक है।

प्रश्न कुंडली में चंद्रमा की स्थिति प्रश्न के विषय में काफी कुछ बताने में सहायक होती है परंतु हमेशा यह तथ्य कारगर सिद्ध नहीं हो पाता क्योंकि कुण्डली में कई अनेक बातें भी होती हैं जिन्हें जानना आवश्यक होता है तभी हम सही फलित कर पाने में सक्षम हो सकते हैं।

यस्माद् वा व्ययधनकामगाः शुभाख्या।
स्तदवृद्धिः खलखचरैस्तदीय बाधा॥

एवं दशमचतुर्थस्थितैस्तद्वत् कहकर भट्टोत्पल ने ४,१० भावों का भी विचार कहा है।

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्देष्टव्या पृच्छतां जन्मतो वा॥

जन्मकुण्डली अथवा प्रश्नकुण्डली में जो जो भाव अपने स्वामी से दृष्ट या युत हो या सौम्यग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) से दृष्ट या युत होगा उस भाव की वृद्धि अर्थात् शुभफल होगा। परन्तु इसके विपरीत यदि वह भाव पापग्रहों से दृष्ट होगा अथवा उसमें पापग्रहों (शनि, मंगल, सूर्य, क्षीणचन्द्र) की स्थिति हो तो उस भाव की हानि कहनी चाहिए।

मान लीजिए लग्नेश लग्न में बैठा है अथवा उसकी लग्न पर दृष्टि है या फिर लग्न में शुभ ग्रह बैठे हों अथवा उसे देखते हों तो लग्न से विचारणीय विषयों की वृद्धि होगी यदि लग्न पर उसके स्वामी की

दृष्टि या युति हो तथा उसे शुभ ग्रह भी देखते हो या लग्न में बैठे हो तो और भी अच्छा फल प्राप्त होगा।

च्युतिर्विलग्नाद्धिबुकाच्च वृद्धिर्मध्यात् प्रवासोऽस्तमयान्निवृत्तिः।
वाच्यं ग्रहैः प्रश्नविलग्नकालाद् गृहं प्रविष्टो हिबुके प्रवासी ।।

लग्न स्थान से च्युति (स्थान परिवर्तन) का विचार करें, हिबुक (चतुर्थभाव) से वृद्धि (बढ़ती, उन्नति या सफलता) का विचार करें, मध्य (खमध्य = दशमभाव) से यात्रा-प्रवास तथा अस्त (सप्तमभाव) से कार्य निवृत्ति (कार्य के पूर्ण होने) का विचार किया जाता है। इस भाँति से प्रश्न लग्न में ग्रहों की स्थिति, युति, दृष्टि आदि के अनुसार फलादेश बताना चाहिए। चतुर्थेश की चतुर्थ पर दृष्टि या स्थिति से प्रवासी का यात्रोपरान्त गृहप्रवेश बतलाना चाहिए।

च्युति- च्युति शब्द का अर्थ स्थान से हटना, चल पड़ना, यात्रा प्रारम्भ कर देना, गमन करना, भूल-चूक, रिसाव, पतन अवनति, विनाश, लोप, अदृश्य, होना आदि होता है। जेल आदि से छूटने का अर्थ भी च्युति है। इसका विचार लग्न से करना चाहिए।

वृद्धि - वृद्धि का अर्थ सफलता, बढ़ती, उन्नति, प्रमति, मित्रता आदि से होता है। इसका विचार चतुर्थ से होता है।

निवृत्ति- निवृत्ति से तात्पर्य शत्रु से निपटना, यात्रा से निपटना, रोगमुक्त हो जाना तथा नष्ट वस्तु का प्राप्त हो जाना आदि होता है। इसका विचार सप्तमभाव से किया जाता है।

प्रवास —प्रवास का अर्थ किसी कार्य के लिए परदेश में निवास करना, यात्रा में थोड़े दिनों के लिए दूसरे स्थानों पर रहना आदि होता है। इसका विचार दशमभाव से किया जाता है।

यदि प्रश्न लग्न में चर राशि (मेष, कर्क, तुला तथा मकर) की लग्न है। तब च्युति होगी। यदि प्रश्नलग्न में स्थिरराशि (वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ) की लग्न है तब च्युति नहीं होगी अर्थात् यदि तबादले का प्रश्न हो तो तबादला नहीं होगा ऐसा समझना चाहिए। द्विस्वभावराशि (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) की लग्न होने पर च्युति में विलम्ब नहीं होता अर्थात् सुनिश्चितता की स्थिति न होकर असमंजस की स्थिति होती है। सर्वत्र यह ध्यान रखना चाहिए कि इन चर, स्थिरादि लग्नों पर शुभ या पापग्रहों की दृष्टि, युति वा स्थिति के प्रभाव के अनुसार शुभाशुभ फल घटित होता है।

ताजिकनीलकण्ठी में प्रष्टुः परिचय -

ऋजुरयमनृजुर्वाऽयं प्रष्टा पूर्वं परीक्ष्य लग्नबलात्।
गणकेन फलं वाच्यं दैवं तच्चित्तगं स्फुरति ।।

लग्नस्थे शशिनि शनौ केन्द्रस्थे ज्ञे दिनेशरश्मिगते।
भौमज्ञयोः समदृशा लग्नगचन्द्रेऽनृजुः प्रष्टा ॥
लग्ने शुभग्रहयुते सरलः क्रूरान्विते भवेत्कुटिलः।
लग्नेऽस्ते सौम्यदृशा विधुगुरूदृष्ट्या च सरलोऽयम्।
यदि गुरूबुधयोरेकः पश्यत्यस्ताधिपंच रिपुदृष्ट्या।
तत्कुटिलः प्रष्टा खल्वनयोरेकस्तयोः साधुः॥

अर्थात् प्रश्नकर्ता सीधा या व्रक है, इस विषय को लग्नवश पहले परीक्षा करके तब शुभाशुभ फल को ज्योतिषी को कहना चाहिये। क्योंकि उस ज्योतिषी के हृदय में उक्त विषय की स्फूर्ति होती है। यदि चन्द्रमा लग्न में शनि केन्द्र १,४,७,१० में हो, बुध अस्त हो और मंगल या बुध की समान दृष्टि से लग्न स्थित चन्द्रमा देखा जाय, तो पूछने वाला कुटिल समझना चाहिये। अथवा लग्न शुभग्रह से युत हो, तो प्रष्टा को सीधा समझना चाहिये। यदि लग्न पापग्रह से युत तो कुटिल कहना या लग्न तथा सप्तम स्थान बुध, चन्द्रमा, वृहस्पति से देखा जाय तो सरल कहना चाहिये या यदि बुध और वृहस्पति में एक कोई ग्रह शत्रु दृष्टि से सप्तमेश को देखे तो कुटिल प्रष्ट कहना चाहिये। यदि उन दोनों में कोई एक मित्रदृष्टि से सप्तमेश को देखे तो सज्जन प्रश्नकर्ता कहना चाहिये।

आदिमं लग्नतो ज्ञानं चन्द्रस्थानाद्वितीयकम्।
सूर्यस्थानात्तृतीयं स्यात्तुर्यं जीवगृहाद्भवेत् ॥
बुधभृग्वोर्बली यः स्यात्तद्गृहात्पंचमं पुनः ॥

अर्थात् यदि प्रश्नकर्ता अनेक प्रश्न एक ही साथ और एक ही काल में करें तो लग्न से प्रथम, चन्द्रमा से द्वितीय, सूर्य के स्थान से तृतीय, वृहस्पति के स्थान से चतुर्थ, तथा बुध - शुक्रों में जो विशेष बलवान् हो उसके राशि से पांचवें प्रश्न का विचार करना चाहिये।

सम्यग्विचार्य लग्नं ब्रूयात्प्रश्नं सकृद्यथाशास्त्रम्।
यस्त्वेकं ब्रूतेऽसौ तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी ॥

अर्थात् जो ज्योतिषी शास्त्र के अनुसार अच्छी तरह लग्न को विचार करके एक काल में एक ही प्रश्न को बताता है उसकी वाणी कभी असत्य नहीं होती है।

बोध प्रश्न-

1. दैवज्ञस्य हि दैवेन सदसत्फलवाञ्छया।
अवश्यं मर्त्यः सर्वः समुपनीयते ॥

क. लग्ने ख. गोचरे ग. नक्षत्रे घ. वर्षप्रवेशे

2. प्रश्न शास्त्र भाग है-

क. सिद्धान्त स्कन्ध का

ख. होरा स्कन्ध का

ग. संहिता स्कन्ध का

घ. कोई नहीं

3. प्रश्न सिद्धान्त में मुख्याधार है -

क. राशि ख. ग्रह ग. लग्न घ. प्रश्न

4. गणित शास्त्र के कितने भेद है।

क. 3 ख. 10 ग. 15 घ. 20

5. प्रश्न पूछने वाला कहलाता है-

क. धाता ख. ध्येता ग. प्रश्नकर्ता घ. धर्ता

6. निम्न में से कौन-सा स्कंध जन्मकालीन फलित से संबंधित है?

क. गणित ख. संहिता ग. होरा घ. शकुन

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से आपने जाना कि ज्योतिष वेदांग न केवल एक सैद्धान्तिक विद्या है, अपितु मानव जीवन के व्यावहारिक पक्षों से गहराई से जुड़ी हुई एक समग्र शास्त्रीय परम्परा है। इस इकाई के अध्ययन में आपने जाना कि ज्योतिष, वेदांगों के छह अंगों में से एक होकर शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और व्याकरण के साथ समन्वित रूप में कार्य करता है तथा प्रारम्भ में गणित, संहिता और होरा—इन तीन स्कंधों में विभक्त था, जो कालान्तर में विकसित होकर गणित, संहिता, होरा, शकुन, मुहूर्त और प्रश्न—इन छह स्कंधों के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। आपने यह भी अध्ययन किया कि जन्म कुंडली और प्रश्न कुंडली का परस्पर संबंध पूर्व एवं वर्तमान कर्मों की स्थिति को स्पष्ट करता है तथा दोनों का विवेकपूर्ण प्रयोग ही सही फलित का आधार बनता है। इस इकाई में प्रश्न शास्त्र के महत्व को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है, जहाँ यह बताया गया है कि अनेक आकस्मिक, तात्कालिक एवं जटिल समस्याओं—जैसे चोरी, रोग, विवाह, संतान, लापता व्यक्ति आदि—का समाधान जन्म कुंडली की अपेक्षा प्रश्न कुंडली द्वारा अधिक सटीक रूप में किया

जा सकता है। आपने यह भी जाना कि प्रश्न कुंडली निर्माण का आधार प्रश्न पूछने का समय, स्थान तथा प्रश्नकर्ता की मानसिक स्थिति होती है, और इसमें लग्न, भाव, भावेश, कारक ग्रह तथा विशेष रूप से चन्द्रमा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इस इकाई में ताजिक शास्त्र के सिद्धान्तों, इत्थशालादि योगों, मुन्था विचार तथा वर्षफल में प्रश्न विचार की प्रक्रिया का भी सम्यक् अध्ययन कराया गया है। साथ ही यह स्पष्ट किया गया है कि प्रश्न शास्त्र का सफल प्रयोग तभी संभव है जब दैवज्ञ स्वयं शास्त्रज्ञ, विनयी, सत्यवादी, गणित एवं सिद्धान्तों में निपुण तथा आचार-विचार से शुद्ध हो। वृहत्संहिता एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थों के माध्यम से दैवज्ञ के गुण, योग्यता और अयोग्यता का विस्तृत वर्णन इस इकाई को शास्त्रीय दृढ़ता प्रदान करता है। आपने यह भी समझा कि प्रश्नकर्ता की श्रद्धा, आचरण और पात्रता भी उत्तर की सत्यता को प्रभावित करती है। समग्र रूप से यह इकाई यह बोध कराती है कि प्रश्न प्रयोजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन, वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक है तथा बिना जातक शास्त्र के गहन अध्ययन के प्रश्न शास्त्र में प्रावीण्य प्राप्त करना संभव नहीं है। इस प्रकार इस इकाई का अध्ययन ज्योतिष के प्रश्न शाखा की सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों ही दृष्टियों से सुदृढ़ समझ विकसित करता है और एक सक्षम दैवज्ञ बनने की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है।

1.5 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.(ख)

2. (घ)

3. (घ)

4. (ग)

5. (घ)

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ताजिक नीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

2. ज्योतिष सर्वस्व - सुरेश चन्द्र मिश्र

3. उत्तर कालामृत –

4. बृहत्यसंहिता - चौखम्भा प्रकाशन

5. षट्पंचाशिका - चौखम्भा प्रकाशन

1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रश्न शास्त्र का महत्त्व बताते हुए इसके विशिष्ट उपयोगों पर प्रकाश डालिए।

2. प्रश्न विचार को स्पष्ट कीजिये ।

3. सामान्यतया प्रश्न प्रयोजन के मूलभूत तत्वों को लिखिये।

इकाई -2 प्रश्न विधि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रश्न विधि

बोध प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N) 223 के द्वितीय खण्ड के द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई के अन्तर्गत ताजिक शास्त्र के अनुसार 'प्रश्न विधि' का उल्लेख किया जा रहा है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने प्रश्न प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त कर लिया है यहाँ इस इकाई में आप प्रश्न विधि का अध्ययन करेगें ताजिक शास्त्र में प्रश्न करने की विधि क्या है ? उसका प्रयोजन क्या है ? उसका महत्व क्या है ? इन सभी विषयों से सम्बन्धित जानकारी आपको प्रस्तुत इकाई में होगी। इस इकाई में आप मुख्य रूप से प्रश्न विधि सम्बन्धित विषयों का सम्यक् अध्ययन प्राप्त करेगें।

इस इकाई में प्रश्नचिन्तामणि, उत्तरकालामृत, आर्या सप्तति आदि प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाणों के माध्यम से प्रश्न विधि, प्रश्न आचार, प्रश्नकर्ता एवं दैवज्ञ की पात्रता, तथा प्रश्न फल कथन की मर्यादा का सुव्यवस्थित विवेचन किया गया है। प्रश्न पूछने की विधि, शुद्ध मनोभाव, स्थान, काल, दिशा, दक्षिणा, श्रद्धा तथा स्पष्ट उद्देश्य जैसे तत्वों को प्रश्न फल की सिद्धि के लिए अनिवार्य माना गया है। साथ ही प्रश्न लग्न, आरूढ़ लग्न, ध्रुवांक, ग्रहों की अवस्था, ग्रहबल, शकुन, मुष्टि प्रश्न, खोई वस्तु की दिशा, कार्यसिद्धि का समय तथा ग्रह स्वरूप जैसे विषयों को सरल एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह इकाई यह स्पष्ट करती है कि प्रश्न शास्त्र केवल अनुमान या भविष्य कथन नहीं, बल्कि शास्त्रीय सिद्धान्तों, गणना, अनुभव और विवेक के समन्वय से विकसित एक सुदृढ़ प्रणाली है।
अतः यह इकाई में प्रश्न-विधि को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी ताजिक प्रश्न-पद्धति के मूल सिद्धांतों को समझते हुए प्रश्न-कुंडली के आधार पर यथासंभव सही एवं तर्कसंगत फलादेश करने में सक्षम हो सकेगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि.

- ❖ प्रश्न विधि क्या है।
- ❖ प्रश्न विधि का प्रयोजन क्या है।
- ❖ प्रश्न विधि के फल क्या है।
- ❖ प्रश्न विधि के महत्व क्या है।
- ❖ ताजिकोक्त प्रश्न विधि का तात्पर्य क्या है।

2.3 प्रश्न विधि विचार

ज्योतिष शास्त्र के प्रश्न सम्बन्धित ग्रन्थ 'प्रश्नचिन्तामणि' में लिखा है कि-

राशिचक्रं समभ्यर्च्य फलैः पुष्पैः सरत्नकैः।
प्रष्टा सुभूमौ दैवज्ञानेकं पृच्छेत्प्रयोजनम् ॥

अर्थात् प्रश्न कर्ता को चाहिये कि सर्वप्रथम प्रश्नकुण्डली को पवित्र स्थान में फल, द्रव्य, फूलों से पूजन करके एक काल में एक ही प्रयोजन को ज्योतिषी से पूछे।

दशभेदं ग्रहाणां च गणितं भावजं तथा।
विमृश्यैकञ्च कथयेन्नानेकं प्राह पद्मभूः ॥

ग्रहों के दस प्रकार के गणित और द्वादशभाव के गणित को विचार करके एक समय में एक ही प्रश्न को कहना चाहिये। अनेक प्रश्न को एक काल में नहीं कहना चाहिये ऐसा भगवान ब्रह्मा का कथन है।

दीप्ताद्यं दशभेदं च ग्रहाणां भांशजं फलम् ।
विचार्य प्रवदेद्यस्तु तस्योक्तं नान्यथः भवेत्॥

ग्रहों के दीप्त आदि दस प्रकार जो राशि अंश से सिद्ध दशा हो उसके वश से विचार करके जो फल कहे, उसकी बात असत्य नहीं होती है।

प्रश्न विधि-

स्वच्छ मनोभावों के साथ, हाथ में भेंट पूजा लेकर, प्रसन्नचित्त से, सुशान्त स्थान पर, स्पष्ट शब्दों में अपने प्रश्न दैवज्ञ के सामने रखने चाहिये। कभी भी दक्षिणा के बीना दैवज्ञ से प्रश्न नहीं पूछना चाहिये। इससे फल नहीं मिलता। जिस ज्योतिषी पर श्रद्धा हो, उसी ज्योतिषी से प्रश्न पूछना चाहिये। बिना स्नान किये, शरीर में तेल लगाकर, पानी के गड्ढे के पास, अपवित्र स्थान में, दैवज्ञ को रास्ते में रोककर, जल्दबाजी में, कठु कठोर वचनों में, अशान्त मन से, काम-क्रोध की अवस्था में कभी प्रश्न नहीं करना चाहिये।

आरूढ़ द्वारा प्रश्न ज्ञान -

यद्यपि उदय लग्न से प्रश्न विचार का प्रचलन अधिक है, तथापि दक्षिण भारत में आरूढ़ द्वारा प्रश्न ज्ञान का भी प्रचलन है। आरूढ़ से तात्पर्य प्रश्नकर्ता द्वारा अधिष्ठित दिशा से है। प्रश्नकर्ता किस दिशा या विदिशा में बैठकर प्रश्न करता है, यह बात प्रश्न निर्णय में विशेष महत्व रखती है। आर्या सप्तति में प्रश्नकर्ता द्वारा किए गए प्रश्न के प्रथम अक्षर से लग्न निर्णय की बात कही गई है।

प्रश्न कर्ता जिस वर्ग से सम्बन्धित अक्षर का उच्चारण करे उसी वर्ग के अधिपति ग्रह की राशि को

आरूढ़ लग्न समझ कर विचार करना चाहिए।

अवर्ग	सूर्य	तवर्ग	गुरू
कवर्ग	मंगल	पवर्ग	शनि
चवर्ग	शुक्र	यवर्ग	चन्द्रमा
टवर्ग	बुध	शादिवर्ग	चन्द्रमा

जिस ग्रह को दो राशियों का स्वामित्व प्राप्त हो, उस समय वर्ग का विषमाक्षर होने से विषम राशि व समाक्षर होने होने से सम राशि समझना चाहिये।

उत्तरकालामृत की विधि –

पश्नार्थी फलहेमपाणिरथवा कार्तान्तिकस्यान्तिकं
प्रष्टागत्य नवघ्नभास्करमितात्संख्यामभीष्टां वदेत्।
तामेव ध्रुवकं प्रकल्प्य सकलं तंकालिकं दैवविद्
ब्रूयादिष्टमनिष्टमत्र तु गुरोः पादं शरण्यं भवेत्॥
पूर्वोक्ता ध्रुवकात् खगैः परिहृताल्लब्धं क्रियाद्यातमं
तच्छेषस्त्वथ वर्तमानभवने स्युस्तन्नवांशाः क्रमात्।
तत्कालग्रहचक्रभाववशतः प्रष्टुः शुभं वाऽशुभं
प्राग्वत्खेचरभावकारकगणाद्वीर्याधिकात्संवदेत्॥

उत्तरकालामृत में एक अन्य दक्षिण भारतीय विधि लग्न निर्णय के सम्बन्ध में बताई गई है। तदनुसार लग्न को ज्ञात करके पूर्ववत् उससे प्रश्नकर्ता का शुभाशुभ फल कहना चाहिए। प्रश्नकर्ता से १ से १०८ तक किसी एक संख्या को पूछ लें। बताई गई संख्या को ९ से भाग दें जो लब्धि हो, वह मेषादि गतलग्न राशि है। शेष संख्या उस लग्न में व्यतीत नवांशों की होती है। इस लग्न में वर्तमान ग्रहों को स्थापित करके फल कहें। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति हमसे प्रश्न करता है तथा पूछने पर ९९ संख्या बताता है। ९९ / ९ = ९१ लब्धि, शेष ० है। अत: आरूढ़ लग्न या प्रश्न लग्न में ११ राशियाँ बीत गई है, अत: मीन लग्न माना जाएगा। शेष ० से समझा कि उस लग्न में प्रथम नवांश ही वर्तमान है।

ध्रुवांक से प्रश्न विचार-

पूर्वोक्तं भुक्के करम्नगुणहच्छेपेऽसमे जीवयु-
ग्युग्मे धातुरितोह मूलमुदितं चेच्छ्रम्पशेये भवेत्।
मेषे पावयुगं वृषे तु पशवः स्याद्गर्भचिन्ता युगे

राशौ कर्कटके भवेद्व्यवहृतिः स्याद्राजचिन्ता हरी ॥

पूर्वोक्त ध्रुवांक को २ से गुणा करो और ३ से विभक्त करो। यदि शेष एक बचे तो प्रश्न किसी जीव के सम्बन्ध में होगा। यदि शेष दो हो तो प्रश्न किसी धातु के सम्बन्ध में होगा। यदि शेष शून्य हो तो प्रश्न किसी वृक्ष आदि "मूल" के सम्बन्ध में है। जब प्रश्न लग्न मेष हो तो प्रश्न द्विपद अर्थात् मनुष्यों सम्बन्धी है। यदि प्रश्न लग्न वृषभ हो तो प्रश्न चतुष्पद अर्थात् पशुओं के सम्बन्ध में है। प्रश्न लग्न यदि मिथुन हो तो गर्भ सम्बन्धी प्रश्न है। यदि प्रश्न लग्न कर्क हो तो कानूनी झगड़े के सम्बन्ध में प्रश्न है। यदि लग्न सिंह हो तो प्रश्न राज्य से सम्बन्धित है।

कन्यायां तु परांगना घटगृहे वाणिज्यकं वृश्चिके
लग्ने दुष्टभयं धनुष्यपि धनं नष्टं कलिर्नक्रमे ।
कुम्भे कर्मसु चिन्तनं त्वनिमिषे स्थानस्य चिन्ता भवे-
देवं वीर्ययुताद्गृहान्नवलवात्प्रोचुर्जटाधारिणः ॥

यदि प्रश्न लग्न कन्या निकले तो प्रश्न भार्यातिरिक्त किसी स्त्री सम्बन्धी है, यदि प्रश्न लग्न तुला हो तो व्यापार सम्बन्धी प्रश्न है, यदि वृश्चिक हो तो दुष्ट मनुष्यों से भय का प्रश्न है, यदि लग्न धनु हो तो नष्ट हुए धन का प्रश्न है, यदि लग्न मकर हो तो कोई झगड़े का विषय प्रश्न से सम्बन्धित होगा, यदि लग्न कुम्भ हो तो कम के चिन्तन का प्रश्न होगा और यदि लग्न मीन हो तो स्थान अथवा पदवी का प्रश्न होगा। इस प्रकार लग्न अथवा उसका नवांश जो अधिक बली हो, उससे फल कहना चाहिए।

स्वक्षेऽर्के नृपराज्यचिन्तनमथो चन्द्रे तटाकादयो
भौमे वह्निनृपारिभीविधुसुते वाणिज्यकृष्यादयः।
जोवे मित्रनृपादयो भृगुसुते सौख्याधिकं त्वर्कजे
संस्थे मानुषचिन्तनं स्थिरधनं स्वक्षेत्रतोंऽशादपि ॥

प्रश्न के समय सूर्य यदि अपनी राशि अथवा अपने नवांश में स्थित हो (जो दोनों में से अधिक बली हो) तो प्रश्न राजा तथा राज्य से सम्बन्धित होगा। यदि चन्द्र इस प्रकार की स्थिति में हो तो तालाब आदि से सम्बन्धित होगा। यदि मंगल इस प्रकार को स्थिति में हो तो प्रश्न अग्नि, राजा अथवा शत्रु के भय से सम्बन्धित होगा। बुध ऐसी स्थिति में प्रश्न को व्यापार तथा कृषि से सम्बन्धित करता है। गुरु ऐसी स्थिति में प्रश्न का सम्बन्ध मित्रों तथा राजा आदि से बतलायेगा। शुक्र ऐसी स्थिति में सुख और खुशी की बात कहेगा। शनि हो तो प्रश्न किसी मनुष्य अथवा स्थिर घन से सम्बन्धित होगा।

फल की मात्रा का निश्चय-

एवं स्वोच्चगते खगे द्विगुणितं नीचे तु शून्यं फलं
मित्रमितं फलं प्रभवति स्याद्धे समे होनतः।
द्वादुच्चर्क्षगतो तथा स्वगृहगौ तद्वगंबोर्याधिकात्
संज्ञाकारकभावयोगजवशात्प्रश्नं वदेद् बुद्धिमान् ॥

यदि ग्रह उच्च हो तो फल दुगना, यदि नीच हो तो फल शून्य, यदि मित्र राशि में हो तो फल आधा, यदि तटस्थ ग्रह (सम ग्रह) को राशि में हो तो फल बहुत थोड़ा, दोनों ग्रह उच्च हों, अथवा दोनों स्वक्षेत्र में हों तो बुद्धिमान् को दोनों में से जो बली हो, लेकर तथा उनके मान तथा कारक का ध्यान कर बली निश्चय कर फल कहना चाहिए।

फल प्राप्ति का समय -

तत्काले खचरे स्वतुङ्गभवने तन्नाडिकाभिर्भवेत्
कार्यं स्वर्क्षगते दिनैरपि सुहृद्धे मासतोऽब्दोऽन्यथा ।
कार्यं नेतरथा खलेक्षणयुते लग्ने शनौ तुङ्गगे
चेच्छीघ्रं बलवच्छुभेक्षणयुतौ लग्नेशकार्येश्वरौ ॥

यदि प्रश्न कुण्डली में कोई ग्रह उच्च हो तो कार्य-सिद्धि घड़ियों में हो जाएगी, यदि स्वक्षेत्र में हो तो दिनो में, यदि मित्र राशि में हो तो महीनों में, यदि इतर राशियों में हो तो वर्ष लग जाएगा। अन्य राशियों में वह ग्रह पाप युत दृष्ट भी हो तो कार्य होगा। यदि शनि लग्न में उच्च हो अथवा लग्नेश तथा कार्येश बलवान् शुभ ग्रहों से दृष्ट हों तो कार्य शीघ्र हो जाता है।

प्रारुढ़ लग्न से प्रश्न निर्णय-

यौ वं पुष्पफलादिपाणिलसितौ मर्त्योऽपि यस्मिन् गृहे
तिष्ठन् पृच्छति तद्गृहे त्वभिहितं कोष्ठं दिगारूढकम्।
तस्मात्खेच र दृष्टियोगवशतः प्रश्ने शुभं वाऽशुभं
प्रश्नेष्वप्यखिलेषु कार्यपतनुस्थानेश्वराभ्यां वदेत् ॥

फूल - फलादि को स्पष्ट रूप से हाथ में लेकर जब कोई मनुष्य ज्योतिषी के पास आता है तो उस स्थान की दिशा निश्चित करे तथा पूर्वोक्त दिशा कुण्डली में उस स्थान को आरूढ़ लग्न समझे। आरूढ़ लग्न के स्वामी, तथा कार्येश को तथा उन ग्रहों को जो इन से युत हों अथवा इन पर दृष्टि डालते हों, ध्यान में रखकर शुभ-अशुभ फल को कहे ।

खोई वस्तु की दिशा का निर्णय-

मेषादेश्चरभं स्थिरं द्वितनुभं गर्भाह्वयाः स्युश्चराः

द्वारा स्युः स्थिरराशयो द्वितगुना बाह्याः क्रमाद्राशयः ।
गर्भद्वार भयोस्ततस्त्वितरभे स्थाद्दक्षिणे वामके
हस्ते वस्तु विनिर्दिशेन्मुहुरिति स्यान्मुष्टिचिन्ताविधौ ॥

मेषादि राशियां चर, स्थिर, द्विस्वभाव इस क्रम से होती हैं। चर राशियों को "गर्भ", स्थिर राशियों को "द्वार" और द्विस्वभाव राशियों को "बाह्य" राशियाँ भी कहते हैं। गभ तथा द्वार राशियों से जतलाई हुई वस्तु दाहिने हाथ में, तथा बाह्य से जतलाई हुई वस्तु बाएं हाथ में कहें। इस प्रकार मुष्टिगत वस्तु के हाथ का निर्णय करना चाहिये।

मुष्टि प्रश्न का निर्णय -

एवं मुष्टिगतस्य वस्तुन इह स्यादयस्वदीर्घादिकं
राशेर्मानवशाद्भवेयुरंथ तद्रूपादयस्त्वंशतः।
राशिस्थ ग्रहसौम्यपापवशतस्तत्सौम्यपापत्वके
भूम्याकाशजलादिषु प्रसरणं तद्धातुकत्वादिकम् ॥

मुष्टिगत वस्तु की लम्बाई अथवा छोटाई विचाराधीन राशि के मान के अनुरूप कहनी चाहिए और मुष्टिगत वस्तु का रूप आदि नवांश राशि से, वस्तु का शुभ अथवा अशुभ होना राशि में स्थित ग्रहों के शुभ अथवा अशुभ होने से ज्ञात करें। इसी विधि से इस बात का भी निश्चय करें कि उस वस्तु का प्रसारण (गमन) भूमि आकाश, जल, वन किस में होता है तथा वह किस धातु की है।

कार्य कब तक सिद्ध होगा -

पूर्वोक्तं ध्रुवमक्षहृत्कुनयनाग्न्यन्ध्यक्ष शेषे क्रमा
न्नाडीवासरघस्त्रमासशरदस्तल्लब्धयुकपञ्चधा ।
स्थाप्योऽसौ ध्रुवकः खतर्कखगुणाश्वार्काभ्रषड्भिर्हत
स्तत्तत्प्रस्तुतकावधिर्भवति तत्सर्वषु कार्येष्वपि ॥

पूर्व में कहे हुए ध्रुवाङ्क को पाँच ५ पर विभक्त करो। यदि शेष १, २, ३, ४, ० हो तो क्रमशः पूछा हुआ कार्य उतनी घड़ियों, तिथियों, दिनों, महीनों अथवा वर्षों के अन्दर होगा। ऊपर पाँच से विभक्त करने पर जो उत्तर आया था, उसको ध्रुवांक में जोडों और फल को क्रमश: ६०,३०,७,१२ तथा ६० पर पृथक् – पृथक विभक्त करो। जो शेष बचे वह क्रमश: घडियां , तिथि , वार, मास , व वर्ष आदि होंगी जो उस कार्य को पूर्ण होने में लगेंगी। यह विधि प्रत्येक प्रकार के प्रश्न में उपयोग में लानी चाहिए।

प्रश्न विचार के आधार - तत्कालीन लग्न मात्र से प्रश्न का विचार करना सर्वांगीण नहीं है। प्रश्न लग्न से प्रश्न फल कहने की पद्धति में भी चूक रहने की सम्भावना बनी रहती है। एतदर्थ कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

1. तात्कालीक लग्न 2. आरूढ़ लग्न 3 प्रश्न का स्थान 4. दैवज्ञ का नासिका स्वर 5. प्रश्नकर्ता द्वारा निज अंग स्पर्श अर्थात् पृच्छक की चेष्टा 6. तत्कालीन शकुन सुन्दर स्थानों पर किया गया प्रश्न सफल एवं अनिष्ट स्थान एवं मुहूर्त खण्ड में बताए अशुभ कालों में किया गया प्रश्न निष्फल होता है । प्रश्न विषय से सम्बन्धित वस्तु का दर्शन होने से अभीष्ट लाभ होता है। शुभ सूचक शब्द शुभ फल कारक होते हैं।

उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति सन्तान विषयक प्रश्न करे और बालक का दर्शन या बालक की ध्वनि अथवा सुन्दर फल दिखे तो अभीष्ट लाभ होता है। इस प्रकार समझना चाहिए। शकुनादि विचार के लिए पाठकों को वृहत्संहिता, प्रश्नमार्ग एवं वृद्धयवन जातक का अध्ययन करना योग्य है।

ग्रहों की अवस्था -

दीप्तो दीनोऽथ मुदित: स्वस्थः सुप्ता निपीडितः ।
मुषित: परिहीनश्च सुवीर्यश्चाधिवीर्यकः ॥
स्वोच्चे दीप्तः समाख्यातो नीचे दीनः प्रकीर्तितः ।
मुदितो मित्रगेहस्थः स्वस्थश्च स्वगृहे स्थितः ।
शत्रुहस्थितः सुप्तो जिताऽन्येन निपीडितः ।
नीचाभिमुखगो हीना मुषितोऽस्तङ्गतो ग्रहः॥
सुवीर्यः कथितः प्राज्ञैः स्वोच्चाभिमुखसंस्थितः ।
अधिवीर्यो निगदितः सुरश्मिः शुभवर्गजः ॥

दीप्त, दीन, मुदित, स्वस्थ, सुप्त, निपीडित, मुषित, परिहीन, सुवीर्य, अधिवीर्य, ये दस प्रकार के ग्रह गृह में होते हैं। उसमें अपने उच्च में रहने से ' दीप्त' नीच में रहने से 'दीन' मित्रगृही मुदित अप स्वस्थ शत्रु राशि में रहने से ‘सुप्त' दूसरे ग्रहसे पराजित होने पर 'जित' नीचाभिमुख जाने से 'हीन' अस्तंगत ग्रह मुषित और उच्चाभिमुख रहने से सुवीर्य और उदित, शुभवर्ग स्थित ग्रह अधिवीर्य कहलाते है।

ग्रहों के अवस्था का फल -

दीप्ते सिद्धिश्च कार्याणां दीने दुःखसमागमः ।
स्वस्थे कीर्तिस्तथा लक्ष्मीरानन्दो मुदिते महान्।

सुप्ते रिपुभयं दुःखं धनहानिर्निपीडिते ।

सुपीते परिहीने च कार्यनाशोऽर्थसङ्गयः ।।

गजाश्वकनकावाप्तिः सुवीर्ये रत्नसम्पदः ।

अधिवीर्यं राज्यलब्धिर्ग्रहैमित्रार्थसङ्गमः ॥

दीप्त ग्रह रहने से कार्यों की सिद्धि होती है। दीन ग्रह रहने से दुःख की प्राप्ति, स्वस्थ ग्रह रहने से कीर्ति यश, मुदितग्रह रहने से लक्ष्मी और आनन्द होता है। सुप्तग्रह में शत्रुभय, दुःख, निपीडितग्रह में धनहानि, मुषितग्रह में तथा परिहीनग्रह में कार्यनाश, धननाश होता है। सुवीर्य ग्रह में हाथी घोड़ा सोना की प्राप्ति और रत्न सम्पत्ति भी होती है। अधिवीर्य ग्रह योगकारक होने से राज्य प्राप्ति, मित्र संगम और धनसंग्रह होता है।

रविग्रहस्वरूप

पूर्वः सत्वं नृपस्तातः क्षत्रं ग्रीष्मोऽरूणश्चलः ।

मधुदृक् पैत्तिको धातुः शूरः सूक्ष्मकचो रविः ॥

रवि पूर्व दिशा के स्वामी, सत्वगुणप्रधान, राजा, पितृग्रह, क्षत्रियजाति, गर्मस्वभाववाला, रक्त वर्ण, चंचल, मधुसमान नेत्र वाला, पित्तदोषप्रधान, पराक्रमी, महीन केश वाला होता है।

चन्द्रस्वरूप-

कफी वर्षामुदुर्माता पयो गौरश्च सात्विकः।

जीवो वश्यश्चरो वृत्तो मारूतांशो विधुः सुदृक् ॥

चन्द्रमा कफात्मक, वर्षा ऋतु के स्वामी, कोमल और मातृ ग्रह, दूध का प्रिय, गौर वर्ण, सत्वगुणी, जीवों के स्वामी, वैश्यजाति का स्वामी, शीघ्रगति ग्रह, गोलाकार, वायु अंशवाला, सुन्दर आँख वाला भी है, चन्द्रमा की कक्षा सबसे नीचे है इससे इनकी गति सबसे अधिक है, अतः यह सदैव शीघ्रगति कहलाता है। शनि की कक्षा सबसे उपर होने से उसकी गति मन्द है इसलिये उसे मन्दगति ग्रह कहते है।

कुज स्वरूप

ग्रीष्मः क्षत्रतमो रक्तो याम्यः सेनाग्रणीश्चरः।

युवा धातुश्च पिंगाक्षः क्रूरः पित्तं शिखी कुजः।।

मंगल ग्रह ग्रीष्मऋतु का स्वामी, क्षत्रिय जाति, लालवर्ण, दक्षिणदिशा का स्वामी, सेनानायक, चंचल स्वभाव, समर्थ, गैरिकादि धातु का स्वामी, पीली आँखें, क्रूरग्रह, पित्त प्रधान तथा शिखावान होता है

बुध स्वरूप -

शरदीशो हरिदीर्घः षण्ढो मूलं कुमारकः।
लिपिज्ञ उत्तरेशश्च शूद्रः सौम्यस्त्रिधातुकः॥

बुध ग्रह, शरदऋतु का स्वामी, श्यामवर्ण, लम्बे कद का, नपुंसक, मूल कन्द का स्वामी, राजकुमार लेख में पटु, उत्तर दिशा का स्वामी, शूद्र जाति का स्वामी, वात-पित-कफ के प्रकोप वाला है।

गुरू स्वरूप -

सत्वं वित्तो हिमः श्लेष्मः दीर्घो मन्त्री द्विजो नरः ।
मध्यैशानी कफी जीवो मधुपिंगलदृक तथा ॥

वृहस्पति सत्वगुणी, धनवान, शीतल स्वभाव वाला, कफात्मक, लम्बे कद का, इन्द्र का मन्त्री, ब्राह्मणवर्ण, पुरूषग्रह, मध्याह्न बली, ईशान कोण का स्वामी, कफी और मधुसमान दृष्टि वाला है।

शुक्र स्वरूप -

शुक्रः शान्तो द्विज नारी वश्यो मन्त्री चरः सितः।
आग्नेयीदिक्कफश्चाम्लः कुटिलासितमूर्धजः॥

शान्तस्वभाव, ब्राह्मण, स्त्रीग्रह, वश्य, राक्षसों के मन्त्री, चंचल, गौरवर्ण, अग्निकोण का स्वामी,कफात्मक, खट्टे रस का प्रिय और काला केश वाला होता है।

शनि स्वरूप -

कृष्णस्तमः कृशो वृद्धः षण्ढो मूलान्त्यजाऽलसः।
शिशिरः पवनः क्रूरः पश्चिमो वातुलः शनिः॥

शनि काला, पापग्रह, दुर्बल, बूढा, नपुंसक, मूलों के स्वामी, म्लेच्छों के स्वामी, आलसी, शिशिर ऋतु का स्वामी, वायुतत्व, क्रूरप्रकृति वाला, पश्चिम दिशा का स्वामी और वातात्मक है।

राहु स्वरूप -

राहुर्धातुः शिखी मूलं शेषमन्यच्च मन्दवत्।
चिन्तनीयं विलग्ने ज्ञात केन्द्रगाद्वा बलाधिकात् ॥

राहु गैरिकादिधातु का स्वामी है, शिखावान, मूलकन्दों के स्वामी है और बांकी रंग रूप सब शनि के समान ही होता है। लग्न से बुध से या केन्द्रगत ग्रह से या सब से विशेष बल वाले ग्रह से वर्ण कहना चाहिये।

इस प्रकार प्रश्नविधि को समझकर वर्षकुण्डली के आधार पर ग्रहों के स्वरूप एवं उनकी अवस्था आदि के आधार पर फलोदशादि कर्म करने चाहिये।

रक्तवर्णो वृहद्गात्रचतुष्पाद् रात्रिविक्रमी ॥

पूर्ववासी नृपज्ञातिः शैलचारी रजोगुणी ।

पृष्ठोदयी पावकी च मेषराशिः कुजाधिपः ॥

मेष राशि का वर्ण लाल, शरीर लम्बा, पाद चार, रात्रि में पराक्रम, पूर्व दिशा में निवास, क्षत्रिय जाति, पर्वतों में विचरण, रजो गुण, पृष्ठ से उदय, अग्नि तत्व, तथा स्वामी मंगल होते हैं॥

श्वेतः शुक्राधिपो दीर्घः चतुष्पाच्छर्वरीवली।

याम्येट् ग्राभ्यो वणिग् भूमी रजः पृष्ठोदयो वृषः॥

वृष राशि का वर्ण सफेद, लम्बा शरीर, चार पैर, रात्रि में बल, याम्य दिशा में निवास, गावों में विचरण, वैश्यजाति, भूमितत्व, रजोगुण, पृष्ठ से उदय तथा स्वामी शुक्र होते हैं॥

शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम्।

प्रत्यङ्गरुद् द्विपाद्रात्रिबली ग्रामवजोऽनिली॥

समगात्रो हरिद्वर्णो मिथुनाख्यो बुधाधिपः ।

मिथुन का स्वरूप गदा-वीणा सहित, पुरुष-स्त्री की जोड़ी, शीर्ष से उदय, पश्चिम दिशा में निवास, वायुतत्त्व, दो पैर, रात्रि में बल, ग्रामों में विचरण, वात प्रकृति, समान शरीर, हरित वर्ण, तथा स्वामी बुध होते हैं ॥

पाटलो वनचारी च ब्राह्मणो निशि वीर्यवान्॥

बहुपादी स्थूलतनुस्तथा सत्त्वगुणी जली।

पृष्ठोदयी कर्कराशिर्मृगाङ्काधिपतिः स्मृतः॥

कर्क राशि का पाटल वर्ण, वन में विचरण, ब्राह्मण जाति, रात्रि में बल, अनेक पैर, मोटा शरीर, सत्व गुण, जलतत्व, पृष्ठ से उदय, तथा स्वामी चन्द्रमा होते हैं ॥

सिंहः सूर्याधिपः सच्ची चतुष्पात् क्षत्रियो वनी।

शीर्षोदयी वृहद्गात्रः पाण्डुः पूर्वेड् द्यवीर्यवान् ॥

सिंह राशि का अधिप सूर्य, सत्वगुण, चार पैर, क्षत्रियवर्ण, जंगल में विचरण, शीर्ष से उदय, बड़ा शरीर, पाण्डुवर्ण, पूर्वदिशा में निवास, तथा दिन में बल होता है ॥

पार्वतीयाथ कन्याख्या राशिर्दिनबलान्विता।

शीर्षोदया च मध्याङ्गा द्विपाद्याम्यचरा च सा ॥

सा सस्यदहना वैश्या चित्रवर्णा प्रभञ्जिनी।

कुमारी तमसा युक्ता बालभावा बुधाधिपा ॥

कन्या राशि का पर्वतीय प्रदेशों में विचरण, दिन में बल, शीर्ष से उदय, मध्यम शरीर, दो पैर, दक्षिण दिशा में निवास, सस्य सहित अग्नि का हाथ में धारण, वैश्यजाति, चित्रवर्ण, वायुतत्व, कुमार अवस्था, तमोगुण तथा स्वामी बुध होते हैं॥

शीर्षोदयी द्यवीर्याढ्यो घटः कृष्णो रजोगुणी।

पश्चिमो भूचरो घाती शूद्रो मध्यतनुद्विपात् ॥

तुला राशि का शीर्ष से उदय, दिन में प्रबलता, कृष्णवर्ण, रजोगुण, पश्चिम दिशा में निवास, भूमि में विचरण, हिंसक प्रकृति, शूद्रजाति, मध्यमशरीर, दो पैर तथा स्वामी शुक्र होते हैं॥

स्वल्पाङ्गोबहुपाद्ब्राह्मणोविली।

सौम्यस्थो दिनवीर्याढ्यः पिशङ्गो जलभूवहः ॥

रोम स्वाढ्योऽतितीक्ष्णाग्रो वृश्चिकश्च कुजाधिपः।

वृश्चिक राशि का शरीर छोटा, बहुत से पैर, ब्राह्मणजाति, बिल में संस्थान, उत्तर दिशा में निवास, दिन में प्राबल्य, पिशङ्गवर्ण, जलतत्त्व, भूमि में विचरण, रोम- युक्त शरीर, अत्यधिक तेज डंक, तथा स्वामी भौम होते हैं।।

पृष्ठोदयी त्वथ धनुर्गुरुस्वामी च सात्विकः॥

पिङ्गलो निशि वीर्याढ्यः पावकः क्षत्रियो द्विपात् ।

आदावन्ते चतुष्पादः समगात्रो धनुर्धनः॥

पूर्वस्थो वसुधाचारी बहुतेजः समन्वितः।

धनुराशि का पृष्ठ से उदय, स्वामी गुरु, सत्वगुण, पिङ्गलवर्ण, रात्रि में प्राबल्य, अग्नितत्व, क्षत्रियवर्ण, पूर्वार्ध में दो पैर, और उत्तरार्ध में चार पैर, समान शरीर, धनुर्धारण, पूर्व दिशा में निवास, पृथ्वी पर विचरण, तथा अमित तेज होता है॥

मन्देशस्तामसो भूमियाम्येट् च निशि वीर्यवान् ॥

पृष्ठोदयी वृहद्गात्रः कर्बुरो वनभूचरः।

आदौ चतुष्पादन्ते तु विपदो जलगो मतः ॥

मकर राशि का स्वामी शनि, तामस गुण, भूमितत्व, दक्षिण दिशा में निवास रात्रि में प्राबल्य, पृष्ठ से उदय, बड़ा शरीर, चित्रवर्ण, वन तथा भूमि में चलन, पूवार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में पदराहित्य, और जल में संचरण होता है ॥

कुम्भः कुम्भी नरो बभ्रुवर्णो मध्यतनुर्द्विपात् ।

घुवीर्यो जलमध्यस्थो वातशीर्षोदयी तमः॥

शूद्रः पश्चिमदेशस्य स्वामी दैवाकरिः स्मृतः।

कुम्भ राशि का घड़ा लिए हुए पुरुष जैसा स्वरूप, भूरा वर्ण, मध्यम शरीर, दो पैर, दिन में प्राबल्य, पानी के मध्य में संचार, वायुतत्व, शीर्ष से उदय, तामस गुण, शूद्रजाति, पश्चिम दिशा में निवास, तथा स्वामी शनि है।

मीनौ पुच्छास्यसंलग्नौ मीनराशिर्दिवाचली॥

जली सच्वगुणाढ्यश्च स्वस्थो जलचरो द्विजः।

अपदो मध्यदेही च सौम्यस्थो भयोदयी॥

सुराचार्याधिपश्चेत्थं राशीनामुदिता गुणाः।

त्रिंशद्भागात्मकानां च स्थूलसूक्ष्मफलाय च॥

मीन राशि का मुख- पुच्छ मिलित-दो मछलियों का सा स्वरूप, दिन में प्राबल्य, जलतत्व, सत्वगुण, स्वस्थ चेहरा, जल में संचरण, विप्रजाति, पाद-राहित्य, मध्यम शरीर, उत्तर दिशा में निवास, मुख- पुच्छ दोनों से उदय, तथा स्वामी गुरु होता है।

बोध प्रश्न -

1. प्रश्नविधि में प्रश्न पूछते समय निम्न में से कौन-सा वर्जित माना गया है?
   क. पवित्र स्थान
   ख. स्नान के बाद प्रश्न
   ग. श्रद्धापूर्वक प्रश्न
   घ. अशान्त मन से प्रश्न

2. 'प्रष्टा' कहते है -
क. प्रश्न को ख. प्रश्नकर्ता को ग. प्रश्नों के समूह को घ. प्रश्नोत्तर करने वालो को
3. पद्मभूः से तात्पर्य है -
क. विष्णु ख. ब्रह्मा ग. रूद्र घ. कमल
4. दशभेदं ग्रहाणां च ....
भावजं तथा।
विमृश्यैकञ्च कथयेन्नानेकं प्राह पद्मभूः ॥
क. ज्योतिषम् ख. प्रश्नम् ग. गणितम् घ. नक्षत्रम्
5. आरूढ़ से तात्पर्य है -
क. प्रश्नकर्ता के बैठने से
ख. प्रश्नकर्ता द्वारा अधिष्ठित दिशा से
ग. प्रश्नकर्ता द्वारा प्रश्न से घ. कोई नहीं
6. पवर्ग का स्वामी है -
क. मंगल ख. शनि ग. चन्द्रमा घ. बुध
7. तवर्ग का स्वामी है -
क. गुरू ख. शनि ग. चन्द्रमा घ. मंगल

8 . ग्रह यदि अपने उच्च स्थान में स्थित हो तो उसे क्या कहा जाता है?

क. दीन ख. मुदित ग. दीप्त घ. सुप्त

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट रूप से समझ में आता है कि **प्रश्न शास्त्र** ज्योतिष की एक अत्यन्त सूक्ष्म, व्यावहारिक तथा प्रमाणिक शाखा है, जिसका उद्देश्य तात्कालिक जीवन समस्याओं का यथार्थ समाधान प्रस्तुत करना है। प्रस्तुत इकाई में प्रश्नचिन्तामणि, उत्तरकालामृत, आर्या सप्तति आदि प्राचीन ग्रन्थों के शास्त्रीय सन्दर्भो के माध्यम से प्रश्न विधि, प्रश्न आचार, प्रश्नकर्ता एवं दैवज्ञ की भूमिका, तथा प्रश्न फल कथन की मर्यादाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने से यह बोध होता है कि प्रश्न पूछना केवल जिज्ञासा का विषय न होकर एक विधिवत् संस्कारयुक्त प्रक्रिया है, जिसमें प्रश्नकर्ता का मन, स्थान, काल, भाव, आचरण और श्रद्धा सभी का विशेष महत्व है। प्रश्नचिन्तामणि में वर्णित नियमों के अनुसार एक समय में एक ही प्रश्न पूछना, पूजा-भेंट सहित शुद्ध मन से प्रश्न करना तथा दैवज्ञ को उचित दक्षिणा देना प्रश्न फल की सिद्धि के लिए अनिवार्य माना गया है। इकाई में ग्रहों की दशभेद अवस्थाओं—दीप्त, दीन, मुदित, स्वस्थ, सुप्त, निपीडित, मुषित, परिहीन, सुवीर्य और अधिवीर्य—का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिनके आधार पर प्रश्न फल की सत्यता और तीव्रता का निर्धारण किया जाता है। साथ ही ग्रहों के स्वरूप, गुण, दिशा, जाति, ऋतु और स्वभाव का ज्ञान प्रश्न फल को और अधिक सूक्ष्म बनाता है। इस इकाई में प्रश्न लग्न निर्धारण की विभिन्न विधियाँ—उदय लग्न, आरूढ़ लग्न, अक्षर आधारित लग्न, उत्तरकालामृत की संख्या विधि तथा ध्रुवांक पद्धति—का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि केवल तात्कालिक लग्न से प्रश्न विचार पर्याप्त नहीं है। शकुन, प्रश्नकर्ता की चेष्टा, स्थान, शब्द, वस्तु दर्शन तथा ग्रह बल को भी फल निर्णय में सम्मिलित करना आवश्यक है। खोई हुई वस्तु की दिशा, मुष्टि प्रश्न, कार्य सिद्धि का समय तथा प्रश्न के विषय का निर्धारण लग्न एवं ग्रह स्थिति के आधार पर करने की विधियाँ इस इकाई को पूर्णतः व्यावहारिक बनाती हैं। संक्षेप में, इस इकाई का अध्ययन यह सिद्ध करता है कि प्रश्न शास्त्र केवल फल कथन का साधन नहीं, बल्कि शास्त्रीय मर्यादा, अनुभूति, विवेक और ग्रहबल के समन्वय से युक्त एक सशक्त ज्ञान परम्परा है, जिसके माध्यम से प्रश्नकर्ता को यथार्थ, सार्थक और विश्वासयोग्य मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ख
3. ख
4. ग
5. ख
6. ख
7. क
8. ग

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ताजिक नीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

2. ज्योतिष सर्वस्व - सुरेश चन्द्र मिश्र

3. उत्तर कालामृत –

4. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र- चौखम्बा प्रकाशन

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रश्न शास्त्र में फल प्राप्ति के समय निर्धारण की प्रक्रिया तथा उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. प्रश्न विधि क्या है लिखिये।
3. ग्रहों के स्वरूप का वर्णन कीजिये।

इकाई - 3 प्रश्न लग्न सिद्धान्त

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 प्रश्न लग्न सिद्धान्त

बोध प्रश्न

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N) 223 के द्वितीय खण्ड के तृतीय इकाई से सम्बन्धित है । इस इकाई के अन्तर्गत ताजिक शास्त्र के अनुसार 'प्रश्नलग्न सिद्धान्त' का उल्लेख किया जा रहा है। आप प्रश्न लग्न सिद्धान्त का अध्ययन करेगें । ताजिक शास्त्र में प्रश्न करने की विधि क्या है ? उसका प्रयोजन क्या है ? उसका महत्व क्या है ? इन सभी विषयों से सम्बन्धित जानकारी आपको प्रस्तुत इकाई में होगी । इस इकाई में आप मुख्य रूप से प्रश्न लग्न सिद्धान्त सम्बन्धित विषयों का सम्यक् अध्ययन प्राप्त करेगें ।प्रश्नशास्त्र ज्योतिष की वह विशिष्ट शाखा है, जिसमें प्रश्नकर्ता के द्वारा पूछे गए प्रश्न के क्षण को ही सम्पूर्ण फलादेश का आधार माना जाता है। इस इकाई में प्रश्न लग्न की महत्ता, उसकी दैविक भूमिका तथा उसके माध्यम से प्रश्न के सत्य, उद्देश्य और फल को समझने की परंपरा का विवेचन किया गया है। प्रश्न पूछे जाने के क्षण उदित लग्न को प्रश्नकर्ता के मन की वास्तविक अवस्था का प्रतीक माना गया है, क्योंकि वही क्षण उसकी मानसिक व्याकुलता, आशा या भय को ग्रहों की भाषा में प्रकट करता है। इस इकाई में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रश्नशास्त्र सामान्य फलित ज्योतिष से भिन्न न होकर उसका उन्नत और संक्षिप्त रूप है, जिसमें लग्न, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों के बलाबल के आधार पर विविध प्रश्नों- जैसे कार्यसिद्धि, लाभ-हानि, रोग, यात्रा, शत्रु, सन्तान एवं जीवन–मरण- का निर्णय किया जाता है। शास्त्रीय ग्रन्थों, विशेषतः ताजिक परंपरा एवं षट्पंचाशिका के सूत्रों के आधार पर प्रश्न लग्न के विविध प्रयोगों को समझाना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगें कि

- ❖ प्रश्न लग्न सिद्धान्त क्या है।
- ❖ प्रश्न लग्न सिद्धान्त का प्रयोजन क्या है।
- ❖ प्रश्न लग्न सिद्धान्त के फल क्या है ।
- ❖ प्रश्न लग्न सिद्धान्त के महत्व क्या है ।

3.3 प्रश्न लग्न सिद्धान्त

प्रश्नशास्त्र की परंपरा में प्रश्न लग्न को पूर्ण प्रणाली का प्रथम और सबसे सजीव अंग माना गया है। प्रश्न जिस क्षण पूछा जाता है, उसी क्षण जो लग्न उदित होता है, वह केवल राशि का उदय नहीं होता, बल्कि प्रश्नकर्ता के मन की गहराइयों में उठे कंपन का प्रत्यक्ष दैविक रूप होता है। यह लग्न प्रश्न के मूल स्वभाव, उसकी दिशा, उसके उद्देश्य, उसके सत्य, और उसके अंतिम फल तक

सभी को प्रकट कर देता है। जब प्रश्नकर्ता किसी समस्या, भय, अपेक्षा या आकांक्षा के कारण भीतर से व्यग्र होता है, तभी दैवचक्र उसकी मानसिक तरंगों को ग्रहण करता है और उसी क्षण जो लग्न उदित होता है, वही मन की सच्ची अवस्था को विश्वमान्य संकेतों में बदल देता है।

आरम्भ में यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि प्रश्न सामान्य फलित ज्योतिष से भिन्न नहीं है। वास्तव में, यह उसका उन्नत रूप है जहाँ ज्योतिष के समस्त सिद्धांत और विशिष्टता संपूर्णता में संगठित होती है। प्रश्न के विश्लेषण में सभी अवधारणाओं और प्रणालियों का उपयोग किया जाता है

और तभी एक व्यापक, विस्तृत एवं नवीन विचार धारा ही सफल भविष्यवाणियों की ओर ले जाती है। इस तथ्य के बावजूद कि प्रश्न में ज्योतिष के सभी सिद्धांत प्रयोग किए जाते हैं; तथापि प्रश्न कुंडलियों के विश्लेषण के कुछ अतिरिक्त विशिष्ट सिद्धांत भी हैं। उनमें से कुछ आधारभूत नियम निम्नलिखित हैं जबकि विभिन्न प्रकार के प्रश्नों में प्रयुक्त विशिष्ट नियमों के संबंध में संबंधित अध्यायों में विस्तार से विवेचन किया गया है।

बहुविध प्रश्न

एक प्रश्नकर्त्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रार्थनाओं तथा दानादि की एक नियत प्रक्रिया का अनुसरण करके एक सुयोग्य ज्योतिषी से गंभीरता पूर्वक एक प्रश्न पूछे। यद्यपि वर्तमान समय में, कोई प्रश्नकर्त्ता स्वयं को एक प्रश्न तक सीमित नहीं रखता। वह एक ही परामर्श में अपने जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं को जानने की इच्छा रखता है, चाहे यह प्रश्न की प्रक्रिया के सिद्धांतों के खिलाफ ही क्यों न हो। शास्त्रीय रूप से, यह सुझाव दिया जाता है कि निम्नलिखित विधि से एक से अधिक

प्रश्नों का उत्तर भी दिया जा सकता हैं।

पहला प्रश्न - लग्न से देखें

दूसरा प्रश्न - चंद्रमा से देखें

तीसरा प्रश्न - सूर्य से देखें

चौथा प्रश्न- बृहस्पति से देखें

पांचवाँ प्रश्न- प्रश्न कुंडली में शुक्र अथवा बुध में से जो बलवान हो, उससे देखें-

छठा प्रश्न- प्रश्न कुंडली में शुक्र अथवा बुध में से जो बलहीन हो, उससे देखें

ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न लग्न का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है । गोचर के अनुसार ग्रहों की स्थिति जानकर प्रश्न कुण्डली के आधार पर जातक शास्त्र के अन्तर्गत फलादेश करने की परम्परा ज्योतिषीयों को सुविदित है। प्रश्न कुण्डली में प्रश्न लग्न होता है। ताजिकनीलकण्ठी में भी

षटपंचाशिका के आधार पर प्रश्न लग्न को समझाया गया है। षट्पंचाशिका एक प्रश्न ग्रन्थ है, जिसे ५६ श्लोक है तथा इसके रचयिता आचार्य पृथुयशस है। प्रश्न लग्न का विचार करते हुये उनका कथन है -

यो यो भाव: स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्यतस्यास्ति वृद्धि ।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्देष्टव्या पृच्छतो जन्मतो वा ।

प्रश्न लग्न से या जन्म लग्न से जो जो भाव अपने स्वामी या शुभ ग्रहों से युत दृष्ट हों, उन – उन भावों की वृद्धि होती है और जिन-जिन भावों पर पाग्रह हों या उनकी दृष्टि पड़ती हो, उन-उन भावों की हानि होती है। इस प्रकार सभी भावों का विचार करना चाहिये ।

सौम्ये विलग्ने यदि वा स्ववर्गे शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् ।
अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥

लग्न में शुभ ग्रह हो, या लग्न में शुभग्रह का वर्ग हो, या लग्न में शीर्षोदय राशि (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक एवं कुम्भ) हो तो कार्य सिद्धि होती है। इससे विपरीत रहने से कार्यहानि होती है यदि पाप शुभ दोनों से लग्न युक्त दृष्ट हो तो क्लेश से कार्यसिद्धि होती है।

प्रश्न लग्न से कार्यसिद्धि-

लग्नपतिर्यदि लग्नं कार्याधिपतिश्च वीक्षते कार्यम् ।
लग्नाधीशः कार्यं कार्येशः पश्यति विलग्नम् ॥
लग्नेशः कार्येशं विलोकयेल्लग्नपं तु कार्येशः ।
शीतगुदृष्टौ सत्यां परिपूर्णा कार्यसंसिद्धिः ॥

यदि लग्नेश लग्न को देखता हो, कार्येश कार्यभाव को देखता हो या लग्नेश कार्य को, कार्येश लग्न को देखता हो अथवा लग्नेश कार्येश को, कार्येश लग्न को देखता हो वहाँ उनको चन्द्रमा देखे तो कार्यसिद्धि होती है।

कथयन्ति पादयोगं पश्यति सौम्यो न लग्नपो लग्नम् ।
लग्नाधिपं च पश्यति शुभग्रहश्चार्धयोगोऽत्र ॥
एक: शुभ ग्रहो यदि पश्यति लग्नाधिपं विलग्नं वा ।
पादोनयोगमाहुस्तदा बुधाः कार्यसंसिद्धो ॥
लग्नपतौ दशमे सति शुभग्रहौ द्वौ त्रयोऽथवा लग्नम् ।
पश्यन्ति यदि तदानीमाहुर्योगं त्रिभागोनम् ॥
लग्नेशदर्शने सति पश्यन्तः पूर्णयोगकराः ।

यदि शुभग्रह या लग्नेश लग्न को नहीं देखता हो तो कार्यसिद्धि का एक चतुर्थांश योग होता है। यदि शुभग्रह लग्नेश को देखे तो, कार्यसिद्धि का दो चतुर्थांश योग होता है । यदि एक शुभग्रह लग्नेश को वा लग्न को देखता हो तो तीन चरण योग होता है। यदि लग्नेश दो शुभग्रहों को देखता हो या शुभग्रह लग्न को देखता हो तो तृतीयांशोन योग होता है। यदि लग्न को लग्नेश देखता हो या तीन शुभग्रह लग्न को वा लग्नेश को देखता हो तो, कार्यसिद्धियोग पूर्ण होता है।

क्रूरावेक्षणवर्ज्यश्चन्द्रः सौम्याश्च खेचरा लग्नम्।

चन्द्रमा पापग्रह की दृष्टि से बचा हो, शुभग्रह लग्न को देखता हो तो कार्यसिद्धि योग पूर्ण होता है।

क्रूराक्रान्तः क्रूरयुतः क्रूरदृष्टश्च यो ग्रहः ।
विरश्मितां प्रपन्नश्च सोऽनिष्टफलदायकः ॥

जो कोई ग्रह पाप से पराजित, पापग्रह से युत, या दृष्ट हो, अस्तंगत हो वह ग्रह अनिष्टफल देते हैं।

लग्न से कार्यसिद्धिप्रश्न विचार-

अमुकं गदेति कार्यं कदा भविष्यत्यमुत्र पृच्छायाम् ।
लग्नाधिपतिः कार्यं लग्नं कार्याधिपः पश्येत् ॥
लग्नस्थः कार्येशः पश्यति चेल्लग्नपं तदैव भवेत् ।
तत्कार्यं यद्यन्यस्थितं तदा सत्वरं न स्यात् ॥
पश्यति तदा च लग्नं द्रक्ष्यति चन्द्रं विलग्नपं च यदा ।
लग्ने कार्ये च यदा द्वयोश्च योगे तदा सिद्धिः ॥

यदि कोई 'पूछता हो कि हमारा अमुक कार्य कब सिद्ध होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में यह देखना चाहिये कि यदि लग्नेश कार्यभाव को देखें, कार्येश लग्न को देखे तो कार्यसिद्धि होती है अथवा कार्येश लग्न में होकर लग्नेश को देखता हो तो उसी क्षण में कार्यसिद्धि होती है या कार्येश लग्न से भिन्न स्थान में रहकर लग्नेश को देखता हो तो विलम्ब से कार्यसिद्धि होती है । यदि कार्येश लग्न को, चन्द्रमा को और लग्नेश को भी देखता हो तो कार्यसिद्धि होती है। यदि लग्न में या कार्यभाव में लग्नेश का संयोग होता हो अर्थात् लग्न ही में लग्नेश कार्येश दोनों हो, या कार्यभाव ही में लग्नेश कार्येश दोनों हों, तो कार्यसिद्धि होती है।

क्रूरावेक्षणवर्ज्यश्चन्द्रः सौम्याश्च खेचरा लग्नम्।

चन्द्रमा पापग्रह की दृष्टि से बचा हो, शुभग्रह लग्न को देखता हो तो कार्यसिद्धि योग पूर्ण होता है।

क्रूराक्रान्तः क्रूरयुतः क्रूरदृष्टश्च यो ग्रहः ।
विरश्मितां प्रपन्नश्च सोऽनिष्टफलदायकः ॥

जो कोई ग्रह पाप से पराजित, पापग्रह से युत, या दृष्ट हो, अस्तंगत हो वह ग्रह अनिष्टफल देते हैं।

लग्न से कार्यसिद्धिप्रश्न विचार-

अमुकं गदेति कार्यं कदा भविष्यत्यमुत्र पृच्छायाम् ।
लग्नाधिपतिः कार्यं लग्नं कार्याधिपः पश्येत् ॥
लग्नस्थः कार्येशः पश्यति चेल्लग्नपं तदैव भवेत् ।
तत्कार्यं यद्यन्यस्थितं तदा सत्वरं न स्यात् ॥
पश्यति तदा च लग्नं द्रक्ष्यति चन्द्रं विलग्नपं च यदा ।
लग्ने कार्ये च यदा द्वयोश्च योगे तदा सिद्धिः ॥

यदि कोई 'पूछता हो कि हमारा अमुक कार्य कब सिद्ध होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में यह देखना चाहिये कि यदि लग्नेश कार्यभाव को देखें, कार्येश लग्न को देखे तो कार्यसिद्धि होती है अथवा कार्येश लग्न में होकर लग्नेश को देखता हो तो उसी क्षण में कार्यसिद्धि होती है या कार्येश लग्न से भिन्न स्थान में रहकर लग्नेश को देखता हो तो विलम्ब से कार्यसिद्धि होती है । यदि कार्येश लग्न को, चन्द्रमा को और लग्नेश को भी देखता हो तो कार्यसिद्धि होती है। यदि लग्न में या कार्यभाव में लग्नेश का संयोग होता हो अर्थात् लग्न ही में लग्नेश कार्येश दोनों हो, या कार्यभाव ही में लग्नेश कार्येश दोनों हों, तो कार्यसिद्धि होती है।

वृषसिंहवृश्चिकघटैर्विद्धि स्थानं गमागमौ न स्तः ।
न मृतं न चापि नष्टं न रोगशान्तिर्न चाभिभवः॥

यदि प्रश्न लग्न में वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुंभ (स्थिर) राशियाँ हों तब स्थान लाभ के प्रश्न में स्थान लाभ होता है। प्रवासी प्रश्न में गमनागमन कुछ भी नहीं होता। जीवन मरण के प्रश्न में मरण नहीं होता अर्थात् यथास्थितिरहती है। रोगी मरता नहीं है। जीवित रहता है। नष्ट वस्तु के प्रश्न में वस्तुनष्ट नहीं होती अर्थात् उसकी प्राप्ति होती है। ज्वरादि रोग से पीड़ित व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न होने पर रोग शान्ति नहीं होती (रोग की स्थिति यथावत् रहतीहै)। यदि युद्ध, विवाद, मुकदमा तथा चुनाव से संबंधित प्रश्न हो तब पराजय नहीं होती । ऐसा जानना चाहिए।

तद्विपरीतं च चरैर्द्विशरीरैरमिश्रितं भवति।
लग्नेन्द्वोर्वक्तव्यं शुभद्वष्ट्या शोभनमतोऽन्यात् ।।

यदि प्रश्नकुण्डली की लग्न में चर राशियों (मेष, कर्क, तुला मकर) में से कोई भी हो तब उपर्युक्त फल से उल्टा फल होता है अर्थात् अस्थान लाभ नहीं होता, प्रवासी या यात्रा प्रश्न में यात्रा

होती है प्रवासी चल देता है। जीवन मृत्युके प्रश्न में मृत्यु होती है। नष्ट वस्तु के प्रश्न में वस्तु नष्ट हो जाती है उसकी प्राप्ति नहीं होती रोग प्रश्न में रोग शान्त हो जाता है (चलाजाता है) तथा हार जीत के प्रश्न में पराजय (अभिभव) हो जाता है।

यदि प्रश्न लग्न द्विस्वभाव राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मीन में से कोईभी) हो तब मिश्रित फल होता है। इन राशियों के प्रारंभिक पन्द्रह अंशों तक स्थिर राशि का तथा उत्तरार्ध में सोलह से तीस अंशों में लग्न स्पष्ट होने पर चर राशि जैसा फल प्राप्त होता है। ये दोनों प्रकार के फल विलम्ब से तथा कष्टपूर्वक प्राप्त होते हैं

सुतशत्रुगतैः पापैः शत्रुर्मार्गान्निवर्तते।
चतुर्थगैरपि प्राप्तः शत्रुर्भग्नो निवर्त्तते।।

यदि प्रश्न लग्न में पांचवें एवं छठवें भावों में पाप ग्रह स्थित हों तो शत्रु आता तो है परन्तु रास्ते से ही वापस लौट जाता है। परन्तु यदि शत्रुआगमन के प्रश्न में प्रश्नलग्न में पापग्रहों की स्थिति चतुर्थ भाव में हो तो शत्रुचढ़ाई करता है परन्तु पराजित होकर उसे लौटना पड़ता है।

झषालिकुम्भकर्कटा रसातले यदा स्थिताः।
रिपोः पराजयस्तदा चतुष्पदैः पलायनम्।।

यदि प्रश्न लग्न से चतुर्थ भाव में झष (मीन) अलि (वृश्चिक)कुंभ तथा कर्क राशियां हों तब शत्रु की हार हो जाती है । यदि चतुर्थ भाव में चतुष्पद राशियाँ (मेष, सिंह, वृष तथा धनु में से कोई भी) हों तब शत्रु भाग जाता है।

यायी प्रश्न

चदोदये शुभः स्थितः शुभं करोति यायिनाम् ।
अशोभनैरशोभनं स्थिरोदयेऽपि वा शुभम् ।।

यदि प्रश्न लग्न में चर राशि (मेष, कर्क, तुला, मकर) हो तथा उस पर शुभ ग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) में से एक या अधिक की दृष्टि हो तो यायी (आक्रमणकर्त्ता) के लिए शुभ फलदायक होता है। यदि उसी चर लग्न में अशुभ ग्रहों (मगल, शनि, सूर्य) में से एक या अधिक बैठे हों तो यायी(आक्रान्ता) के लिए अशुभफलदायक सिद्ध होते हैं। परन्तु यदि प्रश्न लग्न स्थिर राशि हो तो परिस्थिति के अनुसार शुभ या अशुभ दोनों प्रकार का फलसंभव है, अर्थात् यदि स्थिर लग्न में स्थित पापग्रह स्वराशि, मूलत्रिकोण या उच्च का होगा तब यायी के लिए शुभफलकारक अन्यथा अशुभफलकारक होता है। जब स्थिर राशि लग्न में शुभग्रह स्थित हों और वे स्वक्षेत्री, मूल त्रिकोण

याउच्चराशिगत होते हैं तो भी यायी का अनिष्ट होगा अन्यथा स्थिति में कम अनिष्टकर होंगे ऐसा समझना चाहिए।

इस श्लोक में यायी शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ, आक्रान्ता, अग्रसर, अग्रेसर, चढ़ाई करने वाला, आक्रमणकारी याआक्रान्ता होता है। कानून की भाषा में इसे वादी या प्रार्थी कहते हैं। इसकेलिए अरबी, उर्दू में मुद्दई शब्द का प्रचलन है। तथा अंग्रेजी में अप्लीकेण्ट(Applicant) या प्लैण्टिफ़ (Plaintiff) कहा जाता है।

शत्रु आगमन प्रश्न –

स्थिरे शशी चरोदये न चाऽऽगमो रिपोर्यदा।
तदाऽऽगमं रिपोर्वदेद्विपर्यये विपर्ययम्॥

जब प्रश्न लग्न में चन्द्रमा स्थिर राशि में तथा लग्न चरराशि में हो तब शत्रु के आगमन की सम्भवना नहीं रहने पर भी शत्रु आवेगा ऐसा कहना। इसके विपरीत विपर्यय होने पर उल्टा फल होता है। अर्थात् चर राशि में चन्द्रमा और स्थिरराशि में लग्न हो तब शत्रु का आगमन नहीं होता है।

लग्न से कार्यहानि योग विचार-

यदि लग्नपं न पश्यति कार्याधीशो विलग्नमथ तस्य।
कार्यस्य हानिरूक्ता लग्नमृते किमपि नो वाच्यम्॥

यदि कार्येश लग्नेश को वा लग्न को नहीं देखता हो तो कार्य की सिद्धि नहीं होती है। यहाँ कार्यसिद्धिप्रश्न में लग्न के बिना कुछ भी नहीं कहना चाहिये।

नष्ट वस्तु ज्ञान

स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा।
स्थितं तत्रैव तद्द्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम्॥

इस श्लोक में वे तीन स्थितियाँ बताई गई हैं। जिनमें वस्तु की चोरी या नाश नहीं होता और वस्तु या तो उसी स्थान पर गुम रहती है अथवा स्वयं या घर के सदस्य आदि द्वारा ही चुराई जाती है। वे स्थितियाँ निम्नानुसार हैं-

(१) स्थिरोदये – जब प्रश्नलग्न स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक या कुम्भ
में से कोई एक) हो।

(२) स्थिरांशे-किसी भी लग्न में स्थिर नवांश (स्थिर राशियों का नवांश) हो।

(३) वर्गोत्तमे—जो राशि हो और वही नवांश हो तब उसे वर्गोत्तम नवांश कहते हैं जैसे मेष में मेष का नवांश, वृष राशि में वृष का नवांश तथा मिथुन में मिथुन का नवांश हो तब वह वर्गोत्तम कहलाता है। यह वर्गोत्तम नवांश चर स्थिर या द्विस्वभाव किसी भी राशि का हो सकता है। उपर्युक्त स्थितियों के विपरीत होने पर –

चरलग्न एवं चर नवांश हो तथा वह वर्गोत्तम भी न हो तब नष्ट वस्तु घटना स्थल से दूर चली जाती है ऐसा कहना चाहिए उसे चुराने वाला भी अपरिचित व्यक्ति होता है।

स्थानज्ञान

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु विलग्नतः ।
द्वारदेशे तथा मध्ये गृहान्ते च वदेद्धनम् ॥

(१) यदि पृच्छालग्न में आदि वा द्रेष्काण (प्रथम द्रेष्काण १०° तक) हो तो नष्ट वस्तु घर के द्वारदेश (देहली के समीप) बताना चाहिए।

(२) यदि प्रश्नलग्न का स्पष्ट ११° से २०° तक (मध्य द्रेष्काण) हो तब घर के मध्यभाग में खोई हुई वस्तु है।

(३) जब प्रश्न लग्न अंतिम द्रेष्काण (तृतीय द्रेष्काण = २१° से ३०° तक) हो तब नष्टवस्तु घर के पिछले (अंतिम) भाग में होती है।

उदाहरण– (१)—मान लीजिए प्रश्नसमय पर वृष लग्न के १५° व्यतीत हैं तब उस समय स्थिर वृष लग्न का वृष नवांश वर्गोत्तम है अत: ऊपर श्लोक १ में लिखी तीसरी स्थिति एक ही साथ बन रही है जिसके कारण स्पष्ट रूप से चोरी नहीं हुई, वस्तु घर में ही या घर के सदस्य की जानकारी में है। इतना निश्चय होने पर विचार किया कि घर के किस भाग में नष्ट वस्तु हो सकती। तब द्रेष्काण से विचार किया लग्न स्पष्ट के पन्द्रह अंश होने से मध्य का (द्वितीय) द्रेष्काण है। अतः घर के मध्य भाग में ही वस्तु छिपी हुई है ऐसा समझना चाहिए।

उदाहरण–(२) मान लीजिए मेष लग्न का ३° है तब मेष का ही नवांश वर्गोत्तम हुआ जो वस्तु का घर में होना सिद्ध करता है। प्रथम द्रेष्काण होने से वस्तु घर के आदि भाग द्वारदेश (देहली के पास) होगी।

लाभालाभ ज्ञान

पूर्णः शशी लग्नगतः शुभो वा शीर्षोदये सौम्यनिरीक्षितश्च ।
नष्टस्य लाभं कुरुते तदाऽऽशु लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥

इस श्लोक में नष्टवस्तु के लिए चार योग सूचित किए गए हैं—

(१) यदि प्रश्न लग्न में पूर्ण चन्द्रमा स्थित हो तब नष्ट वस्तु या चोरी गई वस्तु अवश्य मिल जाती है।

(२) लग्न में शुभग्रह की स्थिति होने पर भी नष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है

(३) शीर्षोदय लग्नों (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक तथा कुम्भ) पर जब शुभ दृष्टि होती है तब अवश्य ही नष्ट वस्तु मिल जाती है।

(४) लाभ (एकादश) भाव में शुभ ग्रह बलवान् होकर बैठे हों तब शीघ्र ही नष्ट द्रव्य का लाभ होता है।

सारांश यह है कि लग्न में पूर्ण चन्द्र, शुभग्रह की स्थिति, शीर्षोदय लग्न का होना अथवा लाभ स्थान में बली ग्रह का होना शीघ्र ही नष्टवस्तु का लाभ कराता है, इसके विपरीत स्थिति होने पर अर्थात् लग्न में क्षीण चन्द्र हो अथवा पापग्रह स्थित हो, पृष्ठोदय लग्न हो और लाभस्थान में निर्बल ग्रह हों तो नष्ट वस्तु का लाभ नहीं होगा ऐसा स्पष्टतः समझा जा सकता है।

नष्ट वस्तु दिशा व दूरी ज्ञान

दिग्वाच्या केन्द्रगतैरसम्भवे वा वदेद्विलग्नर्क्षात्।
मध्याच्च्युतैर्विलग्नान्नवांशकैर्योजना वाच्या॥

केन्द्र में स्थित ग्रह की दिशा के अनुसार नष्ट वस्तु की दिशा जानना चाहिए। यदि केन्द्र में एक से अधिक ग्रह हों तो उनमें जो ग्रह बलवान् हो| उस ग्रह की दिशा में नष्ट वस्तु है, ऐसा समझना चाहिए। यदि चारों केन्द्र रिक्त हों अथवा केन्द्रों में कई ग्रह स्थित हों लेकिन कोई भी ग्रह बलवान् न हो तब लग्न में जो राशि है उसकी दिशा के अनुसार ही नष्ट वस्तु का ज्ञान करना चाहिए।

नष्ट वस्तु की योजनात्मक दूरी ज्ञात करने के लिए लग्न के नवांश का उपयोग करते हैं। यदि लग्न स्पष्ट पाँचवें नवांश अर्थात् १६°। ४' तक है तब तक वस्तु घर के अंदर ही समझना चाहिए। इसके पश्चात् के चार नवांशों में प्रति नवांश पर एक योजन की दूरी के अनुसार वस्तु को जानना चाहिए। पाँच नवांशों तक वस्तु की दूरी जानने के लिए प्रथम नवांश में घर के अन्दर, द्वितीय में गृह द्वार के समीप, तृतीय में गाँव में, चतुर्थ में गाँव की सीमा पर तथा पाँचवें में गाँव से कुछ दूर समझें। छठवें नवांश में एक योजन (एक योजन किलोमीटर) के भीतर, सातवें नवांश में २ योजन (२४ कि०मी) के भीतर, आठवें नवांश में ३ योजन (३६ कि०मी०) की परिधि में तथा नवें नवांश में ४ योजन (४८ कि०मी०) की परिधि में जानना चाहिए।

लग्नप्रश्न निरूपणम् –

भूतं भवद्भ्विष्यन्मम किं कथयेति जातपृच्छायाम्।
लग्नपतेः शशिनो वा बलमन्वेष्यं बलाभावे॥

दृष्टवा नवांशकबलं शुभदृग्योगं च सर्वकालेषु।
प्रष्टुः शुभमादेश्यं विपरीतं व्यत्ययादेषा ।।
लग्नेशो मूसरिफो यस्मादतीतमाख्येयम्।
येन युतस्तस्माद्भवदेष्यं यो योक्ष्यते तस्मात्।
यदि लग्ने लग्नपतिः सौम्ययुतो वा विलोकितः सौम्यैः ॥
तत्प्रष्टुर्व्याकुलता शरीरदोषा विनश्यन्ति।
पापो यदि लग्नपतिस्तदा कलिव्याधिधननाशः ॥
सौम्ये निर्वृतिबुद्धिर्द्धव्याप्तिः सौख्यमतुलं च ॥

यदि कोई त्रिकाल सम्बन्धित प्रश्न करता हो और यह जानना चाहता हो कि मेरे भूत, वर्तमान या विष्य में क्या शुभाशुभ फल है, इसका विवेचन करने इस प्रकार करना चाहिये -

इस प्रश्न में लग्नेश और चन्द्रमा का बल साधन करना चाहिये। उन दोनों के निर्बल रहने से कार्य का नाश होगा ऐसा कहना चाहिये।

सर्वकाल में नवांश का बल और शुभग्रह की दृष्टि, शुभग्रह का योग प्रश्नकर्त्ता का शुभ करता है। पापग्रह के योग से, दृष्टि से विपरीत फल कहना चाहिये।

जिस ग्रह से लग्नेश मूसरिफ (इत्थशाल) करता हो, उससे भूत फल कहना चाहिये। जिस ग्रह से लग्नेश युत हो, उससे वर्तमान फल कहना चाहिये। जिस ग्रह से लग्नेश इत्थशाल करेगा उससे भावी फल कहना चाहिये। यदि लग्नेश लग्न में हो, शुभग्रह से युत हो, तो प्रश्नकर्ता की चिन्ता खत्म होती है। शरीर के सभी दोष समाप्त हो जाते है।

यदि लग्नेश पापग्रह हो तो कलह, रोग, धननाश होते हैं। यदि शुभग्रह लग्नेश हो तो स्थिर बुद्धि होता है, धनलाभ होता है तथा विशेष सुख भी प्राप्त होता है।

द्वितीय स्थान का प्रश्न विचार-

धनलाभस्य प्रश्ने लग्नेशेनेन्दुनाऽथ धननाथः।
कुरूते यदीत्थशालं शुभयुतिदृष्ट्यां भवेल्लाभः ॥
क्रूरग्रहैर्धनस्थैर्दूरे लाभोऽन्यदष्यशुभम्।
शिले धने प्रष्टा म्रियतेऽथवा विलग्नेशे ॥
धनधनपतीथशाले मंदगतिर्यत्र भावानाम्।
तनुधनसहजादीनां प्रष्टस्तद्द्वारतो लाभः।।

धन लाभ के प्रश्न में धन भावेश यदि लग्नेश से या चन्द्रमा से इत्थशाल योग करता हो, शुभग्रह का योग होता हो या दृष्टि हो तो धन लाभ होता है । यदि पापग्रह धन भाव में हो तो दूरदेश जाने पर लाभ होता है और भी अनिष्टफल होता है । यदि धनेश को पापग्रह से इत्थशाल होता हो, तो प्रश्नकर्ता का मरण होता है या लग्नेश, धन भाव से या धनभावेश से इत्थशाल करता हो तो लग्नादि जिस भाव में मन्दगति ग्रह हो उस भाव के द्वारा लाभ होता है ।

तृतीय भावेश यदि तृतीय भाव को देखता हो या यदि तृतीयेश तृतीयभाव को शुभग्रह सब देखें तो प्रश्नकर्ता के भाई नीरोग रहता है, सुखी रहता है । यदि पापग्रह देखें तो भाई रोगी हों ऐसा कहना चाहिये।

तृतीयेश षष्ठस्थान में हो, षष्ठेश से इत्थशल योग करता हो तो भाई को रोग होगा ऐसा कहना चाहिये। षष्ठेश तीसरे स्थान में हो, तृतीयेश पापयुतदृष्ट हो तो भाई को रोग होगा ऐसा कहना चाहिये ।

चतुर्थ स्थान का विचार-

लग्नेश और चन्द्रमा इन दोनों से जो चतुर्थ स्थान, उसमें उन दोनों में मुथशिल हो, या वहाँ कोई अच्छे ग्रह हों, तो प्रश्नकर्ता को कहीं यात्रा करने में भूमिलाभ होता है।

यदि किसान प्रश्न पूछे कि मुझे खेती से लाभ होगा या नहीं ? तो उस समय का जो लग्न हो उसको किसान समझना, लग्न से चतुर्थ राशि को खेत समझना, लग्न से सप्तम राशि को कृषि समझना चाहिये, एवं लग्न से दशम को वनस्पति सम्बन्धित समझना चाहिये ।

पंचम स्थान का विचार -

यदि कोई स्त्री प्रश्न पूछे कि मुझे सन्तान होगा या नहीं ? ऐसी परिस्थिति में कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा को पंचमेश से इत्थशाल योग होने से सम्भव कहना चाहिये । तथा पंचमेश लग्न में हो, या लग्नेश, चन्द्रमा पंचम भाव में हों, तो शीघ्र सन्तान होगा ऐसा कहना चाहिये । नक्त योग होता हो, तो विलम्ब से सन्तान कहना चाहिये । यदि द्विःस्वभाव भावराशि लग्न हो, शुभग्रह से युत दृष्ट हो, तो एक ही बार दो सन्तान का योग होता है। यदि लग्न से पंचमेश, या लग्नेश, पंचमेश, पुरूष में हो तो गर्भ में लड़का होगा ऐसा कहना चाहिये ।

पंचम भाव का विचार इस प्रकार से भी करना चाहिये-

चन्द्रमा यदि विषम राशियों में हो और पुरूषग्रह (सूर्य, मंगल एवं वृहस्पति) में किसी से इत्थशाल करता हो तो गर्भ में लड़का कहना चाहिये या चन्द्रमा दिन में बारह बजे बाद सूर्य के पीछे हो तो कन्या होगी । यह योग कृष्णपक्ष में सार्द्ध सप्तमीतिथि से अमावस तक सम्भव है ।

या प्रश्नलग्न की होरा के स्वामी सूर्य होकर यदि विषम राशि में हो, तो गर्भ में लड़का ही होगा या पंचम भाव, वा पंचमेश चन्द्रमा से युत दृष्ट हो या शुभग्रह से या दृष्ट हो तो धर्मात्मा सन्तान होती है, अथवा पंचमेश अपने उच्च में हों, उदित हों तो भी धर्मात्मा सन्तान होती है।

षष्ठ स्थान विचार-

कोई मनुष्य रोग से छुटकारा का प्रश्न पूछता हो तो इस प्रश्न में लग्न राशि से वैद्य या डाक्टर का विचार, सप्तम स्थान से व्याधि का विचार और दशम स्थान को रोगी समझना, अर्थात् दशमस्थान से रोगी का स्वभाव लक्षण समझना तथा चतुर्थ स्थान को औषधि समझ कर विचार करना चाहिये। यहाँ ध्यातव्य हो कि लग्न में पापग्रह हो, या पापयुत दृष्ट लग्न हो तो वैद्यकी दवाई से गुण नहीं मालूम पड़ेगा अर्थात् लाभ नहीं होगा, बल्कि उसकी दवाई से बीमारी और बढ़ सकती है। सभी पापग्रह दशम स्थान में हो अपने कुपथ्य आदि दोष से दवाई का गुण नहीं होता वा सप्तम में पापग्रह हो तो एक रोग से दूसरा रोग हो जाता है। इस प्रकार चतुर्थ स्थान में भी पापग्रह होता है तो भी वैसे ही फल कहना चाहिये ।

इसी प्रकार से सप्तम स्थान से स्त्री, अष्टम स्थान से आयु, नवम स्थान से भाग्य एवं धर्म, दशम स्थान से नौकरी, एकादश से लाभ एवं द्वादश से हानि का विचार करना चाहिये ।

बोध प्रश्न

1. षट्पंचाशिका ग्रन्थ के रचयिता कौन हैं?
   (क) वराहमिहिर
   (ख) मंत्रेश्वर
   (ग) पृथुयशस
   (घ) कल्याणवर्मा
2. यदि किसी भाव पर शुभग्रहों की दृष्टि या युति हो तो उस भाव का क्या फल होता है?
   (क) हानि
   (ख) स्थिरता
   (ग) वृद्धि
   (घ) बाधा
3. लग्न में शुभग्रह या शुभग्रह का वर्ग होने पर सामान्यतः क्या फल होता है?
   (क) कार्यहानि
   (ख) कार्यसिद्धि

(ग) विलम्ब

(घ) अनिश्चित फल

4. प्रश्न लग्न में स्थिर राशियाँ होने पर स्थान-लाभ प्रश्न में क्या फल होता है?

(क) स्थान परिवर्तन

(ख) स्थान लाभ

(ग) मिश्रित फल

(घ) हानि

5. यायी शब्द का शास्त्रीय अर्थ क्या है?

(क) न्यायाधीश

(ख) साक्षी

(ग) आक्रमणकर्ता / वादी

(घ) मध्यस्थ

6. त्रिकाल (भूत-वर्तमान-भविष्य) प्रश्न में किसका बल विशेष रूप से देखा जाता है?

(क) सूर्य और मंगल

(ख) लग्नेश और चन्द्रमा

(ग) गुरु और शुक्र

(घ) शनि और राहु

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न लग्न का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है | गोचर के अनुसार ग्रहों की स्थिति जानकर प्रश्न कुण्डली के आधार पर जातक शास्त्र के अन्तर्गत फलादेश करने की परम्परा ज्योतिषीयों को सुविदित है। प्रश्न कुण्डली में प्रश्न लग्न होता है। ताजिकनीलकण्ठी में भी षटपंचाशिका के आधार पर प्रश्न लग्न को समझाया गया है। षट्पंचाशिका एक प्रश्न ग्रन्थ है, जिसे ५६ श्लोक है तथा इसके रचयिता आचार्य पृथुश है।

प्रश्नशास्त्र की परंपरा में प्रश्न लग्न को सम्पूर्ण प्रश्न प्रणाली का मूल, प्रथम तथा सर्वाधिक सजीव अंग माना गया है, क्योंकि जिस क्षण प्रश्नकर्ता अपने अंतर्मन की व्याकुलता, भय, जिज्ञासा या आकांक्षा के साथ प्रश्न करता है, उसी क्षण उदित होने वाला लग्न उसके मनोभावों का दैविक

और वस्तुनिष्ठ प्रतीक बन जाता है। यह लग्न केवल राशि का उदय नहीं है, अपितु प्रश्न के स्वभाव, उद्देश्य, दिशा, सत्यता तथा अंतिम फल तक का सूक्ष्म संकेत प्रदान करता है। प्रश्नशास्त्र वस्तुतः सामान्य फलित ज्योतिष का ही उन्नत और संक्षिप्त रूप है, जिसमें जन्मकुंडली के समस्त सिद्धांत प्रश्नकुंडली पर समान रूप से लागू होते हैं, किंतु इसके साथ कुछ विशिष्ट नियम भी जुड़े होते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से एक प्रश्नकर्ता को एक ही प्रश्न पूछना चाहिए, परंतु व्यवहार में बहुविध प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनका समाधान क्रमशः लग्न, चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति तथा बलवान–बलहीन बुध या शुक्र से किया जाता है। ताजिक परंपरा में आचार्य पृथुयशस कृत षट्पंचाशिका के आधार पर प्रश्न लग्न की व्याख्या अत्यंत स्पष्ट रूप से की गई है, जिसमें बताया गया है कि जो भाव अपने स्वामी या शुभग्रहों से युत अथवा दृष्ट होते हैं, वे वृद्धि को प्राप्त होते हैं और पापग्रहों से युत या दृष्ट भावों में हानि होती है। लग्न में शुभग्रह, शुभ वर्ग अथवा शीर्षोदय राशि होने पर कार्यसिद्धि होती है, जबकि पापग्रहों के प्रभाव से कार्य में बाधा, विलम्ब या हानि होती है। कार्यसिद्धि के लिए लग्नेश और कार्येश के पारस्परिक दृष्टि, युति अथवा चन्द्रमा के सहयोग को अत्यंत आवश्यक माना गया है, जिनके आधार पर पूर्ण, अंशिक या अल्प योगों का निर्धारण किया जाता है। प्रश्न लग्न में चर, स्थिर या द्विस्वभाव राशियों के अनुसार फल भिन्न-भिन्न होते हैं—स्थिर राशि में यथास्थिति या स्थायित्व, चर राशि में परिवर्तन, गमन या अनिष्ट तथा द्विस्वभाव राशि में मिश्रित और विलम्बयुक्त फल प्राप्त होते हैं। शत्रु आगमन, यायी (आक्रमणकर्ता), यात्रा, जीवन-मरण, नष्ट वस्तु, रोग, विजय–पराजय आदि सभी प्रश्नों का निर्णय प्रश्न लग्न, चन्द्रमा तथा संबंधित भावों और ग्रहों के बलाबल से किया जाता है। त्रिकाल संबंधी प्रश्नों में लग्नेश और चन्द्रमा का बल, नवांश बल तथा शुभ–अशुभ ग्रहों की युति-दृष्टि के माध्यम से भूत, वर्तमान और भविष्य का निर्णय किया जाता है। इस प्रकार यह इकाई स्पष्ट करती है कि प्रश्न लग्न के बिना किसी भी प्रश्न का सम्यक् फलादेश संभव नहीं है और प्रश्नशास्त्र में लग्न ही वह केन्द्रबिंदु है, जिसके माध्यम से दैव और मानव मन की सूक्ष्म चेतना एक-दूसरे से जुड़कर सत्य फल को प्रकट करती है। प्रश्न लग्न से या जन्म लग्न से जो जो भाव अपने स्वामी या शुभ ग्रहों से युत दृष्ट हों, उन-उन भावों की वृद्धि होती है और जिन-जिन भावों पर पाग्रह हों या उनकी दृष्टि पड़ती हो, उन-उन भावों की हानि होती है। इस प्रकार सभी भावों का विचार करना चाहिये।

3. 5 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)

2. (ग)

3. (ख)

4. (ख)

5. (ग)

6 . (ख)

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ताजिक नीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

2. ज्योतिष सर्वस्व - सुरेश चन्द्र मिश्र

3. उत्तर कालामृत –

4. बृहत्यसंहिता - चौखम्भा प्रकाशन

5. षट्पंचाशिका - चौखम्भा प्रकाशन

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रश्न लग्न क्या है। लिखिये।

2. प्रश्न लग्न सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन कीजिये।

3. उदाहरण सहित समझाइये कि प्रश्न कुण्डली का निर्माण कैसे होता है।

इकाई – 4 प्रश्नाक्षर सिद्धान्त

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्रश्न सिद्धांत का परिचय एवं स्वरुप

4.4 प्रश्न लग्न एवं प्रश्न विचार

4.5 चन्द्र लग्न से प्रश्न विचार

4.6 प्रश्न मार्ग,प्रश्न तंत्र,प्रश्न ज्ञान,प्रश्न दीपिका, इत्यादि विभिन्न ग्रंथो से प्रश्न विचार

4.7 प्रश्नलग्न द्वारा विवाह,मूक,एवं संतान, विचार

4.8 सारांश

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों!

प्रस्तुत इकाई बी.ए.जे.वाई .(एन)223 पाठ्यक्रम से सम्बंधित है। इस इकाई का शीर्षक “प्रश्नाक्षर सिद्धांत” हैं? इस इकाई के माध्यम से प्रश्न सिद्धांत, प्रश्न लग्न, प्रश्न विचार, के बारे मैं विस्तृत पूर्वक अध्ययन करते हैं। आइये सर्वप्रथम हम प्रश्न लग्न, प्रश्न लग्न विचार, प्रश्न सिद्धांत, इन सभी विषयों के बारे मैं ज्योतिष शास्त्रीय ग्रंथों से लिए गये प्रश्नाक्षर विषय का उल्लेख कर रहें हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा मैं वेदाड्गो मैं ज्योतिष शास्त्र को नेत्र के रूप मैं स्थान दिया गया हैं, कि काल शास्त्र के द्वारा भविष्य का ज्ञान किया जा सके जिससे आनेवाले समय मैं ज्योतिष शास्त्र एवं प्रश्नाक्षर सिद्धांत के द्वारा भविष्य के लिए हम सभी तैयार हो सके। ज्योतिष शास्त्र मैं अनेक विषयों का उल्लेख किया गया हैं? उनमें से एक विषय प्रश्नाक्षर सिद्धांत, या प्रश्न लग्न विचार, जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति के तत्काल भविष्य का ज्ञान किया जा सके। यहां पर तत्काल का अर्थ हुआ शीघ्र ही भविष्य कथन या किसी वस्तु का ज्ञान करना, जिस व्यक्ति के पास सही, जन्म समय, जन्म माह, ये उपलब्ध न हो तो वे जातक प्रश्नाक्षर के माध्यम से वह व्यक्ति उस काल मैं ज्योतिषी के पास जाकर प्रश्न करके समाधान कर सकते हैं| ज्योतिषी उस व्यक्ति के बिना जन्म कुंडली या बिना जन्म समय के भी प्रश्नाक्षर के माध्यम से फलादेश करता हैं? जो उस व्यक्ति पर घटित होता हैं। तत्काल फलादेश का घटित होना ही प्रश्नाक्षर सिद्धांत या प्रश्न लग्न विचार कहलाता हैं। आइये हम प्रश्नाक्षर सिद्धांत के बारे में आगे विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ❖ प्रश्नाक्षर सिद्धांत का परिचय एवं स्वरुप को जान सकेंगे।
- ❖ प्रश्न लग्न तथा प्रश्न विचार से अवगत हो सकेंगे।
- ❖ चन्द्र लग्न से प्रश्न विचार के बारे में जान पायेंगे।
- ❖ मूकप्रश्न,विवाह प्रश्न,संतान प्रश्न से अवगत हो सकेंगे।

4.3 प्रश्नसिद्धांत का परिचय एवं स्वरुप

ज्योतिषशास्त्र के अंतर्गत प्रश्न शास्त्र का विधि पूर्वक वर्णन किया गया हैं। प्रश्न शास्त्र का उपयोग कहा किया जाता है, इस शास्त्र की क्या उपयोगिता हैं? इस बारे में ज्योतिष के जानकारों ने विस्तृत उल्लेख किया हैं? प्रश्न शास्त्र उस विधा को कहते हैं, जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं के कार्य से सम्बंधित प्रश्न होते हैं जो समय, स्थान और लग्न के आधार पर जातक के भविष्य फल का निर्णय करता हैं। यदि किसी जातक की जन्म-कुंडली उपलब्ध न हो तो उसका फलादेश केसे किया जाय इस समस्या के समाधान के लिए प्रश्न-कुंडली के माध्यम से फल-निर्णय करने का विधान शास्त्र कहता हैं। शास्त्रों में कहा भी गया हैं, "**प्रश्नेन ज्ञायते सर्वं यज्जन्मनि न दृश्यते**" अर्थात् जो जन्म-कुंडली से ज्ञात न हो, वह प्रश्न लग्न के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है? अब प्रश्न-लग्न की उत्पत्ति एवं परंपरा तथा प्रश्न-विचार की परंपरा के बारे में विचार किया जाय तो प्राचीन वैदिक काल से चली आ रही हैं। प्रश्न शास्त्र का वर्णन बृहत्संहिता, प्रश्नमार्ग, प्रश्नचूड़ामणि, प्रश्नज्योतिष, तथा होरा शास्त्र आदि ग्रंथों में प्रश्न-विचार का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता हैं। ज्योतिषशास्त्र के आचार्य वराहमिहिर, पंडित कल्याणवर्मा एवं नारद आदि विद्वानों ने प्रश्न शास्त्र विषय पर महत्वपूर्ण सिद्धांतो का प्रतिपादन किया हैं। प्रश्न विचार का मुख्य उद्देश्य क्या होगा इस बात पर प्रश्न शास्त्र व्यक्ति की जिज्ञासा का समाधान ,तात्कालिक एवं विशेष परिस्थितियों का विश्लेषण, शुभाशुभ होने वाली घटनाओं का पूर्व में ही निर्णय लेने में सहायता प्रदान कर समस्या को दूर करने के लिए प्रश्न-कुंडली का निर्माण तथा प्रश्न-कुंडली से जातक के तात्कालिक समय का निवारण प्रश्न कुंडली के माध्यम से किया जाता हैं। प्रश्न कुंडली शुभ समय, शुभ दिन, में तत्काल बनाई जाती है, जिस समय प्रश्नकर्ता किसी ज्योतिषी से प्रश्न पूछता है,तो ज्योतिषी प्रश्न का समय,स्थान लग्नग्रह, स्थिति भाव, का विशेष ध्यान के साथ साथ लग्न का का विचार कर प्रश्न करता के समस्या का समाधान करता हैं।

प्रश्नकाले स्थितो लग्नः प्रश्नस्य फलदायकः।
तस्मात् लग्नं परीक्ष्यं तु सर्वप्रश्ने विशेषतः॥

प्रश्न लग्न के प्रमुख सिद्धांत के बारे में बताया जा रहा हैं? सर्वप्रथम उस समय लग्न विचार, कर लग्न बलवान हो तो प्रश्न का उत्तर सही होता हैं। इसके बाद लग्नेश की स्थिति, राशि एवं दृष्टि का विचार चंद्र विचार,चंद्रमा मन, प्रश्न की सत्यता एवं तात्कालिक फल का विचार कर उस लग्न में बनी कुंडली से भाव विचार के द्वारा अनेक प्रकार के जो प्रश्न पूछने वाला पूछता हैं। उसमे से विवाह सप्तम भाव,धन द्वितीय एवं एकादश भाव रोग षष्ठ भाव', राजयोग दशमभाव, संतान का विचार पंचम भाव, ग्रह-बल एवं युति शुभ ग्रहों की युति एवं दृष्टि शुभ फल देनेवाली होती हैं।, यदि प्रश्न काल में कुंडली के आधार पर पाप ग्रह अशुभ होते है तो उस व्यक्ति को अशुभ फल प्राप्त होता हैं। अब विचार किया

जाता है की प्रश्न के कितने प्रकार है तो विचार किया जाता है कि विवाह संबंधी प्रश्न,संतान प्राप्ति,रोग एवं स्वास्थ्य,धन-लाभ,राजयोग एवं व्यवसाय,यात्रा,मृत्यु एवं आयु प्रश्न-विचार,शकुन एवं स्वप्न शकुन पक्षी, शब्द, दिशा,स्वप्न,प्रश्नकर्ता की मनःस्थित,को भी फलादेश में उपयोगी माना गया जाता हैं। यदि बार बार एक ही विषय पर प्रश्न किया जाय तो वह अशुभ माना गया हैं।

4.4 प्रश्न लग्न एवं प्रश्न विचार

वैदिक ज्योतिषशास्त्र में प्रश्नविचार को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय माना जाता हैं जिसके माध्यम से व्यक्ति द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर तत्काल ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति को देखकर उस जातक का फलादेश किया जाता हैं। प्रश्नविचार में मुख्य रूप से प्रश्नलग्न का विशेष स्थान होता हैं, जिसके द्वारा जातक के किये हुये प्रश्नों का सही फलादेश किया जा सके। प्रश्नमार्ग तथा प्रश्नचन्द्रप्रकाश नामक ग्रन्थ प्रश्न लग्न के लिए जाने जाते हैं| जिसमें प्रश्नलग्न विचार का विस्तृत, व्यावहारिक एवं सिद्धान्तात्मक वर्णन प्राप्त होता हैं।

प्रश्नलग्न का अर्थ-

जिस समय प्रश्नकर्ता अपने मन में किसी जिज्ञासा या समस्या को लेकर किसी ज्योतिषी के पास जाकर प्रश्न करता है, उस काल में वह प्रश्न जो लग्न चल रहा होता है, वही प्रश्नलग्न कहलाता हैं। प्रश्नमार्ग ग्रन्थ के अनुसार प्रश्नकर्ता के बारे में विचार करते हैं, यदि प्रश्नकर्ता प्रश्न करता है तो उस समय उसका मन, भाव और परिस्थिति उसी समय आकाशीय ग्रह स्थिति में प्रतिबिम्बित हो जाती है, जिसे प्रश्नलग्न या प्रश्नफल का आधार माना जाता हैं। प्रश्नमार्ग, मुख्य रूप से केरल यानि दक्षिण परम्परा का अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता हैं|जिसके द्वारा प्रश्नलग्न का विचार किया जाता हैं। अब हम प्रश्न की सत्यता को जानते हैं| यदि प्रश्नकाल के समय प्रश्न लग्न, लग्नेश तथा चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों का प्रभाव हो तो प्रश्न सत्य, गंभीर और फलदायक होता हैं। जातक के प्रश्न के अनुसार यदि कुंडली में पाप ग्रहों से शुभ ग्रह अशुभ हो रहे हो तो वह जातक अपनी समस्याओं से परेशान रहता हैं। लग्न एवं लग्नेश तथा चन्द्रमा से प्रश्न लग्न का विचार किया जाता हैं| प्रश्न किस विषय से सम्बन्धित है, उस भाव का विचार कर फलादेश किया जाता हैं। है। उदाहरण में देखते हैं यदि कोई जातक विवाह सम्बन्धित प्रश्न करता है ,तो उसका विचार सप्तम भाव से,पुत्र विचार के लिए पंचम भाव,तथा धन के लिए एकादश भाव प्रमुख माने गए हैं,। इन भावों से जातक के प्रश्नों का विचार किया जाता हैं। दृष्टि एवं योग शुभ दृष्टियाँ, केन्द्र-त्रिकोण सम्बन्ध, तथा शुभ योग का विचार प्रश्नफल

को शुभ बनाते हैं| प्रश्नमार्ग में ग्रहों की दशा, विशेषकर चन्द्रदशा अथवा प्रश्नकालीन दशा से भी जातक के प्रश्नों का फलादेश किया जाता हैं। प्रश्नचन्द्रप्रकाश नामक पुस्तक में प्रश्नलग्न विचार का महत्वपूर्ण विषयों का वर्णन किया गया हैं। इस ग्रन्थ में चन्द्रमा ग्रह के द्वारा प्रश्न लग्न का विचार किया जाता हैं। प्रश्नचन्द्रप्रकाश के अनुसार चन्द्रमा मन का कारक है, अतः प्रश्न के पीछे छिपे भाव, भय, आशा या शंका को समझने के लिए चन्द्रमा का बलवान होना आवश्यक होता हैं। प्रश्न लग्न और चन्द्र लग्न कई स्थानों पर चन्द्रमा को लग्न मानकर भी विचार करने का उल्लेख मिलता हैं, जिसे चन्द्रलग्न कहा जाता हैं| शुभ-अशुभ संकेत – यदि प्रश्न लग्न या चन्द्रमा नीच, अस्त, पापग्रही अथवा पापदृष्ट हो, तो प्रश्न का उत्तर नकारात्मक या विलम्बकारी होता है। प्रश्नमार्ग में वर्णन किया गया है जहाँ लग्न, लग्नेश और भावों का विस्तृत शास्त्रीय वर्णन है, उसका चन्द्रमा के माध्यम से मानसिक स्थिति और प्रश्न की गहराई को समझने पर अधिक बल दिया गया हैं। ज्योतिषशास्त्र में प्रश्नलग्न का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म, दार्शनिक तथा फलप्रद माना गया है। जब प्रश्नकर्ता किसी विशेष जिज्ञासा को लेकर प्रश्न करता है, उस समय जो लग्न उदित होता है, वही प्रश्नलग्न माना जाता हैं। यह केवल आकाशीय गणना नहीं, बल्कि प्रश्नकर्ता के मन, भावना और परिस्थिति के भाव के अनुसार होता हैं।

प्रश्नकाले स्थितो लग्नः प्रश्नस्य फलदायकः।तस्माल्लग्नं परीक्ष्यं तु सर्वप्रश्ने विशेषतः॥

यहाँ पर कहा गया है कि प्रश्नकाल में स्थित लग्न ही प्रश्न का फल देने वाला होता हैं। इसलिए प्रत्येक प्रश्न में सर्वप्रथम लग्न का विचार कर फलादेश करना चाहिए| प्रश्नलग्न का प्रथम स्वरूप प्रश्नकर्ता का प्रतिनिधित्व करता है। लग्न और उसका स्वामी प्रश्नकर्ता की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्थिति को दर्शाते हैं। यदि लग्न तथा लग्नेश बलवान और शुभ ग्रहों से युक्त हों, तो प्रश्नकर्ता का मन स्थिर तथा प्रश्न सार्थक होता है।

लग्ने लग्नपतौ चापि शुभयुक्ते शुभेक्षणे।
सत्यः प्रश्नो भवेद् नूनं फलवान् नात्र संशयः॥

यदि प्रश्न काल में पापग्रही लग्न अथवा नीच का होकर लग्न में हो तो उस व्यक्ति को भ्रम, छल या असत्य कार्य होने पर सतर्क करते रहता हैं|

दुष्टे लग्ने तु दुष्टश्च प्रश्नो भवति निश्चयः।
न तत्र फलविचारः स्याद् व्यर्थः प्रश्न उदाहृतः॥

प्रश्न से सम्बन्धित विषय प्रश्न कुंडली के भाव, कारक ग्रह तथा चन्द्रमा सब प्रश्नलग्न के आधार पर ही व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं|

चन्द्रे बलवति प्रश्नस्य सिद्धिर्भवति निश्चितम्।

मनःप्रसन्नता चैव प्रश्नार्थे फलदायिनी॥

इस प्रकार प्रश्नलग्न का स्वरूप प्रश्नकर्ता के मनोभाव, प्रश्न की प्रामाणिकता और भविष्यफल तीनों का समन्वित स्वरुप होता हैं|

प्रश्नलग्न विचार

प्रश्नकाले स्थितो लग्नः प्रश्नस्य फलदायकः।

तस्मात् लग्नं परीक्ष्यं तु सर्वप्रश्ने विशेषतः॥

प्रश्नकाल में स्थित लग्न ही प्रश्न का फल देने वाला होता है, इसलिए प्रत्येक प्रश्न में विशेष रूप से लग्न का परीक्षण करना चाहिए| प्रश्नमार्ग के अनुसार प्रश्नकर्ता स्वयं लग्न है? उसका मन चन्द्रमा है? और प्रश्न का विषय संबंधित भाव से देखा जाता है| यदि लग्न तथा लग्नेश बलवान, केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों और शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों, तो प्रश्न का उत्तर शुभफल देने वाला होता हैं

शुभे लग्ने शुभे लग्नपतौ, प्रश्नः सिद्धिं प्रयच्छति।

यदि लग्न षष्ठ, अष्टम या द्वादश भाव से सम्बन्ध रखता हो अथवा पापग्रहों से पीड़ित हो, तो प्रश्न व्यर्थ, भ्रम वाले हो सकते हैं|

दुष्टे लग्ने तु दुष्टश्च प्रश्नो भवति निश्चयः।

न तत्र फलविचारः स्यात् व्यर्थः प्रश्न उदाहृतः॥

प्रश्नलग्न का विचार लग्न, तथा चन्द्रमा ग्रहों से किया जाता हैं| जिससे की प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का सही फलादेश इन ग्रहों के द्वारा किया जा सके|

लग्नं च चन्द्रमं चैव यो जानाति स तत्त्ववित्।

प्रश्नस्य फलमाख्यातुं न स कश्चित् विमुह्यति॥

4.5 चन्द्रलग्न से प्रश्न विचार

भारतीय वैदिक ज्योतिष के अंतर्गत तीन स्कंध हैं, सिद्धांत ,होरा,संहिता इन तीनो के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र की गणना संभव हैं। इनमे जो होरा शास्त्र है इसके अंतर्गत ग्रहों के माध्यम से उसमे भी चंद्रमा ग्रह के द्वारा प्रश्न ज्योतिषशास्त्र का विचार किया जाता हैं|प्रश्न ज्योतिष शास्त्र में चन्द्रमा को मन का कारक ग्रह बताया गया हैं जो सवा दो दिन में एक राशि से दूसरे राशि में चला जाता हैं | जिससे उस जातक को तत्काल फल देता हैं| प्रश्न कुंडली में भी चन्द्र से ही जातक के भविष्यफल का विचार किया जाता हैं। प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता के मन में जो जिज्ञासा होती है वह भय, को उत्पन्न कर चन्द्रमा की स्थिति में परिलक्षित होती हैं। इसलिए ज्योतिषशास्त्र में प्रश्न लग्न के साथ-साथ चन्द्रमा एवं चन्द्रलग्न को प्रश्नफल का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार माना गया है, जिसके आधार पर उस जातक के फल का निर्धारण किया जा सके| ज्योतिष में चन्द्रमा सबसे तीव्र चलने वाला ग्रह माना जाता हैं, इसलिए चन्द्रमा को मनस तत्व का प्रतिनिधि कहा गया हैं। प्रश्न के समय प्रश्नकर्ता का मन जिस स्थिति में होता है, उसी के अनुसार प्रश्न की सार्थकता और फल निर्धारित होता है। प्रश्नचन्द्रप्रकाश ग्रन्थ में वर्णित हैं। **"यादृशं मनसि प्रश्नःतादृशं चन्द्रसंस्थितम्"** इसका उद्देश्य यह है कि प्रश्नकर्ता के मन में जिस प्रकार का प्रश्न आता है, वैसी ही स्थिति चन्द्रमा में प्रतिबिम्बित होती चली जाता हैं| हैं। अब हम चन्द्रलग्न की संकल्पना के बारे में विचार करते हैं| जब प्रश्नकाल में चन्द्रमा प्रश्न कुंडली में जिस राशि में स्थित होता है, उसे चन्द्रलग्न कहा जाता हैं। कई प्रश्नग्रंथों में चन्द्रलग्न से भावों की गणना कर प्रश्नफल करने का उल्लेख भी मिलता हैं। **"चन्द्रलग्नात् विचार्याणि प्रश्नार्थानि विशेषतः"** प्रश्नशास्त्र ग्रंथो में प्रश्न से सम्बन्धित विषयों का विशेष विचार चन्द्रलग्न से करने का भी वर्णन मिलता हैं। प्रश्न कुंडली में चन्द्रमा के बल एवं निर्बलता का भी विचार किया जाता हैं। चन्द्रमा की बलवत्ता प्रश्नफल की सही दिशा को स्पष्ट करती हैं। ग्रंथो में इस प्रकार वर्णन किया गया हैं कि बलवान चन्द्रमा प्रश्न की सिद्धि का सूचक है, जबकि निर्बल चन्द्रमा संदेह, विलम्ब या असफलता का कारण माना गया हैं|

चन्द्रे बलवति प्रश्नस्य सिद्धिर्भवति निश्चितम्। निर्बले चन्द्रे संशयः प्रश्नफले जायते ध्रुवम्॥

यदि पूर्ण चन्द्र हो जातक की कुंडली में तो उस जातक को सकारात्मक फलप्राप्त होता हैं| यदि कृष्ण पक्ष के क्षीण चन्द्रमा से जातक में प्रश्नों का फलादेश करते है तो उस व्यक्ति के कार्य में विलम्ब, मानसिक अस्थिरता इत्यादि समस्या होने लगती हैं|नीच, अस्त या पापदृष्ट चन्द्रमा भय, बाधा, नकारात्मक परिणाम शुभ–अशुभ ग्रह प्रभाव यदि चन्द्रमा पर गुरु, शुक्र या बुध की युति या

दृष्टि हो, तो प्रश्न सुखद होता हैं। इसके विपरीत विचार करे तो शनि, मंगल, राहु या केतु की अशुभ दृष्टी से प्रश्न में समस्या उत्पन्न होती हैं|

शुभेक्षिते शुभयुक्ते चन्द्रे प्रश्नः फलप्रदः।
पापेक्षिते पापयुक्तेबाधा दुःखप्रदायिका॥

अब चन्द्रलग्न से जातक के प्रश्न का प्रश्न कुंडली से भावविचार किया जा रहा हैं| कुंडली में चन्द्रलग्न को लग्न मानकर भावों की गणना की जाती हैं। यदि प्रश्न से सम्बन्धित भाव यदि चन्द्रलग्न से केन्द्र 1,4,7,10 या त्रिकोण 1,5,9 में स्थित हों और उनका स्वामी शुभ हो, तो प्रश्न की सिद्धि शीघ्र होती हैं।चन्द्रलग्न से सप्तम भाव में विवाह का विचार किया जाता हैं,पंचम भाव से संतान, विद्या द्वितीय,एकादश भाव से धनलाभ होता हैं| नक्षत्र के द्वारा भी प्रश्न लग्न का विचार किया जाता हैं|चन्द्रमा का नक्षत्र प्रश्नफल के समय और दिशा का निर्धारण करता हैं। यदि चन्द्र शुभ नक्षत्रों में स्थित हो तो शीघ्र फल की प्राप्ति करता हैं|**"नक्षत्रस्थेन चन्द्रेण कालो ज्ञेयः फलस्य च"** यह यह भी विचार करना आवश्यक है कि चन्द्रमा की तीव्र गति शीघ्र फल का, तथा मन्द गति विलम्ब फल देती हैं| चन्द्रमा प्रश्नकर्ता की मानसिक स्थिति को भी बदल देता हैं| "मनःप्रसन्नता चन्द्रे प्रश्नसिद्धेः कारणम्"।

4.6 प्रश्न तंत्र,प्रश्न ज्ञान,प्रश्न दीपिका,प्रश्नकल्पद्रुम अनुसार प्रश्नविचार

ज्योतिषशास्त्र में प्रश्नविचार वह पद्धति है, जिसके द्वारा प्रश्नकर्ता के प्रश्नकालीन लग्न, ग्रहस्थिति एवं चन्द्रमा के आधार पर प्रश्न का उत्तर दिया जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में प्रश्नलग्न को केन्द्रीय आधार माना गया है। प्रश्नतंत्र से लेकर जातकपारिजात तक अनेक आचार्यों ने प्रश्नलग्न को प्रश्नफल का मूल आधार माना हैं।

प्रश्नतंत्र- आचार्य नीलकण्ठ दैवज्ञ ने **प्रश्नतंत्र** ग्रन्थ में प्रश्नलग्न को प्रश्नकर्ता के लिए उपयोगी कहा हैं| है। इस ग्रन्थ में उल्लेख किया गया है कि प्रश्नकर्ता के उत्तर देने से पूर्व लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा का विधिपूर्वक विचार कर लेना चाहिए|

प्रश्नकाले समुत्पन्नो लग्नः प्रश्नस्य कारणम्।
तस्माल्लग्नं परीक्ष्यं तु प्रश्नार्थफलसिद्धये॥

प्रश्नज्ञान – आचार्य गोविन्द भट्ट ने प्रश्नज्ञान नामक ग्रन्थ में प्रश्न लग्न तथा प्रश्नकर्ता के मनोभाव के अनुसार फल प्राप्ति के बारे में बताया हैं। उन्होंने प्रश्नलग्न और चन्द्रमा को प्रश्न का मुख्य ग्रह माना हैं|

लग्नं प्रश्नकृते देहः चन्द्रः प्रश्नस्य मानसम्। एतयोः बलसंयोगात् प्रश्नसिद्धिर्न संशयः॥

प्रश्नदीपिका- प्रश्नदीपिका ग्रन्थ मै आचार्य ने जातक के द्वारा किये प्रश्नों के बारे में प्रश्नलग्न को महत्वपूर्ण माना हैं। इस ग्रन्थ में कहा गया है, कि यदि प्रश्नलग्न केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो प्रश्न कर्ता के प्रश्न का फल शुभ होता हैं| **केन्द्रे त्रिकोणे वा लग्ने प्रश्नः सिद्धिं प्रयच्छति। षष्ठाष्टव्ययसंस्थे तु प्रश्नो भवति निष्फलः॥**

प्रश्नकल्पद्रुम- प्रश्नकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में प्रश्नलग्न से विभिन्न विषयों का फलादेश किया जा सकता हैं| जैसे विवाह, संतान, धन, यात्रा आदि प्रश्नों का विचार इस ग्रन्थ के द्वारा किया जाता हैं।

प्रश्नलग्नात् समारभ्य भावान् सर्वान् विचारयेत्।

तत्र यत्फलमुद्दिष्टं तत्सत्यं नात्र संशयः॥

मुहूर्तचिन्तामणि- आचार्य राम दैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में प्रश्नविचार के बारे में वर्णन कर प्रश्नविचार को मुहूर्त से जोड कर प्रश्नलग्न का विचार किया हैं| तथा प्रश्नकालीन लग्न से कार्य की सिद्धि भी शीघ्र होती हैं| का सूचक माना गया है—

प्रश्नकाले स्थितो लग्नः,कार्यसिद्धेः प्रकाशकः। शुभयुक्ते शुभे दृष्टे,सिद्धिर्भवति निश्चितम्॥

जातकपारिजात – ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थ जातकपारिजात को मुख्य रूप से जातक ग्रन्थ के नाम से जाना जाता हैं, इसके अनन्तर भी अन्य विषयों का उल्लेख जैसे प्रश्नविचार,प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का समाधान भी इस ग्रन्थ में प्राप्त होता हैं| इसमें लग्न और चन्द्रमा से शीघ्र फल बताने का वर्णन किया गया हैं|

लग्नाच्चन्द्राच्च विज्ञेयं,प्रश्नकार्यस्य निर्णयम्। बलयोः शुभसंयोगे,कार्यसिद्धिर्न संशयः॥

प्रश्नलग्न,प्रश्नकर्ता,चन्द्रमा - प्रश्नकर्ता का मन,भाव -प्रश्न का विषय इन मुख्य विषयों को महत्वपूर्ण माना हैं|यदि लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा बलवान हों तो प्रश्न का फलादेश शुभ होता हैं।

लग्नं च चन्द्रमं चैव यो जानाति स तत्त्ववित्। प्रश्नस्य फलमाख्यातुं न स कश्चित् विमुह्यति॥

4.7 प्रश्नलग्न द्वारा विवाह,मूक,एवं संतान,विचार

अब यहाँ पर मूकप्रश्न का विचार किया जा रहा हैं| कोए व्यक्ति मूक है तो उसके प्रश्नों को कैसे समझ सके उसके लिए ज्योतिषशास्त्र में प्रश्नविचार का मूल आधार प्रश्नलग्न माना गया हैं। प्रश्नकर्ता प्रश्न को संकेत में बताकर प्रश्नकालीन लग्न और ग्रहस्थिति से उसके मन में स्थित प्रश्नों के बारे में जाना जा सकता हैं।

प्रश्नकाले स्थितो लग्नः,प्रश्नकर्तुः स्वरूपकः।चन्द्रस्तु मनसो ज्ञाता,भावाः प्रश्नस्य सूचकाः॥

1.मूक प्रश्नविचार- जब प्रश्नकर्ता बिना कुछ कहे अपने मन में प्रश्न लेकर के ज्योतिषी के पास आकर मोंन रहता है तो उसे मूक प्रश्न कहा जाता हैं। जब ऐसी स्थिति मै लग्न और चन्द्रमा के द्वारा मौन प्रश्न का विचार किया जाता हैं|क्योंकि चन्द्र को वाणी का कारक ग्रह भी माना जाता हैं।

मौनं प्रश्नस्य नाशाय,न भवेद् ग्रहदर्शनात्।लग्नचन्द्रबलादेव,प्रश्नो वाच्यः प्रयत्नतः॥

मूकप्रश्न विचार के समय प्रश्नकालीन लग्नबल,लग्नेश की स्थितिचन्द्रमा की युति एवं दृष्टि चन्द्रमा का नक्षत्र इन सभी ग्रहों का विचार करना चाहिए|यदि प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो उस समय लग्न और चन्द्रमा शुभत्व हों तो मूकप्रश्न का फलादेश श्रेष्ठतम होता हैं।

प्रश्नलग्न द्वारा विवाह-विचार- यदि किसी व्यक्ति की कुंडली न हो उस व्यक्ति को विवाह के बारे में जानना हो तो उसे प्रश्नलग्न के माध्यम से कुंडली निर्माण कर विवाह प्रश्न में सप्तम भाव से विचार करना चाहिए|प्रश्नलग्न से विवाह का विचार करते समय लग्न, सप्तमभाव, सप्तमेश, शुक्र और चन्द्र के द्वारा विधि पूर्वक विचार करना चाहिए|

सप्तमं विवाहस्थानं,तद्भावं सम्यगालिखेत्।
शुभयुक्ते शुभदृष्टे,विवाहः शीघ्रसंभवः॥

प्रश्नलग्न सप्तम शुभ ग्रहों से युक्त हो सप्तमेश केन्द्र या त्रिकोण मेंशुक्र बलवान होकर पापग्रहों से युक्त हों, चन्द्रमा सप्तम या द्वितीय से सम्बन्धित हो तो विवाह योग शीघ्र बनता हैं|यदि सप्तम भाव पर शनि, मंगल, राहु सप्तमेश अष्टम या द्वादश में शुक्र नीच या अस्त होकर बैठे हो तो विवाह में विलम्ब होता हैं|

शुक्रे बलवति शुभे च,चन्द्रे सौम्यसमन्विते। विवाहः सिद्धिमाप्नोति,नात्र कार्यो विचारणः॥

प्रश्नलग्न द्वारा सन्तान-विचार- प्रश्नकुंडली में संतान होगी या नही इस प्रश्न का विचार प्रश्न कुंडली के मध्यम से किया जाता हैं| ज्योतिष शास्त्र में पंचम भाव से ही मुख्यत:सन्तान सम्बन्धी

विषयों का विचार किया जाता हैं। उसी के आधार पर प्रश्नलग्न के माध्यम से पंचम भाव में पंचमेश, गुरु और चन्द्रमा के द्वारा संतान का विचार करने का आदेश शास्त्र देता हैं। **पंचमं सन्ततिस्थानं गुरुः पुत्रप्रदायकः।चन्द्रयुक्ते शुभे दृष्टे,सन्तानं लभते नरः॥**

प्रश्न लग्न में संतान योग कैसे बने उसका भी विचार किया जा रहा हैं।

यदि जातक की प्रश्न कुंडली में पंचम भाव शुभ ग्रह युक्त हो,पंचमेश केन्द्र या त्रिकोण में गया हो, गुरु बलवान होकर केन्द्र में बैठा हो,चन्द्रमा का सम्बन्ध पंचम या नवम भाव से हो तो संतान योग शीघ्र बनता हैं।

गुरौ बलवति युक्ते,पंचमे शुभसंस्थिते। सन्तानप्राप्तिरवश्या,प्रश्नलग्ने विनिश्चिता॥

अब प्रश्न कुंडली के बारे में सन्तान बाधा किस प्रकार होता हैं? इसका विचार किया जा रहा हैं। यदि प्रश्नलग्न में पंचम भाव पर पाप ग्रह की दृष्टि हो,पंचमेश षष्ठ, अष्टम या द्वादश में गया हो,गुरु ग्रह नीच या अस्त हो तो इस स्थिति में संतान बाधा योग बनता हैं।

पंचमेशगुरुचन्द्रा,यदा त्रीणि दुर्बलाः।
तदैव सन्ततिनाशो,नान्यथा कथ्यते बुधैः॥

इन सभी प्रश्नों के विचार करने के अनन्तर यह ज्ञात होता है कि ज्योतिष शास्त्र के अंतर्गत प्रश्न शास्त्र का मनुष्य के जीवन में सत्मार्ग की और चलने के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जो समय समय पर सभी को सतर्क करते रहता हैं। यहाँ पर हम मूकप्रश्न,विवाह,संतान इत्यादि का योग प्रश्नकुंडली के माध्यम से उदाहरण के रूप में दे रहे हैं|यदि प्रश्न करता मूक है तो उसका ज्ञान प्रश्नकुंडली के माध्यम किया जाता हैं। जैसे कर्क लग्न की कुंडली में लग्नेश चन्द्रमा षष्ठ भाव में हो तो,चन्द्रमा शनि ग्रह से दृष्ट हो तो,सप्तम भाव निर्बल,पंचम भाव शुभ ग्रह युक्त चन्द्रमा षष्ठ भाव में शनि की दृष्टि हो, पंचम भाव बलवान हो तो इस स्थिति में संतान तो होगी पर विलम्ब होगा।

विवाहयोग - के बारे में इस कुंडली के माध्यम से विचार किया जा रहा हैं। प्रश्नकुंडली तुला लग्न कि है तो लग्नेश शुक्र स्वराशि में स्थित हो सप्तम भाव में मेष, गुरु की दृष्टि हो,सप्तमेश मंगल त्रिकोण भाव में बैठा हो चन्द्रमा सप्तम भाव में हो,शुक्र ग्रह बलवान होकर सप्तम भाव में हो सप्तमेश त्रिकोण में तथा सप्तम भाव पर गुरु ग्रह की दृष्टि हो तो इस स्थिति में विवाह योग बनता हैं।

शुक्रे बलवति लग्ने,सप्तमे शुभदर्शने।

अल्पकालेन विवाहः,प्रश्नलग्ने विनिश्चितः॥

संतानयोग- जन्मकुंडली के माध्यम से पंचम भाव को संतान भाव कहा जाता हैं। जो जातक सन्तान से सम्बन्धित प्रश्न करता है उसका उत्तर प्रश्नकुंडली के माध्यम दिया जाता हैं। यदि प्रश्नलग्न में पंचमेश : गुरु शुभ स्थानों मै केन्द्र,त्रिकोण,में बैठा हो तो पुत्र योग बनता हैं।

पंचमं सन्ततिस्थानं,गुरुः पुत्रप्रदायकः।
चन्द्रे शुभे बलयुक्ते,सन्तानं लभते नरः॥

यदि किसी जातक का प्रश्नलग्न मीन हो,लग्नेश गुरु केन्द्र, चतुर्थ भाव में, बलवान होकर बैठा हो,पंचमेश कर्क स्वराशि में हो, पंचमेश चन्द्रमा स्वराशि तथा त्रिकोण भाव में,गुरु ग्रह पंचम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो,चन्द्र ग्रह शुभ नक्षत्र में हो तो संतान योग बता हैं।

पंचमेशे स्वगेहे च गुरुदृष्टिसमन्विते। प्रश्नलग्ने विनिश्चित्य सन्तानप्राप्तिरुच्यते॥

4.8 सारांश

प्रश्नाक्षर सिद्धांत ,प्रश्नलग्नतथा प्रश्न विचार के बारे मै आप सभी ने अध्ययन कर लिया होगा| इस प्रश्न सिद्धांत नामक इकाई में ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जातक के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता हैं। जो प्रश्न करता जातक है, वह कोन सा प्रश्न कर रहा होगा इन सभी का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के अंतर्गत प्रश्न शास्त्र के द्वारा किया जाता हैं। यह निश्चित नही है की प्रश्न करता के पास पहले से ही कोई जन्म समय होगा वह प्रश्न करता बिना समय के अपने भविष्य के बारे मै जानना चाहता है तो उसका विचार प्रश्न शास्त्र के अनुसार किया जाता हैं। प्रश्न लग्न विचार कैसे हो इसके लिए प्रश्न करने से पूर्व समय,स्थान के आधार पर ही प्रश्न का ज्ञान किया जाता हैं। आज के समय में अधिकाँश लोगो के पास अपना समय निश्चित नही होता है जिससे की उसका फलादेश सही हो सके इन सभी समस्याओ को दूर करने के लिए प्रश्न विचार तथा प्रश्न कुंडली के आधार पर प्रश्न कर्ता के समस्याओ का समाधान किया जाता हैं। इस इकाई में विवाह प्रश्न,संतान विचार ,मूक विचार , इन सभी विषयों का विचार किया गया हैं।

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

1. प्रश्नाक्षर सिद्धांत – प्रश्नकाल आधारित फलादेश।
2. प्रश्न शास्त्र – प्रश्नकुंडली से फलज्ञान।
3. प्रश्नलग्न – प्रश्न समय का लग्न।

4. प्रश्नकुंडली – प्रश्नकालीन कुंडली।
5. प्रश्न विचार – प्रश्नफल निर्धारण।
6. प्रश्नकर्ता – प्रश्न पूछने वाला।
7. चन्द्रलग्न – प्रश्नकालीन चन्द्र राशि।
8. लग्नेश – लग्न का स्वामी ग्रह।
9. प्रश्नकाल – प्रश्न करने का समय।
10. प्रश्नफल – प्रश्न का परिणाम।
11. मूक प्रश्न मौन प्रश्न।
12. विवाह प्रश्न – विवाह संबंधी प्रश्न।
13. संतान प्रश्न – संतान संबंधी प्रश्न।
14. प्रश्नतंत्र – प्रश्नफल पद्धति।
15. प्रश्नज्ञान – प्रश्नफल विद्या।
16. प्रश्नदीपिका – प्रश्नग्रंथ।
17. प्रश्नमार्ग – प्रश्नलग्न ग्रंथ।
18. प्रश्नकल्पद्रुम – प्रश्नफल ग्रंथ।
19. शुभ ग्रह – शुभ फलदायक ग्रह।
20. पाप ग्रह – अशुभ फलदायक ग्रह।

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्रश्नाक्षर सिद्धांत किसे कहते हैं?
2. प्रश्न शास्त्र का मुख्य उद्देश्य क्या है?
3. प्रश्नलग्न से क्या तात्पर्य है?
4. प्रश्नकुंडली किस आधार पर बनाई जाती है?
5. प्रश्नकाल का क्या अर्थ है?
6. प्रश्नकर्ता किसे कहते हैं?
7. प्रश्न विचार से क्या अभिप्राय है?
8. चन्द्रलग्न क्या होता है?
9. प्रश्नविचार में चन्द्रमा का क्या महत्व है?
10. लग्नेश की भूमिका प्रश्नफल में क्या होती है?
11. मूक प्रश्न क्या कहलाता है?
12. मूक प्रश्न में किन ग्रहों का विशेष विचार किया जाता है?

13. विवाह प्रश्न में किस भाव का विचार किया जाता है?
14. संतान प्रश्न में कौन-सा भाव प्रमुख माना जाता है?
15. प्रश्नमार्ग ग्रंथ का संबंध किस विषय से है?
16. प्रश्नदीपिका ग्रंथ में किस प्रकार के प्रश्नों का वर्णन है?
17. प्रश्नतंत्र ग्रंथ के रचयिता कौन हैं?
18. शुभ ग्रह प्रश्नफल को कैसे प्रभावित करते हैं?
19. पाप ग्रहों का प्रश्नफल पर क्या प्रभाव पड़ता है?
20. प्रश्नलग्न को प्रश्नफल का आधार क्यों माना जाता है

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रश्नकाल आधारित तत्काल फलादेश विधा।
2. जन्मकुंडली बिना प्रश्नफल बताना।
3. प्रश्न समय का लग्न।
4. प्रश्न समय, स्थान व ग्रहस्थिति से।
5. प्रश्न पूछने का समय।
6. प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति।
7. प्रश्नकुंडली से फल निर्धारण।
8. प्रश्नकाल की चन्द्र राशि।
9. मन व मानसिक स्थिति दर्शाता है।
10. प्रश्नकर्ता की स्थिति दर्शाता है।
11. मौन होकर किया गया प्रश्न।
12. लग्न, लग्नेश, चन्द्रमा।
13. सप्तम भाव।
14. पंचम भाव।
15. प्रश्नलग्न विचार से।
16. प्रश्नफल वर्णन से।
17. नीलकण्ठ दैवज्ञ।
18. शुभ फल प्रदान करते हैं।
19. बाधा व अशुभ फल देते हैं।
20. क्योंकि वही फल निर्धारक है।

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रश्न मार्ग -	नारायण भट्ट	प्रश्नरत्न
प्रश्नचन्द्रप्रकाश -		प्रश्नज्योतिष
प्रश्न तंत्र-	आचार्य नीलकण्ठ दैवज्ञ	प्रश्नप्रदीप
प्रश्न ज्ञान-	आचार्य *गोविन्द भट्ट*	प्रश्नार्णव
प्रश्न दीपिका-		प्रश्नभास्कर
मुहूर्तचिन्तामणि-	आचार्य राम दैवज्ञ	प्रश्नतत्त्व
प्रश्नचूड़ामणि		
प्रश्नसार		
प्रश्न कल्पद्रुम		

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रश्न लग्न एवं प्रश्न विचार का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

2.चन्द्र लग्न से प्रश्न विचार का विस्तृत उल्लेख कीजिये।

3.मूकप्रश्न विचार,विवाह प्रश्न विचार, का उदहारण सहित वर्णन कीजिये।

4. प्रश्न मार्ग तथा प्रश्नतंत्र के द्वारा संतानविचार पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 5 स्वर सिद्धान्त

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 स्वर सिद्धांत का परिचय एवं स्वरुप

5.4 ज्योतिष शास्त्र में स्वर विज्ञान

5.5 सारांश

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! प्रस्तुत पाठ्यक्रम बी.ए.के.ए (एन) २२३ पाठ्यक्रम से सम्बंधित है? इस इकाई का शीर्षक "स्वर सिद्धांत हैं"इस इकाई मैं हम स्वर सिद्धांत के बारे मैं जानने का प्रयास करेंगे। प्राचीनकाल से स्वर विज्ञान का तथा स्वर शास्त्र का वर्णन शास्त्रीय ग्रंथो मै प्राप्त होता रहा हैं l स्वर शास्त्र को सबसे पहले भगवान शंकर के माध्यम से पार्वती जी को सुनाया गया जिसका वर्णन शिव स्वरोदय नामक ग्रन्थ मै प्राप्त होता हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार स्वर सिद्धांत का संबंध केवल संगीत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन,के श्वास-प्रक्रिया और ब्रह्मांडीय ऊर्जा के गहराई से जुड़ा हुआ शास्त्र माना जाता हैं। इस सिद्धांत में "स्वर" को एक प्रकार की सूक्ष्म शक्ति या कंपन के रूप में देखा जाता हैं, ज्योतिष में यह माना जाता है कि प्रत्येक स्वर का संबंध किसी विशेष ग्रह से होता हैं। जैसे सा का सूर्य से, रे का चंद्रमा से, ग का मंगल से, म का बुध से, प का बृहस्पति से, ध का शुक्र से और नि का शनि से संबंध बताया गया है। इस प्रकार, स्वरों के माध्यम से ग्रहों की ऊर्जा को संतुलित किया जा सकता है। स्वर सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण भाग "स्वर योग" है, जिसमें श्वास के प्रवाह का अध्ययन किया जाता हैं। मानव शरीर में मुख्य रूप से तीन नाड़ियाँ विद्यमान हैं इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। जब श्वास बाईं नासिका से प्रवाहित होती है, तो उसे "चंद्र स्वर" कहा जाता है, जो शांति, स्थिरता और मानसिक कार्यों के लिए अनुकूल माना गया हैं। इसके विपरीत, जब श्वास दाहिनी नासिका से चलती है, तो वह "सूर्य स्वर" कहलाता है, जो ऊर्जा, साहस और शारीरिक कार्यों के लिए शुभत्व प्रधान करता हैं। सुषुम्ना नाड़ी का सक्रिय होना विशेष आध्यात्मिक अवस्था का प्रतीक भी माना जाता रहा हैं। ज्योतिषीय मान्यता के अनुसार, यदि व्यक्ति अपने कार्यों को उचित स्वर के अनुसार करता है, तो उसे सफलता और संतुलन की प्राप्ति होती हैं।

5.2 उद्देश्य

- ❖ स्वर सिद्धांत के स्वरूप को जान सकेंगें।
- ❖ ज्योतिष शास्त्र के अनुसार स्वर सिद्धांत का विस्तृत अध्ययन कर पायेगें।
- ❖ स्वर सिद्धांत के शास्त्रीय पक्ष से अवगत हो सकेगें।
- ❖ मानव जीवन मै स्वर सिद्धांत को समझनें का प्रयास करेंगें ।

5.3 स्वरशास्त्र का परिचय एवं स्वरुप

ज्योतिष शास्त्र के अंतर्गत फलित ज्योतिष में स्वरों के अनुसार फलादेश की क्या प्रक्रिया है इसके पूर्व ज्योतिष शास्त्र के इस अंग के विकास क्रम की रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक माना जाता हैं। वेदों में प्राचीन काल से उदात्त अनुदात और स्वरित जैसे उच्चारण भेदों से स्वरों के भेद की विवेचना मिलती हैं जो लोकिक संस्कृत के परिनिष्ठित स्वरूप आने के पूर्व पाणिनि के व्याकरण में वर्णित १४ माहेश्वर सूत्रों में अच् तक मूल ६ स्वरों को स्वीकार किया हैं। पतञ्जलि के महाभाष्य में "ऋकारेऽपि इकारो गृहीतः" मान्यता के अनुसार इन मूल स्वरों की संख्या पाँच (अ, इ२ उ३, ए ओ, स्थिर होती है। ज्योतिष, योग शास्त्र और तंत्र शास्त्र के अत्यधिक विकास के साथ ही इन स्वरों की अधिकाधिक मीमांसा मिलती हैं। स्वर शास्त्रीय फलादेश की परम्परा का उद्भव और उनका व्यवस्थित रूप ब्रह्मयामल, रुद्रयामल जैसे सात यामल ग्रन्थों में मिलता हैं। जयार्णव,तथा नरपतिजयचर्या ग्रन्थ से कलियुग में (स्वरोदय स्वर शास्त्रीय फलित परम्परा का विकास लक्षित किया गया है। इन स्वर शास्त्रीय पद्धति से फलादेश में मूल पाँच स्वरों को ही आठ स्वर चक्रों और कालों से सम्बन्धित कर किसी विशेष व्यक्ति के शुभाशुभ फल का आदेश करते हैं। स्वर शास्त्रीय फलादेश पद्धति में मूलतः पाँच स्वरों को फलादेश का मूलधार मानते हैं व्यक्ति विशेष के नाम स्वर या जन्म राशि नाम स्वर के अनुरूप पूरे जीवन को स्वरानुरूप १- बाल, २- कुमार, ३- युवा, ४-वृद्ध, ५- मृत्यु की ये पाँच अवस्थाएँ कल्पित करते हैं। जिनका आठ कालों में मान्य अवधि तक भोगकाल का निर्धारण किया गया है। इस प्रकार की विवेचना में एक बात यह ध्यान देने की है कि इन पाँच स्वरों में व्यक्ति विशेष के नाम या जन्म राशि, के अनुसार जो स्वर प्रथम होगा उसकी दशा के बिचार में उस स्वर को प्रथम मान लेंगे। जैसे मात्रा स्वर की दृष्टि से अनिल नाम वाले व्यक्ति के के लिए १-अ (वाल) २-३ (कुमार) ३-उ (युवा) ४-ए (वृद्ध) ५-मो मृत्यु स्वर होगा किन्तु मुरारी नाम वाले व्यक्ति के लिए १--उ (वाल) २-ए (कुमार) ओ ३- (युवा) ४-अ (वृद्ध) और ५-इ (मृत्यु) स्वर होगा। इसी प्रकार मोहन के लिए १-श्रो (वाल) २-अ (कुमार) ३-इ (युवा) ४--उ (वृद्ध ५ ए (मृत्यु) स्वर होता। इस पद्धति में फलादेश में सहायक अनेक स्वर चक्रों का वर्णन मिलता है। नरपतिजयचर्या में २० स्वर चक्रों का वर्णन मिलता है किन्तु इन स्वर चक्रों की संख्या मूलतः आठ ही स्वीकार की गई है जो निम्नलिखित रूप में होते हैं।

१. मात्रा स्वर चक्र,२. वर्ण स्वर चक्र,३. ग्रह स्वर चक्र,४. जीव स्वर चक्र,५. राशि स्वर चक्र,६. नक्षत्र स्वर चक

६. पिण्ड स्वर चक्र,८. योग स्वर चक्र

इन आठ स्वर चक्र के प्रत्येक जातक के नाम से स्वर शास्त्रीय पद्धति से, इन आठ स्वरों का ज्ञान करते हुए, घण्टा, दिन, पक्ष, मास ऋतु अयन, वर्ष, इनके अनुरूप ही किसी व्यक्ति विशेष के जीव, वर्ण, मात्रा राशि, ग्रह योग, पिण्ड की मीमांसा से फलादेश करते हैं। इन स्वर चकों के अतिरिक्त मनुष्यों के शुभाशुभ भविष्य विचार के लिए अनेकानेक चक्रों का वर्णन प्राप्त होता हैं।

5.4 ज्योतिष शास्त्र मै स्वर विज्ञान

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार स्वर शास्त्र या स्वर विज्ञान एक अत्यंत सूक्ष्म और उपयोगी विद्या है, जो मनुष्य की श्वास, नाड़ियों, समय और ब्रह्मांडीय ऊर्जा के बीच संबंध को बताती हैं। यह "स्वर" का अर्थ संगीत के सुरों से नहीं, बल्कि नासिकाओं से चलने वाली श्वास के प्रवाह से होता हैं। ज्योतिष तथा योग शास्त्र के अनुसार भी स्वरों के बारे मै विस्तार पूर्वक उल्लेख मिलता है कि हमारी श्वास हर समय एक जैसी नहीं रहती, बल्कि कुछ समय बाईं नासिका (इड़ा) और कुछ समय दाहिनी नासिका (पिंगला) से श्वास प्रक्रिया अधिक चलती है, जो स्वर कहलाते हैं। स्वरों के मुख्य प्रकार इस प्रकार दिया जा रहा हैं

चंद्र स्वर (इड़ा नाड़ी) – जब श्वास बाईं नासिका से चलती है, तो यह चंद्र स्वर होता है। यह शीतल, शांत और मानसिक कार्यों के लिए उपयुक्त माना जाता है। इस समय अध्ययन, ध्यान, पूजा, लेखन कार्य ,कला और रचनात्मक कार्य करना शुभ माना जाता हैं। चन्द्र स्वर का सम्बन्ध चन्द्र ग्रह से माना गया हैं जो जल तत्व और चंद्र ग्रह से सम्बंधित माना जाता हैं।

सूर्य स्वर (पिंगला नाड़ी) – जब श्वास दाहिनी नासिका से चलती है, तो इसे सूर्य स्वर कहलाता हैं हैं। यह उष्ण, सक्रिय और शक्ति प्रदान करने वाला होता है। सूर्य ग्रह दशा मै शारीरिक श्रम और साहसिक कार्य करना शुभ माना जाता है जो अग्नि तत्व और सूर्य ग्रह से जुड़ा होता है।

सुषुम्ना स्वर जब दोनों नासिकाओं से समान रूप से श्वास की प्रक्रिया चलती है, तो यह सुषुम्ना स्वर कहलाता हैं। समय और स्वर का संबंध स्वर शास्त्र के अनुसार, लगभग हर 60 से 90 मिनट में स्वर बदलता रहता हैं। पंचतत्व और स्वर स्वरों का संबंध पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों से भी माना जाता हैं। श्वास की गति, ताप और दिशा से इन तत्वों का प्रभाव जाना जाता है, जिससे शुभ-अशुभ फलों का ज्ञान किया जाता हैं।स्वर शास्त्र का उपयोग यात्रा शुरू करने, महत्वपूर्ण निर्णय लेने, तक किया जाता हैं। यह यह भी विचार किया जाता है कि ज्योतिष के अनुसार स्वर शास्त्र केवल श्वास का ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन को संतुलित, सफल और आध्यात्मिक रूप से उन्नत

बनाने का एक महत्वपूर्ण मार्ग भी हैं ।"पंचस्वर" पर आधारित ग्रंथों में स्वर का वर्णन अपेक्षाकृत सरल और व्यावहारिक रूप में प्राप्त होता हैं। इसके अनुसार स्वर को ध्वनि का वह मधुर रूप माना गया है, जो न केवल संगीत में उपयोगी है, बल्कि शरीर और प्रकृति के संतुलन से भी जुड़ा रहता हैं। "पंचस्वर" नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें मुख्य रूप से पाँच प्रमुख स्वरों या ध्वनि तत्वों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिन्हें आधार मानकर अन्य स्वरों की उत्पत्ति होती हैं।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ख्यात ये ब्रह्मयामले । मात्रादिभेदभिन्नानां स्वराणां षोडशोदयान्

मातृकायां पराप्रोक्ताः स्वराः षोडशसंख्यया । आ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠवलू ए ऐ ओ औ अं अः

तेषां द्वावन्तिमौ (अं अः) त्याज्यौ-चत्वारश्च (ऋ ॠल लू) नपुंसकौ

शेषा दश स्वरास्तेषु स्यादेकैको द्विके द्विके । ज्ञेयास्तत्र स्वरा आद्या-ह्रस्वाः अ इ उ ए ओ पञ्च स्वरोदये

लाभालाभं सुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा । जयः पराजयश्चेति सर्वं ज्ञेयं स्वरोदये

स्वरादिमात्रिकोच्चारो मातृव्याप्तं जगत्त्रयम् । तस्मात्स्वरोद्भवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्

अकाराद्याः स्वराः पञ्च ब्रह्माद्याः पञ्चदेवताः । निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च इच्छाद्याः शक्तिपञ्चकम्

ज्योतिष शास्त्र मै सोलह स्वरों का वर्णन विशेष रूप से प्राप्त होता हैं जो इस प्रकार हैं, (अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः) ये स्वर हैं। इनमें से अन्त के अं अः को छोड़ देना चाहिए। ऋ ॠल लू ये नपुंसक स्वर होते हैं। शेष अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ में दो-दो स्वरों का एक ही स्वर समझना चाहिए जैसे अ आ = अ, इस तरह पांच स्वर अ इ उ ए ओ, स्वर मुख्य माने जाते हैं। चराचर पदार्थों के नामोच्च्चारण में अकारादि मातृका (मात्रा) के बिना वों का उच्चारण सम्भव नहीं क्योंकि मातृका से ही तीनों जगत व्याप्त हैं। किसी भी जातक का शुभाशुभ फलकथन में स्वरों की ही प्रधानता रहती है। अकारादि 'अ इ उ ए ओ' स्वरों के क्रमशः 'ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-सूर्य और चन्द्रमा' ये क्रमशः स्वामी होते हैं। अकारादि स्वरों के उदयकाल में प्रश्नकर्ता को इन्हीं देवताओं का स्मरण करके कार्य को करना चाहिए। स्वरों के उदयकाल में निवृत्ति आदि क्रमशः पांच कलाएँ होती हैं। जैसे 'निवृत्ति-प्रतिष्ठा-विद्या-शान्ति और अतिशान्ति' इन्हीं कलाओं के उदयकाल में इच्छादि पाञ्च शक्तियाँ होती है, जो क्रमशः 'इच्छा-ज्ञान-प्रभा-श्रद्धा और मेघा' के नाम से जानी जाती हैं।

मायाद्याश्चक्रभेदाश्च धराद्यं भूतपञ्चकम् ।

शब्दादिविषयास्ते च कामबाणा इतीरिताः ॥

पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ।

स्वरभेदस्थितं ज्ञानं ज्ञायते गुरुतः सदा ॥

अकाराद्याः स्वराः पञ्च तेषामष्टविधास्त्वमी ।

मात्रा वर्णों ग्रहो जीवो राशिर्भ पिण्डयोगकौ ॥

प्रसुप्तो बुध्यते येन येनागच्छति शब्दितः ।

तत्र नामाद्यवर्णे या मात्रा मात्रास्वरः स हि ॥

वर्णस्वर

कादिहान्तं लिखेद्वर्णान् स्वराधो ङञणोज्झितान् । ककारादिहकारान्ताल्लिखेद्वर्णान्स्वराधो ङञणोज्झितान्

तिर्यक्पंक्तिक्रमेणैव पश्चत्रिंशत्प्रकोष्ठके॥नरनामादिमो वर्णो यस्मात्स्वरादधः स्थितिः। स स्वरस्तस्य वर्णस्य वर्णस्वर इहोच्य न प्रोक्ता ङञणा वर्णा नामादौ सन्ति ते नहि चेद्भवन्ति तदा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम्॥

यदि नाम्नि भवेद्वर्णः संयुक्ताक्षरलक्षणः ।

ग्राह्यस्तदादिमो वर्ण इत्युक्तं ब्रह्मयामले ॥

जीवस्वर

चोडाक्षरोऽवर्गः स्यात्कादिवर्णास्तु पञ्चकम् ।

चतुर्वी यशौ वर्गो संख्या वर्षेषु कीर्तिताः नाग्निवर्णस्वरा प्राह्या वर्गाणां वर्णसंख्यया। पिण्डिताः पञ्चभिर्भक्ताः शेषं जीवस्वरं विदुः। एकसयविनाकारीपरि एकारस्यैकादश। वकारान्तर्भुताकारस्यैकासंख्या वा जवानी पोशाक्षरेति। अवर्गाद्यष्टवर्माणामिति। देवदत्तनामतः उदाहरणम्। कारान्तर्भुताकारस्यैकसंख्या १ दकारस्य त्रिसंख्या ३ संयोगितकार द्विख्या २अकारस्यापि एकसंख्या १ एवं षडविंशति । पञ्चमक्तेशेषमेकम् १ तेन टेक्टस्य जीवस्वरः अकारः।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जीवस्वर कैसे जाना जाय इसकी विधि इस प्रकार हैं। अपर्यन्त १६ अक्षर होते हैं। कवर्ग से पवर्ग तक प्रत्येक में ५०५ अक्षर होते हैं, तथा य वर्ग और श वर्ग ४-४ अक्षरों के होते हैं। नाम में जितने वर्ण और स्वर है उनका योगकर योग में ५ से भाग देने से जो संख्या शेष रहे उस संख्या के तुल्य उस पुरुष का जीवस्वर होता है।जैसे देवदत्त के नाम में द-ए-व-अ-द-अ-त्-त-अ इतने वर्ण और स्वर है। इनकी संख्या क्रमशः ३+११+४+१+-३+१+१+१+१ हुई, इनका योग २६ हुआ। याज से भाग देने से शेष १ बचा; अतः देवदत्त का अकार जीवस्वर हुआ। यहाँ वाणों की संख्या सारणि के अनुसार ही लेनी चाहिए। सारणि के अनुसार चिदानन्द के नाम की संख्या २४ हुई, इसमें पाञ्च से भाग देने पर ४ बचा; अतः चिदानन्द का जीवस्वा ए हुआ। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिए । ज्योतिष शास्त्र मै गणित शास्त्र के द्वारा स्वरों के माध्यम से फल समझना चाहिए।

योगस्वर

मात्रादिस्वरभेदेन स्वरानुत्पाद्य नामतः।योगे शरहते शेषे योगस्वर इहोच्यते ॥

जयलक्ष्मी मात्रादिस्वरभेदेति । अचोदाहरणम्। देवदत्तस्थ नामजा मात्रादयः स्वराः । मात्रास्वरः एकारस्तस्य संख्या ४ वर्णस्वर ओकारस्तस्य संख्या पञ्च ५ ग्रहस्वर उकारस्तस्य संख्या त्रयः ३ जीवस्वरोऽकारस्तस्य संख्यैका १ राशिस्वर ओकारस्तस्य संध्या पञ्च भस्वरोऽकारस्तस्य संख्यैका १ पिण्डस्वर एकारस्तस्य संख्या चतुष्टयम् ४ एवं देवदत्तस्य नामजा मात्रादिपिण्डान्तस्वराणां संख्यायोगे जातास्त्रयोविंशतिः २३ अस्माद्राशेःशरः ५ शेषे सति शेषं त्रयम् ३ अतो देवदत्तस्य योगस्बर उकारः संपन्नः । इत्येवं नामतो नैसर्गिकान्यष्टौ मात्रादिस्वरचक्राणि समाप्तानि ॥यहा योगस्वर का ज्ञान करके योगस्वर को जानना चाहिए जो इस प्रकार है- किसी जातक के नाम से प्राप्त मात्रादि (मात्रा-वर्ण-ग्रह-जीव-राशि-नक्षत्र-पिण्ड) स्वरों के अंकों के योग में ५ से भाग देने से जो शेष बचे उसी के तुल्य योगस्वर होता है। जैसे 'देवदत्त' में क्रम से मात्रास्वर की ४, वर्णस्वर की ५, ग्रहस्वर की ३, जीवस्वर की १, राशिस्वर की ५, नक्षत्रस्वर की १, पिण्डस्वर की ४ इन सबका योग २३ हुआ। इसमें ५ से भाग देने पर ३ शेष रहा देवदत्त का तीसरा (उकार) योग स्वर होता हैं ।

5.5 सारांश

प्राचीन भारतीय संस्कृति मैं स्वरों के विषय मैं विस्तृत उल्लेख मिलता है, जो कि स्वरों का ज्ञान कराता हैं। यहां पर इस विषय को स्मरण कर अनेक प्रकार के स्वरों का ज्ञान होता रहता हैं जो कि स्वर शास्त्र को सीमित न कर विस्तृत रूप मैं दिखाई देता हैं। इस इकाई मैं हमने ज्योतिष शास्त्र के

अनुसार स्वरों को जानने का प्रयास किया हैं कि स्वरों का संबंध किससे हैं तथा स्वरों का ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जातक पर क्या प्रभाव पड़ता हैं इसका भी विचार किया जाता रहा हैं। वेदों से ही स्वर का प्रचलन रहा हैं जो कि मंत्रों मैं सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। कालान्तर मैं यह स्वर शास्त्र अलग अलग विषयों मैं प्रणीत होता गया चाहे वह संगीत शास्त्र हो या ज्योतिष शास्त्र सबका किसी न किसी से संबंध रहा हैं। यहां रह भी विचार करना चाहिए की यह स्वर शास्त्र की उत्पत्ति कहां से हुई थी तो शिव स्वरोदय शिक्षक ग्रंथ को स्वर शास्त्र का विशेष ग्रंथ माना जाता हैं यहां वर्णन किया गया है कि सर्वप्रथम भगवान शिव ने पार्वती को स्वर शास्त्र का ज्ञान दिया वहीं से स्वर शास्त्र आगे बढ़ते गया और अपने स्वरूप को प्राप्त होता गया। कालान्तर मैं यह स्वर शास्त्र आगे बढ़ते बढ़ते ज्योतिष शास्त्र मैं भी जातक के भविष्यफल का स्वरों के माध्यम से ज्ञान किया जाता रहा हैं। यहां पर यह भी विचार किया गया हैं कि किसी न किसी रुप मैं स्वरों का ज्ञान किया गया था। अ, इस, उ, ए, ओ,, इन पांच स्वरों से ज्योतिष शास्त्र मैं फलादेश किया जाता हैं। स्वरशास्त्र का प्राचीन काल से व्यापक स्थान रहा हैं जिसका ज्योतिष शास्त्र मैं मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

1. **स्वर** – श्वास की ध्वनि
2. **स्वर सिद्धांत** – स्वरों का अध्ययन
3. **स्वर शास्त्र** – श्वास का ज्ञान
4. **स्वर विज्ञान** स्वरों का प्रयोग
5. **इड़ा नाड़ी** – बाईं नाड़ी
6. **पिंगला नाड़ी** – दाहिनी नाड़ी
7. **सुषुम्ना नाड़ी** – मध्य नाड़ी
8. **चंद्र स्वर** – बाईं श्वास
9. **सूर्य स्वर** – दाहिनी श्वास
10. **सुषुम्ना स्वर** – दोनों श्वास
11. **पंचस्वर** – पाँच मुख्य स्वर
12. **मात्रा स्वर** – मात्रा आधारित स्वर
13. **वर्ण स्वर** – अक्षर आधारित स्वर
14. **ग्रह स्वर** – ग्रह से जुड़ा स्वर

15. **जीव स्वर** – नाम से निकला स्वर
16. **राशि स्वर** – राशि से स्वर
17. **नक्षत्र स्वर** – नक्षत्र से स्वर
18. **पिण्ड स्वर** – शरीर से स्वर
19. **योग स्वर** – योग से स्वर
20. **स्वर चक्र** – स्वरों का चक्र
21. **फलादेश** – भविष्य कथन
22. **नाड़ी** – ऊर्जा मार्ग
23. **पंचतत्व** – पाँच तत्व
24. **स्वरोदय** – स्वर का उदय
25. **शिव स्वरोदय** – स्वर ग्रंथ के नाम

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. स्वर सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?
2. स्वर शास्त्र का क्या अर्थ है?
3. स्वर विज्ञान का परिचय दीजिए।
4. स्वर शास्त्र का प्राचीन ग्रंथ कौन सा है?
5. चंद्र स्वर क्या है?
6. सूर्य स्वर क्या है?
7. सुषुम्ना स्वर का क्या महत्व है?
8. इड़ा नाड़ी किससे संबंधित है?
9. पिंगला नाड़ी का क्या कार्य है?
10. सुषुम्ना नाड़ी क्या दर्शाती है?
11. पंचस्वर कौन-कौन से हैं?
12. स्वरों का ग्रहों से क्या संबंध है?
13. स्वर चक्र से क्या अभिप्राय है?
14. मात्रा स्वर क्या होता है?
15. वर्ण स्वर कैसे निर्धारित किया जाता है?
16. जीव स्वर क्या है?
17. योग स्वर कैसे ज्ञात किया जाता है?

18. राशि स्वर का क्या महत्व है?
19. नक्षत्र स्वर क्या होता है?
20. पिण्ड स्वर किससे संबंधित है?
21. स्वर शास्त्र में पंचतत्व का क्या स्थान है?
22. स्वरोदय क्या होता है?
23. स्वर के आधार पर फलादेश कैसे किया जाता है?
24. स्वर शास्त्र का मानव जीवन में क्या महत्व है?
25. ज्योतिष शास्त्र में स्वर विज्ञान का उपयोग कैसे किया जाता है?

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वरों के माध्यम से जीवन और श्वास का अध्ययन।
2. श्वास और नाड़ियों का ज्ञान।
3. स्वरों के प्रभाव का व्यावहारिक अध्ययन।
4. प्राचीन ग्रंथ – शिव स्वरोदय।
5. बाईं नासिका से चलने वाली श्वास
6. दाहिनी नासिका से चलने वाली श्वास।
7. आध्यात्मिक अवस्था का संकेत।
8. चंद्र स्वर से संबंधित।
9. सूर्य स्वर से संबंधित।
10. संतुलन और ध्यान की अवस्था।
11. पंचस्वर –अ, इ, उ, ए, ओ।
12. हर स्वर का एक ग्रह से संबंध होता है।
13. स्वरों का विश्लेषण चक्र।
14. मात्रा पर आधारित स्वर।
15. अक्षर के आधार पर स्वर।
16. नाम से प्राप्त स्वर।
17. स्वरों के योग से प्राप्त।
18. राशि से संबंधित स्वर।
19. नक्षत्र से संबंधित स्वर।
20. शरीर से संबंधित स्वर।
21. पाँच तत्वों का आधार।

22. स्वर का परिवर्तन।
23. स्वरों से भविष्य कथन।
24. जीवन में संतुलन व सफलता।
25. निर्णय और कार्य चयन में सहायक होना।

5.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. नरपतिजयचर्या
2. पंचस्वरा
3. शिवस्वरोदय

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वर सिद्धांत का स्वरूप एवं महत्व का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. स्वर शास्त्र का परिचय देते हुए इसके ऐतिहासिक विकास का वर्णन कीजिए।
3. ज्योतिष शास्त्र में स्वर विज्ञान की भूमिका और उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
4. इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का वर्णन करते हुए उनके प्रभाव को समझाइए।
5. पंचस्वर तथा उनके ग्रहों से संबंध का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन कीजिए।

खण्ड -3

वास्तुशास्त्रीय विचार

इकाई -1 वास्तु शास्त्र का स्वरूप, प्रवर्तक एवं आचार्य

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1,2. उद्देश्य

1.3. वास्तु शास्त्र - सामान्य परिचय

1.3.1. वास्तु शास्त्र की परिभाषा व स्वरूप

1.4. वास्तु शास्त्र के प्रवर्तक

1.4.1 वास्तु शास्त्र के प्रमुख आचार्य

1.5. सारांश

1.6. पारिभाषिक शब्दावली

1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.9. सहायक पाठ्य सामग्री

1.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1. प्रस्तावना

" सर्वज्ञानमयो हि सः" अर्थात वेद ही सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान का उद्गम स्थल है। इस सृष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यावधि जितना भी ज्ञान यां विज्ञान हमें इस सम्पूर्ण संसार के किसी भी भूभाग पर दिखाई देता है, उस ज्ञान या विज्ञान के बीज सूक्ष्म रूप में हमें वेद में प्राप्त होते हैं। वेद चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद , अथर्ववेद इन चार वेदों के चार उपवेद हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद , सामवेद का गान्धर्व वेद , अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है और स्थापत्यवेद ही वास्तु शास्त्र का उद्गम स्थल है। इस प्रकार वेद का वास्तु शास्त्र से सीधा- सीधा संबंध है। वास्तुशास्त्र का मूल उद्गम स्थल होने के कारण वास्तु शास्त्र स्वरूप निर्धारण में वेद की प्रमुख भूमिका है। वैदिक काल में उद्भूत इस शास्त्र का उत्तर वैदिक काल और पौराणिक काल में पल्लवन हुआ और आज यह स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इस इकाई में वास्तु शास्त्र के स्वरूप की चर्चा की जाएगी और इस इकाई के अध्ययन से हम वास्तुशास्त्र के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे और जान पायेंगें कि वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य कौन हैं और किन आचार्यों ने इस शास्त्र को पुष्पित और पल्लवित किया।

1.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ बता सकेंगे कि वास्तु किसे कहते हैं
- ❖ समझा सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का इतिहास क्या है।
- ❖ वास्तुशास्त्र के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- ❖ वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों का नाम जान लेंगे।
- ❖ वास्तुशास्त्र की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

1.3. वास्तुशास्त्र : सामान्य परिचय

रोटी, कपडा और मकान मानव की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। मानव सभ्यता के आरम्भ से ही मनुष्य का प्रयास अपनी इन मूलभूत आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिये ही था। आरम्भ में मानव वनों में ही रहता था और प्रकृति से प्राप्त होने वाले विविध पदार्थों के माध्यम से ही वह अपनी

मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करता था । वन में रहकर कन्द मूलादि का भक्षण कर वह अपनी क्षुधा को शान्त करता था । वस्त्र के लिये वह वृक्षों के पत्तों और शाल का उपयोग करता था और निवास के लिये वह वन में प्राकृतिक और कृत्रिम गुफाओं में रहता था । जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होने लगा ।वैसे-वैसे मानव भी विकसित होने लगा और उसकी मूलभूत आवश्यकताओं के स्वरूप में भी अन्तर आने लगा। अब वह भोजन के लिए केवल कन्द-मूल पर निर्भर नहीं था,उसने कृषि कार्य के माध्यम से पृथ्वी से अनेक प्रकार के धान्यों की प्राप्ति करनी शुरू की और अपनी क्षुधा शांति के लिए उसके पास असंख्य खाद्य पदार्थ हो गए। इसी प्रकार वस्त्रों के लिए वह केवल वृक्षों की छाल और पत्तो पर निर्भर नही रहा बल्कि उसने सूत निर्माण के विज्ञान को सीखा और शनैः शनैः कई प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करने लगा। निवास के लिए भी वह केवल वन पर निर्भर नहीं रहा । वन से निकलकर उसने ग्राम और नगर की कल्पना की । वन में रहना उसके लिए कष्टकारी था । वन का जीवन सुविधाजनक नहीं था और उसे हर समय भयंकर जीवों का भय रहता था । वन में शेर, बाघ आदि मांसाहारी पशु अपनी क्षुधा पूर्ति के लिये मानव की जीवन लीला को कभी भी समाप्त कर देते थें । उन जीवों के साथ रहता हुआ मानव भी जंगली प्राणी ही हो गया था, उस समय के मानव को कुछ इतिहासकारों ने असभ्य तक कहा है । परन्तु जैसे ही मानव ने वन के उस भयंकर वातावरण से बाहर निकल कर ग्रामों की कल्पना की ,नगरों की कल्पना की और निवास हेतु भवन का निर्माण किया । वह सभ्य कहलाने लगा । अपने प्रारम्भिक समय में मानव अधिकतर नदियों के किनारे निवास हेतु भवन का निर्माण करने लगा । अपने निवास स्थान के निर्माण में वह प्रकृति का सदुपयोग करने लगा । वह ऐसे भवन का निर्माण करता था ,जहां सूर्य के प्रकाश, वायु और जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की समुचित व्यवस्था हो और उसके द्वारा किये गये भवन के निर्माण से प्रकृति को कोई हानि भी न पहुंचे । इस प्रकार प्रकृति के साथ समन्वय कर भवन का निर्माण होने लगा और यही भारतीय चिन्तन था , यही भारतीय परम्परा थी । परन्तु जैसे-जैसे इस भारतीय चिन्तन पर पाश्चात्य प्रभाव पडने लगा, हम प्रकृति के सहयोगी नहीं, विरोधी हो गयें , हम प्रकृति के रक्षक नहीं, भक्षक बनने लगें । आज हम गगनचुम्बी भवनों का निर्माण भी कर रहे हैं और पृथ्वी को खोदकर बेसमेन्ट आदि का निर्माण भी कर रहे हैं । इन भवनों में सूर्य,वायु,जल आदि प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग न होने के कारण आज के भवनों में निवास करने वाले मानव के जीवन से सुख ,समृद्धि समाप्त हो चुकी है । आज का मानव प्रतिक्षण भौतिक उन्नति के शिखर पर अग्रसर है । इतने भव्य भवनों का निर्माण मानव इसलिये कर रहा है , तांकि इन भव्य भवनों में रहकर उसका जीवन सुरक्षा और समृद्धि से युक्त हो सके । आधुनिक युग के भव्य भवन अत्यन्त सुविधाजनक

और सुरक्षित हैं ,इन भवनों में मानव के जीवन को सुखमय बनाने के लिये विविध भौतिक संसाधनों का प्रयोग होता है ।इन भौतिक संसाधनों के माध्यम से मानव को शारीरिक दृष्टि से भले ही सुख प्राप्त हो रहा हो , परन्तु वास्तुशास्त्र के नियमों का पालन न होने के कारण उस भवन में रहने वाले लोगों को मानसिक रूप से सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो पाती ।

इतने बडे-बडे बहुमंजिले भवन,जो कि आधुनिक युग की सभी सुख सुविधाओं से संपन्न है और इतने भव्य भवनों में रहकर भी मानव अगर प्रसन्न नहीं है तो इसका कारण क्या है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । और यदि उस निर्मित भवन में कोई ऐसा दोष है , जिसके कारण मानव मात्र को सुखाभाव का सामना करना पडता है , तो वह दोष क्या है ? और उस दोष को कैसे दूर किया जा सकता है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर भारतीय वास्तुशास्त्र के पास है ।

भारतीय वास्तु शास्त्र का आधार ही मनुष्य को मानसिक दृष्टि से सुख प्रदान करना है । भारतीय वास्तुशास्त्र केवल मनुष्य के शारीरिक सुख का ही नहीं ,अपितु मानसिक सुख का भी विचार करता है । भारतीय वास्तुशास्त्र केवल ऐसे भवन की कल्पना नहीं करता,जिसमें रहकर मानव को केवल भौतिक सुख ही मिले,अपितु ऐसे भवन की कल्पना करता है ,जिसमे मनुष्य प्रसन्नचित हो, उसका जीवन समृद्ध हो और भवन में रहने वाले सभी लोगों में पारस्परिक सौहार्द और सामञ्जस्य की भावना हो । और यही भारतीय वास्तु शास्त्र का मूल उद्देश्य है और इसी मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारत के ऋषियो ने,आचार्यो ने वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों का प्रणयन किया । भारतीय वास्तुशास्त्र मुख्य रूप से प्राकृतिक शक्तियों के साथ भवन और मानव के सामञ्जस्य के सिद्धान्त पर काम करता है । 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे ' इस सिद्धान्त के अनुपालन में भारतीय वास्तुशास्त्र ने ब्रह्माण्ड,मानव और भवन में निहित पञ्चमहाभूतों के समन्वय की कल्पना की और प्रकृति के साथ समन्वय कर भवन निर्माण का चिन्तन किया ।

जब तक मनुष्य प्रकृति के साथ समन्वय कर अपना जीवन यापन करता रहा तब तक प्रकृति ने मानव को अपना आशीर्वाद प्रदान कर उसे सुखमय जीवन प्रदान किया और जब से मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये उसके विरोध में कार्य करना आरंभ किया, तब से उसे सदैव ही मुंह की खानी पडी । इसका प्रमाण हमें समरांगण सूत्रधार के सहदेवाधिकार में वर्णित्त इस कथा से प्राप्त होता है, जिसमें आधुनिक विकास सिद्धान्त के प्रतिकूल यह कहा गया है कि प्राचीन काल में मानव और देवता एक साथ रहते थे , देवो के समान मानवों की पुण्यश्लोकता थी , अजरता थी , अमरता थी । वे भी देवों के साथ कल्पवृक्षों के मध्य में स्थित विशाल प्रासादों में विहार करते थे , कालान्तर में मानवों का निवास भी देवताओं के साथ वही हो गया । बहुत समय तक मानव और

देवता एकत्र रहे। कुछ समय बाद मानव अपनी मर्यादा को भूल कर देवों की अवज्ञा करने लगें । देवताओ ने भी मानव के साथ 'मैत्री भाव ' त्यागकर उन्हें 'पुनर्मूषको भव ' की दशा में परिणित कर दिया। स्वर्ग से मानव पुनः धरती पर आ गये। जब वे देवों के साथ कल्प वृक्षों के मध्य में थे , तब उन्हे आहार-विहार के सभी साधन उपलब्ध थे। स्वर्ग में केवल एक ही ऋतु - वसन्त ऋतु थी। एक ही वर्ण ब्राह्मण था। वहा ग्राम-नगर-घर की कोई आवश्यकता ही नही थी। किसी की अधीनता नहीं थी। वहां केवल सुख ही था , दुःख की कल्पना भी नहीं थी। परन्तु मानव-देवों के पार्थक्य के कारण मानवों की दिव्य शक्तियां समाप्त हो गयी और वे क्षुधा-तृषा से व्याकुल रहने लगें । उनको भूख लगने लगी , परन्तु संपूर्ण पृथ्वी पर कहीं भी अन्न सुलभ नहीं था। ऐसी अवस्था में दैव कृपा से पर्पटक (खाद्य विशेष)का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे मानवों ने अपनी बुभुक्षा को शान्त किया ,परन्तु कुछ समय बाद पर्पटक का भी लोप हो गया और शालि-तण्डुलादि का प्रथमोदय हुआ। मानवो के मन में भय पैदा हो गया कि कहीं पर्पटक की तरह तण्डुल का भी लोप न हो जाए, अतः उनमें संग्रह की प्रवृति पैदा हो गयी। उन्होने तण्डुल का संग्रह करना शुरू किया , जिसके लिये उन्हे एक सुरक्षित स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ।तुष सेवन से मानवों में मल प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और मानवों में काम भावना भी जागृत हो गई। इन कार्यों की अभिगुप्ति के लिए मानवों को सुरक्षित स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ, जिसमें निवास कर वह इन सब कार्यों का सम्पादन कर सके। अत: वह भवन निर्माण की ओर प्रवृत्त होने लगा। इस प्रकार पृथ्वी पर भवननिर्माण की परम्परा का सूत्रपात हुआ। भवन निर्माण और पृथ्वी के सुनियोजन की यह कथा पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित है। इसका अभिप्राय: यह कदापि नही है कि भारतीय वास्तुशास्त्र का आरम्भ पौराणिक युग से ही हुआ। वैदिककालीन साहित्य में भी अनेक स्थलों पर भवन निर्माण और वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित तत्त्व यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते है।

1.3.1 वास्तुशास्त्र की परिभाषा व स्वरूप

"वास्तु" शब्द का सामान्य अर्थ निवास है। "वस निवासे" धातु से उणादि सूत्र "वसेस्तुन" के द्वारा "तुन" प्रत्यय करने पर वास्तु शब्द की निष्पत्ति होती है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ "वसन्त्यस्मिन्निितिवास्तु" है। अमरकोष में वास्तु शब्द के लिए "वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम" इत्यमर: कहा गया है। पाश्चात्यविद्वान "मोनियर विलियम्स" के अनुसार वास्तु शब्द का अर्थ " The Site or foundation of a house, site, ground, building or dwelling place किया गया है। इस प्रकार जब किसी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित स्वरुप प्रदान कर उसे निवास के योग्य

बनाया जाता है, तो उसे वास्तु कहा जाता है । अत: भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मन्दिर और नगरादि समस्त रचनाऐं जिनमें मनुष्य वास करते है उन्हे वास्तु पद से सम्बोधित किया जाता है ।

वैदिककाल में वास्तुशास्त्र का स्वरुप

भारतीय वास्तुविद्या उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मानव सभ्यता। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थऋग्वेद में भी वास्तुविद्या के निदर्शन प्राप्त होते है। वस्तुत: वास्तुविद्या का उद्गमस्थल वेद ही है। वैदिक युग देवोपासना की दृष्टि से यज्ञ-प्रधान, स्तुति-प्रधान और चिन्तन-प्रधान था । उस युग में भी यज्ञ से पूर्व यज्ञवेदी का निर्माण करने के लिए वास्तुविद्या के सिद्धान्तो का प्रयोग किया जाता था । यही यज्ञवेदी धीरे- धीरे भवन, राजप्रासाद और देवप्रासाद के रुप में परिवर्तित हो गई।वास्तु का वहीं मौलिक तत्त्व मन्दिरों, गृहों और महलों के कलेवर में आज भी विद्यमान है। वैदिकवाङमय में अनेक स्थलों पर वास्तुसम्बन्धी सूत्र प्राप्त होते है। जैसे कि वेद में सुन्दर घर के लिए “ सुवास्तु’’ और गृहाभाव के अर्थ में “ अवास्तु ” शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद मे वर्णित वास्तु विषयक विवेचन से ज्ञात होता है कि वैदिक भवनों के मुख्यरुप से तीन अङ्ग थे । प्रथम गृह-द्वार, द्वितीय आस्थान मण्डप और तृतीय पत्नी-सदन, इसे ही अन्त:पुर कहते है। आर्य लोग अग्नि के आधान के लिए जिस स्थान का प्रयोग करते थे उसे अग्निशाला कहा जाता था। वैदिककाल में निवासगृहों के दो भेद थे। एक गृह पाषाण- काष्ठादि से निर्मित होता था जो आर्थिकरुप से कम सम्पन्न लोगो के लिए होता था। इसी प्रकार एक विशाल और सुदृढ गृह सब प्रकार से सम्पन्न लोगो के लिए होता था। वेद में ऋषियों के द्वारा वैदिक देवता वरुण से प्रार्थना की गई है कि वह मिट्टी के घर में नहीं, अपितु सहस्रद्वारों से युत पाषाण-निर्मित सुदृढ घर में निवास करें। इससे वैदिककाल में मिट्टी के घर और सहस्रद्वारों वाले घर की परिकल्पना उद्घाटित होती है। ऋग्वेद में “गृह” शब्द का प्रयोग निवास स्थान के अर्थ में किया गया है। यथोक्तम-

“**सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे**”

वैदिककालीन गृहों में कक्षों की संख्या अधिक होती थी । गृह की सुरक्षा की दृष्टि से कक्षों के पिधान की भी समुचित व्यवस्था थी । यजुर्वेद में वास्तु शब्द का प्रयोग यज्ञ-परक किया गया है। यजुर्वेद में वास्तुशब्द का प्रयोग यूपनिर्माण, स्तूपनिर्माण, आसन्द और पर्यङ्कादि के निर्माण के अर्थ में किया गया है। अथर्ववेद के शालासूक्तों में गृह के कक्षों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है । गृह के सम्पूर्ण सौन्दर्य की साम्यता वहां नवविवाहिता से करते हुए कहा गया है –

"मा न: पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ।"

शाला के निर्माण के पश्चात प्रार्थना की जाती है कि यह शाला हमें गौ – अश्व – ऊर्जा – घृतादि को प्रदान करती हुई कल्याण और सौभाग्य को देने वाली हो । यथोक्तम् –

" इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय । "

ब्राह्मण ग्रन्थों में यूप-वेदी-शमशान आदि के निर्माण में शिल्पकला की उत्कृष्टता प्रतिबिम्बित होती है। अथर्ववेद में "पत्नी-सदन" के वर्णन से ज्ञात होता है कि वैदिककाल में स्त्रियों के लिए गृह में विशेष कक्ष की व्यवस्था होती थी । सूत्रग्रन्थों में वास्तुशब्द का अर्थ "आवास" लिया गया है । यज्ञवेदी के निर्माण में शुल्वसूत्रों का अत्यधिक महत्त्व था । शुल्व शब्द का अर्थ ही मापन कार्य में प्रयुक्त होने वाला सूत्र या रज्जु है। वैदिक साहित्य में यूप शब्द का प्रयोग यज्ञ स्तम्भ के लिए किया गया है। यूप की स्थापना वेदी से पूर्व दिशा में की जाती थी । यूप पर मानव,देव और ऋषियों के चित्र तथा लेख उत्कीर्ण किए जाते थे । जिससे ज्ञात होता है कि वैदिककालीन यज्ञ अत्यन्त श्रमसाध्य थे । वैदिक यज्ञवेदी की रचना वर्गाकार की जाती थी । वैदिकसाहित्य में श्मशान के निर्माण के सिद्धान्तों का वर्णन भी कई स्थानो पर प्राप्त होता है । श्मशान निर्माण के लिए शान्त स्थल का किया जाता था । उसके दोनो तरफ़ अश्वत्थ के वृक्ष लगाये जाते थे । इस प्रकार से वास्तुविद्या के बीज तो समस्त वैदिक वाङ्गमय में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते है । परन्तु स्थापत्यवेद को ही वास्तुविद्या का मूल माना जाता है।इसी स्थापत्यवेद को ही अथर्ववेद का उपवेद होने का गौरव प्राप्त है । जिससे ज्ञात होता है कि वास्तुविद्या की उत्पत्ति का स्थान अथर्ववेद ही है । यही वास्तुविद्या का मूल है और यह वास्तुविद्या आगे चलकर वास्तु,शिल्प और चित्र के रुप में त्रिधा विभक्त है । जो इस प्रकार है -

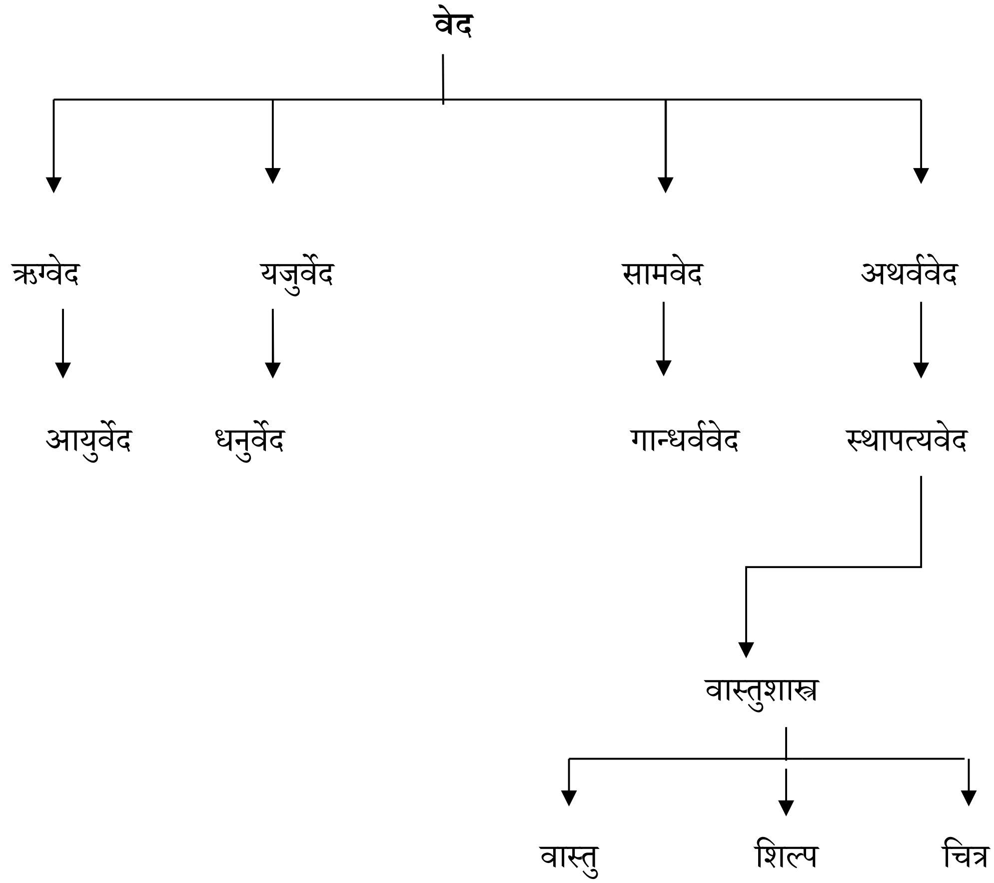

उत्तरवैदिक काल में वास्तुशास्त्र का स्वरुप

यद्यपि भारत की समस्त विद्याओं की तरह वास्तुविद्या का सूत्रपात भी वैदिककाल में ही हो गया था। परन्तु इस विद्या का वास्तविक विकास और पल्लवन उत्तरवैदिक काल में ही हुआ । वेदाङ्ग काल में यहां वास्तुविद्या को स्थिरता प्राप्त हुई वहीं पुराण और आगमकाल में इस विद्या का समुचित विकास हुआ और धीरे – धीरे यह वास्तुविद्या स्वतन्त्र शास्त्र का स्थान प्राप्त कर गई । वास्तव में वैदिककाल की यज्ञवेदी उत्तर वैदिक काल के भव्य प्रासाद का मूल है । इस उत्तर वैदिक काल के साहित्य में छः वेदाङ्गों और सूत्रसाहित्य की गणना होती है, इन छः वेदाङ्गों में वास्तुकला का सम्बन्ध कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से है।कल्प वेदाङ्ग के गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र आदि चारों कल्पसूत्रों में से शुल्वसूत्रों का सम्बन्ध यज्ञवेदी की रचना और उसकी मापन विधि से है । धर्मसूत्रों मे वर्णव्यवस्था और आश्रमव्यवस्था का वर्णन है । गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों का सम्बन्ध

यज्ञ आदि के सम्पादन से है। इस यज्ञवेदी के निर्माण के लिए मापनविधि का वर्णन शुल्वसूत्रों में प्राप्त होता है । यज्ञवेदी के निर्माण में प्रयुक्त होने वाली यही मापन विधि कालान्तर में भव्य प्रासाद के निर्माण का आधार बनी । जिस प्रकार से वैदिक काल में भवन की सुरक्षा की दृष्टि से चारों दिशाओं में रक्षा प्राचीर का निर्माण होता था उसी प्रकार से मौर्यवंशी,शुंगवंशी,शकवंशी राजाओं के शासन काल में भी स्तूप के चारों और वेदिका का निर्माण किया जाता था । इन सभी कार्यों में प्रमाण का महत्त्व सर्वाधिक है । देवताओं की प्रतिमाएं तो तभी पूज्य है, जब वह प्रमाण के अनुसार हो । कहा गया है ---

"प्रमाणे हि स्थापिता: देवा: पूजार्हाश्च भवन्ति ते ।"

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र में प्रमाण का अत्यधिक महत्त्व है और प्रमाण का आधार कल्पवेदाङ्ग ही है । इसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध छ: वेदाङ्गों में से एक ज्योतिष वेदाङ्ग से भी है । वास्तुशास्त्र भारतीय ज्योतिष की एक समृद्ध एवं विकसित शाखा है । इन दोनों में अंङ्ग – अंङ्गी भाव का विशेष सम्बन्ध है । जैसे शरीर का अपने विविध अंङ्गो के साथ सहज और अटूट समबन्ध होता है । ठीक उसी प्रकार से ही ज्योतिष शास्त्र का अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं के साथ अटूट सम्बन्ध है । सामुद्रिकशास्त्र, स्वरशास्त्र, अंकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, शकुनशास्त्र और वास्तुशास्त्र आदि ज्योतिषशास्त्र की विकसित शाखाएँ है और ज्योतिषशास्त्र रुपी वृक्ष ही इनके मूल में स्थित है ।

ज्योतिषशास्त्र और इसकी शाखाओं में आपसी सम्बन्ध का कारण इन सभी शास्त्रों के उद्देश्यों में समानता होना है । ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र इन दोनों का विकास भी वैदिक धरातल पर ही हुआ है । दोनो ही शास्त्र भारतीय जीवन-दर्शन से प्रेरित है । दोनों ही शास्त्रों का लक्ष्य मानवमात्र को सुविधा और सुरक्षा प्रदान करना है और दोनो ही शास्त्र मनुष्य के जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं पर विचार करते है परन्तु इन शास्त्रों में अत्यधिक साम्यता होने पर भी कुछ मौलिक अन्तर है । वास्तुशास्त्र किसी भवन में निवास करने वाले मनुष्य के जीवन में घटने वाले शुभाशुभ का विचार करता है, जिसका आधार प्राकृतिक शक्तियां है । यह शास्त्र इस बात का विचार करता है कि प्रकृति में विद्यमान गुरुत्व शक्ति, चुम्बकीय शक्ति और सौर ऊर्जा का प्रयोग भवन में किस प्रकार से किया जाए, जिसके कारण उस भवन में रहकर मनुष्य का जीवन समृद्ध हो सके और मनुष्य को जीवन में सन्तुष्टि और प्रगति की प्राप्ति हो । जबकि ज्योतिषशास्त्र जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं के चार कारण मानता है ---

१) वंशानुक्रम

२) वातावरण

३) कर्म

४) काल

वास्तव में यही विचारणीय तत्व है जो ज्योतिष और वास्तुशास्त्र के दृष्टिकोण के आधार में परिवर्तन करते हैं। वास्तुशास्त्र दिक् और देश को आधार बनाकर विचार करता है जबकि ज्योतिष दिक्, देश और काल के आधार पर विचार करता है । एक ही भवन में रहने वाली दो पीढियों को परस्पर विरोधी फ़ल की प्राप्ति होते देखी गई है । भवन वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तो का अनुपालन करते हुए बना होने पर भी उस भवन में निवास करने वाले सभी लोगो को एक ही तरह के फ़ल की प्राप्ति नही होती है क्योंकि यह शास्त्र काल का विचार नही करता । ज्योतिषशास्त्र दिक्, देश और काल इन तीनो सिद्धान्तों को आधार बनाकर विचार करता है, इसलिए ज्योतिषशास्त्र का क्षेत्र व्यापक है ।आधुनिक युग में महानगरीय संस्कृति में बहुमञ्जिले भवनों के निर्माण की परम्परा है और एक भवन में बने जिन फ़्लैटों के मुख पूर्व की ओर या उत्तर की ओर है तो उन फ़्लैटों के सामने वाले फ़्लैटों के मुख पश्चिम या दक्षिण की ओर होंगे तथा पूर्वमुखी यां उत्तरमुखी फ़्लैटों का निर्माण एक ही दिशा में होने पर भी उन फ़्लैटों में रहने वाले लोगों को अपने जीवन में एक ही समान फ़ल की प्राप्ति नही होती है । इसका भी कारण वास्तुशास्त्र के द्वारा केवल दिक् और देश का विचार करना ही है , जबकि इस प्रश्न का उत्तर ज्योतिषशास्त्र के पास है क्योंकि ज्योतिषशास्त्र इसके साथ –साथ काल का विचार भी करता है।

वास्तुशास्त्र की इन कमियों को रेखांकित करने का अभिप्राय: यह नही है कि यह शास्त्र व्यर्थ है।इस सबका विचार करने का अभिप्राय यह है कि वास्तुशास्त्र का अध्ययन करने से पहले इस शास्त्र के सभी पक्षों का विचार कर लिया जाए। क्योंकि हर शास्त्र की अपनी सीमाऐं होती है, अपनी विशेषताएँ होती है, अपना दृष्टिकोण होता है ,अपनी उपयोगिता होती है । वास्तव में इस संसार में ऐसा कुछ भी नही है जो परिपूर्ण हो, कोई भी शास्त्र अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है । अगर कोई एक ही शास्त्र सम्पूर्ण होता तो अन्य शास्त्रों की रचना न होती , एक ही विषय पर अनेक शास्त्रों की रचना इस बात का प्रमाण है कि हर शास्त्र की अपनी सीमाएँ है। हमारी संस्कृति में ही छ: आस्तिक दर्शन एवं तीन नास्तिक दर्शन है। इसी प्रकार से रोगों के उपचार के लिए अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों और चिकित्सा शास्त्रों का होना भी सभी शास्त्रों की सीमाओं का द्योतक है । वास्तव में ज्योतिषशास्त्र

और वास्तुशास्त्र में अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है और ये दोनो एक दूसरे के पूरक है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बिना वास्तुशास्त्र को समझ पाना सम्भव नही है और वास्तुशास्त्र के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान की सम्पूर्णता नही है। इसलिए ये दोनो शास्त्र एक दूसरे के पूरक है। अगर वास्तुशास्त्र से ज्योतिषशास्त्र को अलग कर दिया जाए तो वास्तुशास्त्र के अनेक विषयों जैसे कि गृहारम्भ ,शिलान्यास ,गृहप्रवेश, द्वारस्थापना, गृहमेलापक, दिगीश ज्ञान आदि विषयों को जानना और समझना अत्यन्त कठिन हो जाएगा। अत: वास्तुशास्त्र का अध्ययन करने से पूर्व इन दोनो शास्त्रों का परस्पर सम्बन्ध विचार, क्षेत्र, सीमाएँ और दृष्टिकोण को जान लेना चाहिए। तभी भूखण्ड के चयन, भवननिर्माण और उसमें निवास करने वाले लोगों को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फ़ल का पूर्वानुमान किया जा सकेगा। वस्तुत: वास्तुशास्त्र भारतीयज्योतिष की एक समृद्ध शाखा है। ये दोनो शास्त्र एक दूसरे के सहयोगी है, विरोधी नही है और अपने जीवन के कल्याण के लिए और भवन में सुख और समृद्धि की प्राप्ति हेतु इन दोनो शास्त्रों का अध्ययन अत्यन्त उपकारक है। ज्योतिषशास्त्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण तीन स्कन्धों में विभक्त है ----

१) सिद्धान्त
२) संहिता
३) होरा

यथोक्तम् ---

“सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम।

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योति: शास्त्रमनुत्तमम॥”

सिद्धान्त :- ज्योतिष शास्त्र के जिस स्कन्ध में त्रुट्यादि काल की गणना, सौरचान्दादिमासों के भेदों का वर्णन, ग्रहचार के नियम, दिक्-देश-काल के ज्ञान की चर्चा, भूगोल-खगोल, व्यक्त और अव्यक्त गणित की चर्चा हो, उस स्कन्ध को सिद्धान्त स्कन्ध कहते है। यथोक्तम् ----

“त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेद: क्रमा—
च्चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तरा:
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्त: स: उदाहृदोऽत्रगणितस्कन्धप्रबन्ध बुधै: ॥”

यह सिद्धान्त स्कन्ध भी सिद्धान्त, तन्त्र और करण के रूप में त्रिविध विभक्त है, सिद्धान्त में गणितादि से, तन्त्र में युगादि से ग्रहगणित और करण में शकादि से ग्रहगणित होता है।

होरा :- होरा स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र का दूसरा स्कन्ध है। ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहों के द्वारा मनुष्यों को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ, सुखदु:खादि का पूर्वानुमान करने की विधि का प्रतिपादन हो, उस स्कन्ध को होरा स्कन्ध कहा जाता है।यथोक्तम् ---

" होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात् ।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पङ्क्तिं समभिव्यनक्ति ॥ "

अन्यञ्च----

" यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पङ्क्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥ "

होराशास्त्र के पांच विभाग है – जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न, स्वप्न।

संहिता स्कन्ध :- यह ज्योतिषशास्त्र का तीसरा स्कन्ध है। जिस स्कन्ध में ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त और होरा स्कन्ध के अतिरिक्त सभी विषयों का विचार हो , उसे संहिता स्कन्ध कहते है। यथोक्तम् ---

" ज्योति: शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम् ।
तत्कात्स्न्योपनस्य नाम मुनिभि: सङ्कीर्त्यते संहिता ॥ "

सम्भवत: यह स्कन्ध सिद्धान्त स्कन्ध से भी प्राचीन है। इस स्कन्ध के अन्तर्गत नारदसंहिता, गर्गसंहिता,पाराशरसंहिता, भृगुसंहिता, वासिष्ठसंहिता, बृहत्संहिता आदि मुख्यग्रन्थ है। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने ग्रहचार, ग्रहवर्ण, ग्रहगति, ग्रहसमागम, ग्रहयुद्ध, उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, इन्द्रधनुषलक्षण, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, वृक्षायुर्वेदविचार, अङ्गविद्या, वास्तुविद्या आदि का विचार संहितास्कन्धान्तर्गत ही परिगणित किया है।

यथोक्तम् ----

" दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृति प्रमाण-वर्ण
-किरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागम
-चारादिभि: फ़लानि: नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार:
सप्तर्षिचार: ग्रहभक्त्यो नक्षत्रव्यूहग्रहश्रृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागम
ग्रहवर्षफ़लगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगा: सद्योवर्षकुसुमलतापरिधि
परिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घ

काण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तश्चक्र मृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदो गार्गलनीराजनखञ्जनकोत्पातशान्तिम्यूरचित्रकहतकम्बल- -खड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोगजाश्वभपुरूषस्त्रीअलक्षणान्यन्त: पुरचिन्ता पिटकलक्षणोपाछेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसन -लक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानिशुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगत: प्रतिपुरूषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्य कर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि ॥ ”

इस प्रकार से इन सभी विषयों का विचार संहितास्कन्धान्तर्गत होता है। वास्तुविद्या भी इन विषयों में अत्यन्त प्रमुख विषय है । बृहत्संहिता में ही आचार्य वराहमिहिर ने वास्तुविद्याध्याय, प्रासादाध्याय,प्रतिमालक्षणाध्याय, वज्रलेपाध्याय आदि वास्तुविद्या सम्बद्ध अध्यायों पर स्वतन्त्ररूप से चर्चा की है। इस प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध छ: वेदाङ्गों में से कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से है। इस सम्बन्ध को इस चित्र के माध्यम से भी समझ सकते है ---

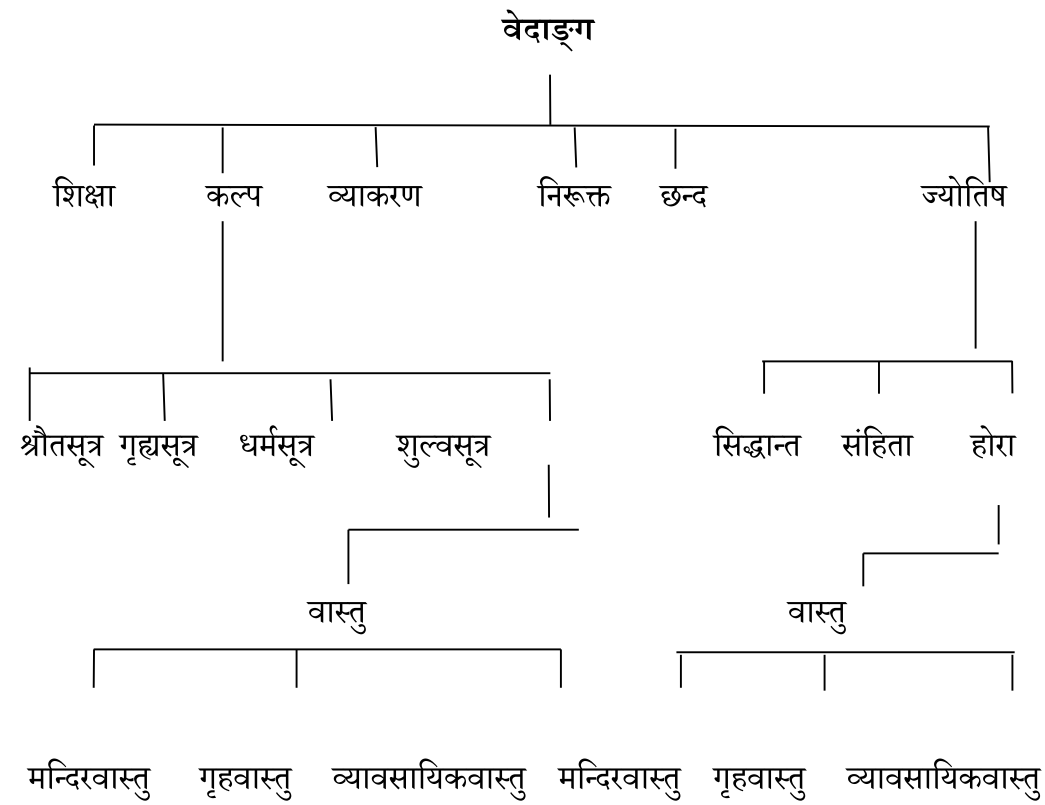

इस प्रकार से वास्तु का सम्बन्ध ज्योतिष और कल्प वेदाङ्ग से है परन्तु इसका यह अभिप्राय: कदापि नही है कि वास्तु ज्योतिषशास्त्र और कल्पशास्त्र का अङ्ग मात्र ही है और इसका अपना स्वतन्त्र रूप नही है। वास्तु का सम्बन्ध ज्योतिष और कल्पवेदाङ्ग से तो है परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है । जिस प्रकार से सभी भारतीय विज्ञानों का पारस्परिक सम्बन्ध है, जैसे-पोरोहित्य, वेद, ज्योतिष, योग, आयुर्वेद, धर्मशास्त्रादि सभी सम्बद्ध शास्त्र है उसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध भी सभी भारतीय विज्ञानों से है । जिनमें से ज्योतिष और कल्प वेदाङ्ग का वास्तुशास्त्र से सीधा सम्बन्ध है इसका अभिप्राय: यह नही है कि वास्तुशास्त्र ज्योतिष का अङ्गमात्र है । वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थो में ज्योतिषशास्त्र के विविध विषयों की चर्चा की गई है। ज्योतिषशास्त्र काल विषयक शास्त्र है । उसमें काल के विविध पक्षों का विचार किया गया है, परन्तु देशभेद से ही काल का विचार होता है। क्योंकि काल सर्वदा स्थान सापेक्ष ही होता है । ज्योतिषशास्त्र में काल की तथा वास्तुशास्त्र में दिशा की प्रमुखता है । परन्तु काल और दिशा दोनों ही स्थान पर आधारित है अर्थात देशसापेक्ष है । देश के ज्ञान के बिना दिशा और काल दोनों का ही ज्ञान नही हो सकता । इसलिए दिक्- देश और काल तीनों का ही आपसी सम्बन्ध है और अपना महत्व है। विशेषकर वास्तुशास्त्र में देवस्थापना, द्वारस्थापना, गृहारम्भ, प्रासादारम्भ, गृहप्रवेश, वापी-तडागादि खनन, शिलान्यासादि अनेक विषयों में काल का महत्व प्रतिपादित किया गया है । आचार्य विश्वकर्मा

ने काल का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है ----

“ आदौ कालं परीक्षेत् सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
कालो हि सर्वजीवानां शुभाऽशुभफ़लप्रद: ॥
कालातिक्रमणे दोषो द्रव्यहानिश्च जायते ।
देवानामपि देवीनां विप्रादीनां विशेषत: ॥
प्रासादभवनारम्भे स्तम्भस्थापनकर्मणि ।
द्वारस्थापनवेलायां भवनानां प्रवेशने ।।
वापीतडागनिर्माणे गोपुरारम्भकर्मणि ।
विमानमण्डपरामगर्भगेहोद्धतो तथा ॥
कालं शुभं परीक्षेत् मंङ्गलावाप्ति साधकम् ।
देशभेदेन कालोऽपि भिन्नतां प्रतिपद्येत ॥

इष्टिकान्यसनं शस्तं शुभकाले विशेषत: ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभं कालं न लङ्घयेत् ॥ ”

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र में काल अत्यन्त महत्तवपूर्ण है और काल का ज्ञान कालविधानशास्त्र ज्योतिष के अधीन है अत: काल के ज्ञान के लिए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है । इसलिए वास्तुशास्त्र के अनेक आचार्यो ने ज्योतिष को वास्तुशास्त्र का एक अङ्ग मानते हुए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान वास्तुशास्त्र के अध्येताओं के लिए अनिवार्य कहा है । समराङ्गणसूत्रधार कार ने वास्तुशास्त्र के आठ अङ्गों का वर्णन करते हुए अष्टाङ्ग वास्तुशास्त्र की कल्पना की है और इन आठ अङ्गों के ज्ञान के बिना वास्तुशास्त्र का सम्यक् प्रकार से ज्ञान होना सम्भव नही है। वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग इस प्रकार से है -**“ सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्द एव च ।**

सिराज्ञानं तथा शिल्पं यन्त्रकर्मविधिस्तथा ॥

एतान्यंङ्गानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान् ।

शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥ ”

सामुद्र, गणित, ज्योतिष, छन्द, शिराज्ञान, शिल्प, यन्त्रकर्म और विधि वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग है। इसको हम एक चित्र के माध्यम से भी समझ सकते है ----

वास्तुशास्त्रम

सामुद्रम गणितम ज्योतिषम छन्द सिराज्ञानम शिल्पम यन्त्रकर्म विधि

इस प्रकार से यहां कुछ आचार्यों के मत में वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का एक अङ्ग है, वहीं कुछ आचार्य ज्योतिष को वास्तुशास्त्र का अङ्ग मानते है, परन्तु वास्तव में इन दोनों शास्त्रों का अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है और ये दोनों शास्त्र एक दूसरे के पूरक है तथा इन दोनों शास्त्रों का उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण है। इन दोनों शास्त्रों का उपदेश हमारे आचार्यों ने मनुष्य के जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए किया है। इस शास्त्र की चर्चा वैदिक काल से आरम्भ होकर भारतीय सभ्यता के हर काल में हमें प्राप्त होती है । वेद, वेदाङ्ग, पुराण, रामायण, महाभारत आदि विविध कालों में रचित साहित्य में वास्तुकला के निदर्शन प्राप्त होते है जिससे इस शास्त्र की सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता का ज्ञान होता है। रामायण में कई पुरियों का वर्णन है जैसे- अयोध्यापुरी, किष्किन्धापुरी, लङ्कापुरी का वर्णन रामायणकाल की वास्तुकला और शिल्पकला का एक अद्भुत

उदाहरण प्रस्तुत करता है। सुन्दरकाण्ड मे विभिन्न उद्यानों और पुष्पकविमान का वर्णन वास्तुशिल्प का एक अद्वितीय उदाहरण है ।महाभारत में भी वास्तुशास्त्र और शिल्पशास्त्र के अद्भुत निदर्शन प्राप्त होते है । महाभारत में प्राप्त अनेक पुरियों का वर्णन उस काल के उत्कृष्ट वास्तुकौशल का परिचायक है। जैसे- इन्द्रप्रस्थपुरी, द्वारकापुरी और मिथिलापुरी का वर्णन वास्तुशास्त्र के पुरनिवेश की सङ्कल्पना का उदाहरण है। विभिन्न प्रकार के सभा भवन जैसे- पाण्डवसभा, यमसभा, वरूणसभा, कुबेरसभा, इन्द्रसभा और लाक्षागृह का वर्णन भी वास्तुशास्त्र के उत्कृष्ट उदाहरण है । कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में भी वास्तुशास्त्र की चर्चा दृष्टिगोचर होती है। वहां वास्तु की परिभाषा, दुर्गनिवेश, ग्रामनिवेश, नगरनिवेश, राष्ट्रनिवेश, भवन में द्वारविषयक चर्चा तथा ग्रन्थ में पुर-तोरण-प्रतोली आदि शब्दों के प्रयोग से एक बात तो निश्चित है कि कौटिल्यार्थशास्त्र के रचयिता वास्तुशास्त्र के भी मर्मज्ञ विद्वान थे। मनुस्मृति में भी गुल्म-ग्राम-राष्ट्र-दुर्ग आदि के प्रसङ्ग से विविध वास्तुविषयों की चर्चा की गई है । शुक्रनीति में भी भवननिर्माण, राजधानी की स्थापना, राजप्रासाद, दुर्गनिर्माण, प्रतिमानिर्माण, मन्दिरनिर्माण और राजमार्गनिर्माण आदि वास्तु के विविध विषयों की चर्चा की गई है। आगम साहित्य में भी कई स्थानों पर वास्तुशास्त्र के विविध विषयों की चर्चा प्राप्त होती है। कामिकागम के ४८ अध्यायों में वास्तुविद्या का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार से उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में वास्तुशास्त्र के बीज अनेक स्थलों पर दिखाई देते है। वैदिककाल में उद्भूत वास्तुशास्त्र का पल्लवन और विकास पौराणिक युग में अपने चरम पर पहुंच गया। लगभग सभी अष्टादशपुराणों में वास्तुशास्त्र की चर्चा कम या अधिक रूप में प्राप्त होती है।मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, स्कन्धपुराण, गरूडपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वास्तुविषयक वर्णन विशेष रूप से प्राप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. मकान मानव की मूलभूत आवश्यकता है।
2. भूखण्ड को अनियोजित करना वास्तु है।
3. ऋग्वेद में सुन्दर घर के लिए सुवास्तु शब्द का प्रयोग किया गया है।
4. शुल्व शब्द का अर्थ रज्जु नही है।
5. अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है।
6. ज्योतिषशास्त्र के दस स्कन्ध है।
7. वास्तुशास्त्र ज्योतिष के संहिता स्कन्धान्तर्गत है।

8. वास्तुशास्त्र के आठ अंग है।

१.४ वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक

ब्रह्मा जी को वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक के रूप में माना जाता है। पुराणों के अनुसार पृथु ने जब पृथ्वी को समतल किया और ब्रह्मा जी से पृथ्वी पर नगर–ग्राम आदि की रचना के सम्बन्ध में निवेदन किया। यथोक्तम् ---

" ग्रामान् पुर: पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च।
घोषान् व्रजान् सशिविरानाकारान् खेटखर्वटान् ॥
प्राक् पृथोरिह नैतेषां पुरग्रामादिकल्पना।
यथा सुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभया: ॥ "

तब ब्रह्मा जी ने अपने चारों मुखों से विश्वकर्मा आदि की उत्पत्ति की। ब्रह्मा के पूर्व मुख को विश्वभू, दक्षिण मुख को विश्वविद, पश्चिम मुख को विश्वस्रष्टा और उत्तर मुख को विश्वस्थ कहा जाता है। ब्रह्मा के विश्वभू नामक मुख से विश्वकर्मा की, विश्वविद नामक दक्षिण मुख से मय की, विश्वस्रष्टा नामक पश्चिम मुख से मनु की तथा उत्तर दिशा में स्थित विश्वस्थ नामक मुख से त्वष्टा की उत्तपत्ति हुई। इन चारों में से विश्वकर्मा और मय की परम्परा वास्तुशास्त्र में अत्यधिक पल्लवित और विकसित हुई।

1.4.1वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्य

वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों और पुराणों में प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण में भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति इन अठारह आचार्यों का वर्णन किया गया है। यथोक्तम् ---

" भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मामयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर: ॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका:।

संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिण: ॥"

अग्निपुराण में वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों की सङ्ख्या पच्चीस कही गई है, जो इस प्रकार है-

" व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशति सङ्ख्यया।
हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् ।
नारदीयं च सम्प्रश्नं शाण्डिल्यं वैश्वकं तथा ॥
सत्योक्तं शौनकं तन्त्रं वशिष्ठं ज्ञानसागरम् ।
स्वायम्भुवं कापिलं च ताक्ष्य नारायणीयकम् ॥
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारूणकम् ।
बौधायनं तथार्षं तु विश्वोक्तं तस्य सारत: ॥"

मानसार में वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों की सङ्ख्या बत्तीस कही गई है। मानसार में विश्वकर्मा, विश्वेश, विश्वेसार, प्रबोधक, वृत्र, मय, त्वष्टा, मनु, नल, मानवित, मानकल्प, मानसार, प्रष्टा, मानबोध, विश्वबोध, नय, आदिसार, विशाल, विश्वकाश्यप, वासुबोध, महातन्त्र, वास्तुविद्यापति, पाराशरीयक, कालयूपचैत्य, चित्रक, आवर्य, साधकसार, भानु, इन्द्र, लोकज्ञ और सूर्य इन आचार्यों का उल्लेख किया गया है ।यथोक्तम् --

" विश्वकर्मा च विश्वेश: विश्वसार: प्रबोधक: ।
वृत्तश्चैव मयश्चैव त्वष्टा चैव मनुर्नल: ॥
मानविन्मानकल्पश्च मानसारो बहुश्रुत: ।
प्रष्टा च मानबोधश्च विश्वबोधो मयस्तथा ॥
आदिसारो विशालाश्च विश्वकाश्यप एव च ।
वास्तुबोधो महातन्त्रो वास्तुविद्यापतिस्तथा ॥
पाराशरीयकश्चैव कालयूपो महाऋषि: ।
चैत्याख्य: चित्रक: आवर्य: साधकसारसहित: ॥
भानुश्चेन्द्रश्च लोकज्ञ: सौराख्य: शिल्पिवित्तम: ।
ते एव ऋषय: प्रोक्ता द्वाविंशति सङ्ख्यया ॥"

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों की सङ्ख्या के विषय में विविध मत है, परन्तु एक बात निश्चित है कि यह शास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में विकसित था और इस शास्त्र के अध्येताओं

और आचार्यों की एक अपनी विशिष्ट परम्परा थी। इसका शास्त्रीय और प्रायोगिक कलेवर द्विजों के ही परिश्रम का परीणाम था। वास्तुकला मर्मज्ञ सूत्रधार के गुणों की चर्चा करते हुए उसके द्विजत्व की भी चर्चा के गई है। यथोक्तम् ---

" सुशीलश्चतुरो दक्ष: शास्त्रज्ञो लोभवर्जित: ।
क्षमायुक्तो द्विजश्चैव सूत्रधार स उच्यते ॥"

शनै: शनै: यह विद्या द्विजेतरों के हस्तगत हो गई और इस विद्या के अध्येताओं के ज्ञान, प्रयोग और चारित्रिक ह्रास के कारण यह विद्या अपना गरिमामय स्थान खो बैठी। विश्वकर्मा के शाप से दग्ध इस विद्या के अध्येता-शिल्पि विश्वकर्मा के शापित पुत्र कहलाए जो कि मालाकार, कर्मकार, शंखकार, कुविन्द, कुम्भकार, कांस्यकार, सूत्रधार, चित्रकार, स्वर्णकार थे। ये विश्वकर्मा के शूद्रपुत्रों के रूप में विख्यात हुए। यथोक्तम् –

" ततो बभूवु: पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिण: ।
मालाकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दका: ॥
कुम्भकार: कांस्यकार: स्वर्णकारस्तथैव च।
पतितास्ते ब्रह्मशापाद अयाज्या वर्णसङ्करा ॥"

वास्तुशास्त्र के विविध आचार्यों के नामों का उल्लेख तो प्राप्त होता है परन्तु उनकी वास्तुशास्त्र की रचनाओं के बारे में बहुत कुछ प्राप्त नही होता है। मत्स्यपुराण में वर्णित अष्टादश आचार्यों में गर्ग आचार्य ज्योतिषशास्त्र के भी आचार्य थे। इनके "गार्ग्यतन्त्र" नामक एक ग्रन्थ की चर्चा अग्निपुराण में प्राप्त होती है। इसी प्रकार से आचार्य नारद का नारदीय तन्त्र, नारदसंहिता, नारदीयपाञ्चरात्र एवं नारद वास्तुविधान आदि ग्रन्थ प्राप्त होते है। आचार्य अत्रि का आत्रेयतन्त्र, अत्रिसंहिता, अत्रिस्मृति नामक ग्रन्थ प्राप्त होते है। शुक्राचार्य की शुक्रनीति, बृहस्पति की बृहस्पतिस्मृति एवं बार्हस्पत्यशास्त्र आदि ग्रन्थ प्राप्त होते है। आचार्य "नग्नजित" का चित्रलक्षण ग्रन्थ प्राप्त होता है। रामायणकाल में वास्तुविद के रूप में आचार्य नल और नील का वर्णन प्राप्त होता है। इन्होने ही समुद्र पर सेतु का निर्माण किया था। महाभारत काल में लाक्षागृह का निर्माण करने वाले आचार्य पुरोचन प्रमुख वास्तुविद थे। आचार्य वराहमिहिर ने गर्ग, मनु, वशिष्ठ, पाराशर, विश्वकर्मा, नग्नजित, मय आदि आचार्यों की चर्चा वास्तुशास्त्रज्ञ के रूप में की है। वास्तुकौस्तुभ ग्रन्थ में शौनक, राम, रावण, परशुराम, हरि, गालव, गौतम, शौभित, वैद्याचार्य, कार्तिकेय और च्यवन आदि आचार्यों का उल्लेख किया गया है। विश्वकर्माप्रकाश में गर्ग, पराशर एवं बृहद्रथ को वास्तु का प्रवर्तक आचार्य कहा गया है। आचार्य कश्यप का काश्यपशिल्प, अगस्त्य का सकलाधिकार प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन सभी आचार्यों

में आचार्य विश्वकर्मा और मय ने वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्य के रूप में स्थान प्राप्त किया है। इन दोनों आचार्यों की अपनी–अपनी परम्पराओं का विकास समय के साथ–साथ होता गया। विश्वकर्मा देवशिल्पि और मयाचार्य दानवशिल्पि के रूप में विख्यात हुए। विश्वकर्मा नागर परम्परा के प्रवर्तकाचार्य थे। इन्होने ही ब्रह्मा के सृष्टिकार्य में उनका सहयोग किया। इनको ६४ कलाओं का ज्ञाता माना जाता है। इनका स्वरूप चित्रण करते हुए बताया गया है कि ऐरावत हाथी पर आरूढ, प्रसन्नमुख, आभूषणों से सुसज्जित, चतुर्भुज, पीले वस्त्र धारण करने वाले, शान्तरूप हाथ में सूत्रादि धारण करने वाले देवता है।विश्वकर्मा के जन्म के विषय में विविध वास्तुग्रन्थों में विविध मत प्राप्त होते है। समराङ्गण सूत्रधार में इनको बृहस्पति के भाग्नेय, प्रभासवसु के पुत्र कहा गया है।जबकि अपराजितपृच्छा में इनका जन्म चाक्षुष मनु के वंश में माना गया है। जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित इनके मानस पुत्र माने जाते है। इनमें से जय और अपराजित दोनों ही वास्तुविद के रूप में विख्यात हुए। जय और अपराजित दोनो का प्रश्नोत्तररूप ग्रन्थ ''जयपृच्छा'' तथा ''अपराजितपृच्छा'' के रूप में प्राप्त होता है। आचार्य विश्वकर्मा ने वास्तुशास्त्र, विश्वकर्माप्रकाश, दीपार्णव, क्षीरार्णव, वृक्षार्णव, अपराजितपृच्छा, जयपृच्छा, वास्तुप्रदीप आदि ग्रन्थों का उपदेश किया। वास्तुशास्त्र की द्राविड परम्परा के जनक मयाचार्य है। महाभारत में एक प्रसंङ्ग में आचार्य मय कहते है ---

" अहं हि विश्वकर्मा दानवानां महाकावि: ॥"

विश्वकर्मा यहां देवशिल्पि थे और मयाचार्य दानवों के शिल्पि थे। रामायण के अनुसार- ''मय दिति के पुत्र थे।स्वर्ग की अप्सरा हेमा इनकी पत्नी थी और मन्दोदरी इनकी पुत्री थी। जिसका विवाह रावण से हुआ। इस प्रकार यह रावण के श्वसुर थे। मयाचार्य ने पाण्डवों के सभा भवन, पुष्पक विमानादि अनेक रचनाएँ की। इनका प्रमुख ग्रन्थ ''मयमतम्'' है। इसके अतिरिक्त मानसार, कश्यपशिल्प, मनुष्यालयचन्द्रिका, ईशानशिवगुरूदेव पद्धति आदि मय परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ है।

अभ्यास प्रश्न -२

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

१) वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक ___________ है।
२) ब्रह्मा के पूर्वमुख का नाम _________ है।
३) मय की उत्पत्ति ब्रह्मा के _________ मुख से हुई।
४) मत्स्यपुराण में वास्तु के आचार्यों की सङ्ख्या ____ है।
५) _______ में वास्तु के पच्चीस आचार्यों का वर्णन है।
६) मानसार में वास्तु के _____ आचार्यों का उल्लेख है।

७) द्राविड परम्परा के जनक ________ है।

1.5 सारांश -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि मकान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है, जब से मनुष्य जंगलों के स्थान पर भवन में रहने लगा, तब से वह सभ्य कहलाने लगा। धीरे– धीरे अपने निवास को सुन्दर और सुविधाजनक बनाने की दिशा में प्रवृत्त मानव ने भवन निर्माण के विविध सिद्धान्तों का निर्माण किया और इसे वास्तुशास्त्र का नाम दिया उसने प्रकृति के साथ सामञ्जस्य करते हुए भवन निर्माण की कल्पना की और "यत पिण्डे तत ब्रह्माण्डे" इस सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ऐसे भवन के निर्माण की कल्पना की, जिसमें पञ्चमहाभूतों का समुचित उपयोग हो सके और वास्तुशास्त्र में यह सिद्धान्त निबद्ध किए गए। वैदिक काल में यहां वास्तुशास्त्र का उपयोग यज्ञवेदी और यज्ञशाला के निर्माण में ही होता था, वहीं उत्तरवैदिक काल में वास्तुशास्त्र के माध्यम से बडे-बडे भव्य देवप्रासादों, राजप्रासादों और वास्तुसम्मत भवनों का निर्माण होने लगा । अथर्ववेद के उपवेद "स्थापत्यवेद" में प्राप्त वास्तुशास्त्र के सूत्रों का विकास हुआ और विकास की यह परम्परा "कल्पवेदाङ्ग" और "ज्योतिषवेदाङ्ग" से होती हुई स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में दृष्टिगोचर हुई। ज्योतिषवेदाङ्ग के संहिता स्कन्धान्तर्गत वास्तु की चर्चा प्राप्त होती है। धीरे-धीरे वास्तुशास्त्र पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई । इन ग्रन्थों में अष्टाङ्गवास्तु की कल्पना की गई। जिनमें वास्तु के आठ अङ्गों मे ज्योतिष को भी एक अङ्ग माना गया। इसलिए वास्तु के प्रवर्तक आचार्य और ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्यों में कहीं-कहीं साम्यता भी दृष्टिगोचर होती है, मत्स्यपुराण में वास्तु के अष्टादश, अग्निपुराण में पच्चीस और मानसार में बत्तीस आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र दो परम्पराओं के रूप में विकसित हुआ। एक विश्वकर्मा परम्परा और दूसरी मय परम्परा। विश्वकर्मा नागर परम्परा के तथा मय द्राविड परम्परा के जनक कहलाए। इन दोनों परम्पराओं में वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थो की रचना हुई। इन ग्रन्थों में वर्णित सिद्धान्तों का अनुपालन अद्यावधि भव्य भवनों के निर्माण में किया जाता है।

1.6.पारिभाषिक शब्दावली

१) **वास्तु** -- वास्तु शब्द का प्रयोग सुनियोजित भवन के लिए किया जाता है। किसी भी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित कर जब उसका प्रयोग निवास, व्यापार, यां मन्दिर के रुप में किया जाता है, तो उस भूखण्ड को वास्तु कहा जाता है।

२) **वेद** – विश्ववाङ्गमय का उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य वेद है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चार वेद है। वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान है।

३) **उपवेद** – चार वेदों के चार ही उपवेद है। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्यवेद उपवेद है। स्थापत्यवेद को ही वास्तु का उद्गम माना जाता है।

४) **वेदाङ्ग** – वेदों के सम्यक ज्ञान हेतु छ: वेदाङ्गों की रचना की गई। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष। ये वेद के छ: अङ्ग है। वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से है।

५) **ज्योतिष**— ग्रहों की गति, स्थिति आदि के माध्यम से मनुष्य पर पडने वाले शुभाशुभ फ़ल का विचार जिस वेदाङ्ग में किया जाए, उसको ज्योतिष वेदाङ्ग कहते है। ज्योतिष वेदाङ्ग के तीन स्कन्ध है।

१) सिद्धान्त

२) संहिता

३) होरा

वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध से है।

1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१) सत्य

२) असत्य

३) सत्य

४) असत्य

५) असत्य

६) असत्य

७) सत्य

८) सत्य

अभ्यास – २ की उत्तरमाला

१) ब्रह्मा
२) विश्वभू
३) दक्षिण
४) अठारह
५) अग्निपुराण
६) बत्तीस
७) मय

1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

1.9.सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

1.10. निबन्धात्मक प्रश्न

१) वास्तु की परीभाषा लिखते हुए वास्तु के स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।

२) पृथ्वी पर प्रथम भवन निर्माण की कथा को विस्तार से लिखिए।

३) वैदिक काल में वास्तुशास्त्र के स्वरूप का वर्णन करें।

४) वास्तुशास्त्र के उद्गमस्थल पर निबन्ध लिखें।

५) वास्तु और ज्योतिष के सम्बन्ध पर निबन्ध लिखें।

६) वास्तुशास्त्र की आचार्य परम्परा पर निबन्ध लिखें।

इकाई – 2 वास्तुपुरूष की अवधारणा

इकाई की संरचना

2.1प्रस्तावना

2.2उद्देश्य

2.3भारतीय विज्ञान और धर्म

2.3.1 पृथ्वी का सुनियोजन

2.4वास्तुपुरूष का सामान्य परिचय

2.4.1 भवन में वास्तुपुरूष

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.10निबन्धात्मक प्रश्न

2.1प्रस्तावना

भारतीयों के जीवन पर आरम्भ से ही अध्यात्म का प्रभाव रहा है। यहां की हर एक कला, हर एक शास्त्र, हर एक विज्ञान, धर्म और अध्यात्म से अनुस्यूत है। धर्म और विज्ञान की यह पारस्परिकता हमें भारतीयों के जीवन में निरन्तर दिखाई देती है। यहां का विज्ञान केवल शुष्क विज्ञान न होकर, अध्यात्म के रस से सराबोर हो, सरस विज्ञान हो गया है। सभी कलाओं, सभी विज्ञानों की तरह वास्तुविज्ञान भी अध्यात्म की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर पुष्पित और पल्लवित हुआ। वैदिक काल में वास्तुविज्ञान पर यह आध्यात्मिक प्रभाव वास्तोष्पत्ति और पौराणिक काल में वास्तुपुरूष के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वास्तुपुरूष की व्यापकता यहाँ सम्पूर्ण भूखण्ड पर मानी ही जाती है , वही वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में भी वास्तुपुरूष की व्यापकता दिखाई देती है। वास्तुपुरूष भूखण्ड पर औंधे मुंह लेटा हुआ है।अतः भवननिर्माण के समय वास्तुपुरूष के मर्म और अतिमर्म स्थानों को छोडकर शेष भूखण्ड पर निर्माण की कल्पना वास्तुपुरूष की वास्तुशास्त्र में महत्ता को इंगित करती है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि भारतीयों के जीवन पर धर्म का प्रभाव है।
- समझा सकेंगे कि भारतीय विज्ञान, अध्यात्म से अनुस्यूत है।
- पृथ्वी के सुनियोजन को समझ सकेंगे।
- वास्तुपुरूष के सामान्य परिचय को जान पायेंगे।
- भवन में वास्तुपुरूष के विन्यास को समझ सकेंगे।

2.3भारतीय विज्ञान और धर्म

सनातन काल से ही भारतीयों के जीवन पर धर्म का प्रभाव रहा है। धर्म और जीवन की यह पारस्परिकता इस देश की एक अद्भुत विशेषता है और यही पारस्परिकता भारतीय सभ्यता के उन्नयन का कारण है हमारे शास्त्रों में धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है - "यतोऽभ्युदय-निश्रेयस सिद्धि: स धर्म:"। अर्थात् जिससे मानव का अभ्युदय और निश्रेयस् दोनों सिद्ध हो सके वही

धर्म है। अभ्युदय का अर्थ सांसारिक उन्नति से है। आमोद-प्रमोद, खान- पान, परिधान-अलङ्करण और रहन-सहन के साधन जितने प्रचुर हो, सुलभ हो, उतने ही अभ्युदय के द्योतक होते है। जब तक मानव जंगलों में, पर्वतों की कन्दराओं में निवास करता था, तब तक उसे जंगली और असभ्य कहा जाता था। जिस दिन से मानव ने भव्य घरों और नगरों का निर्माणारम्भ किया, उसी दिन से मानव सभ्य कहलाने लगा। निवास हेतु भवननिर्माण की परम्परा गुफ़ाओं से आरम्भ हुई और फ़िर धीरे-धीरे मानव विशाल और भव्य भवनों का निर्माण करने लगा। यह भव्य भवन सर्वप्रथम राजा और देवता के लिए बनाए जाते थे। इनको राज-भवनऔरदेव-भवन कहा जाता था। और सामान्य लोग साधारण भवनों में रहते थे।पृथ्वी के इस भू-भाग "भारत" पर सर्वाधिक देवभवनों का ही निर्माण हुआ। क्योंकि धर्म से अनुप्राणित भारत की जनता ने सदैव ही अपने देवता के लिए स्वयं से भी उत्कृष्ट समर्पण की भावना रखी है। कोई भी कला, कोई भी शास्त्र, कोई भी विज्ञान अगर अनुशासित न हो तो वह उच्छृंखल हो जाता है और रचनात्मक होने के स्थान पर विध्वंसक हो जाता है। इसलिए ही भारतीयों ने हर इक कला और विज्ञान को अनुशासित करने के लिए उस कला को, उस विज्ञान को शास्त्र के नियमों में बांधा। जिससे कि वह शास्त्र, कला या विज्ञान केवल शुष्कविज्ञान ही न रह जाए,अपितु अध्यात्म से जुडकर लोकोपकारक हो जाए, यही कारण है कि भारत की हर एक कला और विज्ञान हमें देवत्व की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है। हमारे यहां कि नृत्य- कला में नटराज शिव का स्थान, संगीत- कला में नाद ब्रह्म की उत्कृष्टता, आलेख्य- कर्म में जगन्नाथ के पट्ट-चित्र और वास्तु- कला में वास्तु ब्रह्म को जो स्थान प्राप्त है, वह भारत की विविध कलाओं में देव-तत्त्व का प्रमाण है। यह अध्यात्म का प्रभाव ही है किभारत की समस्त कलाएं, शास्त्र और विज्ञान आज भी उच्छृंखल न होकर लोकोपकारक है। भवन निर्माण कला को भी वास्तुशास्त्र ने लोकोपकारक बना दिया है। भारतीय स्थापत्य की यह विशेषता है कि भारतीय स्थापत्य में पार्थिव और अपार्थिव तत्वों का अद्भुत सङ्गम है। जबकि विश्व की अन्य संस्कृतियों में हमें यह सङ्गम कहीं भी दिखाई नही देता। जैसा कि आप लोगों ने भारत के अतिरिक्त अन्य देशों की स्थापत्य कला में भी देखा होगा। उदाहरण के लिए यूनान –रोमादि प्राचीन राष्ट्रों की वास्तुकला में केवल पार्थिव तत्त्वों का विकास ही दृष्टिगोचर होता है। जबकि भारतीय स्थापत्य में प्रत्येक निर्माण के पीछे एक दैवीय पृष्ठभूमि रही है। जो कि भारतीय संस्कृति के अध्यात्म से अनुस्यूत होने की परिचायक है। भारत की वास्तुकला और स्थापत्यशास्त्र पर अध्यात्म का प्रभाव हमें वेदों और पुराणों में कई स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। वास्तु से अभिप्राय: ही एक अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित करना है और यह पृथ्वी भी अपने आप में ब्रह्माण्ड की एक लघु इकाई और वास्तु का एक उदाहरण है। यह

भी अपनी आरम्भिक अवस्था में अनियोजित थी और रहने के योग्य नही थी। ऐसा भूगर्भशास्त्री भी मानते है। शनै: शनै: इसका सुनियोजन हुआ और यह रहने योग्य हुई। इसके सुनियोजन के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत पुराण में एक कथा प्राप्त होती है, जो भारतीय भूगर्भ विज्ञान पर अध्यात्म के प्रभाव की द्योतक है।

2.3.1 पृथ्वी का सुनियोजन

महाराज पृथु के राज्याभिषेक के बाद ब्राह्मणों ने उन्हे प्रजा का रक्षक उद्घोषित कर दिया। उन दिनों पृथ्वी अन्नहीन हो गई थी जिसके कारण राजा पृथु की प्रजा भूख से पीडित होकर त्राहि- त्राहि करने लगी। प्रजाजनों ने राजा पृथु को अपनी इस समस्या से अवगत करवाया। प्रजा का करूण-क्रन्दन सुनकर पृथु को इन सबके मूल में अन्नाभाव ही कारण रूप से दिखाई दिया। "पृथ्वी ने स्वयं ही अन्न एवं औषधादि को अपने भीतर छुपा लिया है।" ऐसा अपनी बुद्धि में निश्चित कर पृथु ने क्रोधित होकर पृथ्वी को लक्ष्य बनाकर अपने धनुष पर बाण चढाया। क्रोधित पृथु को देखकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर सम्पूर्ण सृष्टि में रक्षा के लिए भागने लगी। जब पृथ्वी को कहीं भी अभयदान नही मिला तो गौ रूप धारिणी पृथ्वी ने बहुत ही विनम्र भाव से राजा पृथु को प्रणाम किया और उनके क्रोध को शान्त करने के लिए कई प्रकार से उनकी स्तुति की। राजा पृथु के शान्त होने पर पृथ्वी ने उन्हे बताया कि राक्षसों और दुष्टों से बचाने के लिए और यज्ञों के निमित्त उसने दिव्य औषधियों को अपने भीतर छुपा लिया है। इन औषधियों को आप कृषि आदि उपायों के द्वारा पुन: प्राप्त कर सकते है, परन्तु सर्वप्रथम इस अस्त व्यस्त पृथ्वी को समतल बनाना होगा। तदनन्तर राजा पृथु ने अपने बाण की नोंक से पृथ्वी पर स्थित ऊंचे – ऊंचे पर्वतों को फ़ोडकर उसे समतल बनाया और इस पृथ्वी पर अनेंको गांव, कस्बे, नगर और दुर्ग बसायें। इस प्रकार अनियोजित पृथ्वी को सुनियोजित कर रहने योग्य बनाया गया। यह वृतान्त वास्तव में प्राचीन भूगर्भशास्त्र की कथा है। पृथ्वी गोल है और लाखों वर्ष पूर्व यह अत्यन्त गर्म थी, रहने योग्य नही थी। यह ज्ञान आधुनिक विज्ञान की ही उपज नही है। वस्तुत: हमारे प्राचीन ऋषि इस तथ्य से पूर्ण परिचित थे। इस आख्यान से यह ज्ञात होता है कि भारतीय वास्तुशास्त्र का दृष्टिकोण कितना व्यापक था। यह समस्त भूमण्डल और सौरमण्डल ही वास्तु का विषय है। भारतीय वास्तुविज्ञान केवल भवन- निर्माण तक ही सीमित नही है, अपितु यह समस्त ब्रह्माण्ड ही भारतीय वास्तुविज्ञान का विषय है। दो पडोसी देशों की परस्पर मित्रता और शत्रुता का वहां रहने वाले लोगो पर निश्चित रूप से प्रभाव पडता है। इसी प्रकार किसी देश के जनपदों, नगरों, ग्रामों,कुटुम्बों की पारस्परिक मित्रता और शत्रुता भी उस स्थान के

नागरिकों को प्रभावित करती है और पृथ्वी का भी सूर्यादि ग्रहों से सम्बन्ध पृथ्वी पर रहने वाले लोगों को निश्चित रूप से प्रभावित करता है। हमारी पृथ्वी इस सौरमण्डल की बहुत लघु इकाई है, जब सौरमण्डल के अन्य सदस्य सूर्य और चन्द्र इस पृथ्वी को प्रभावित करते है, तब यह सूर्य-चन्द्र और सौरमण्डल के अन्य ग्रह इस पृथ्वी पर रहने वाले मानवों और पशुओं को कैसे प्रभावित नही करेंगे ? और इस पृथ्वी पर बनने वाले भवनों पर इनका प्रभाव क्यों नही पडेगा ? अवश्य ही पडेगा। इसलिए भारतीय वास्तुशास्त्र इन प्राकृतिक शक्तियों के साथ समन्वय कर उनका सम्पूर्ण लाभ लेकर मानव मात्र के जीवन को सुखमय बनाने की बात करता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिए –

१. भारतीयों के जीवन पर अध्यात्म का प्रभाव है।
२. भारतीय वास्तुकला में पार्थिव- अपार्थिव तत्त्वों का संगम है।
३. आरम्भ से ही पृथ्वी सुनियोजित थी।
४. पृथु ने पृथ्वी का सुनियोजन किया था।
५. पृथ्वी सौर- मण्डल की ही इकाई है।

2.4 वास्तुपुरूष: सामान्य परिचय

जैसा कि आप लोग समझ गये होंगे कि भारत की हर कला, हर शास्त्र और हर विज्ञान धर्म से अनुप्राणित और अध्यात्म से अनुस्यूत है। भारत की विविध कलाओं में से प्रमुख वास्तुकला और शास्त्रों में प्रमुख वास्तुशास्त्र भी अध्यात्म से अनुस्यूत है और यह देवतत्त्व हमें वास्तु के विविध सिद्धान्तों में दृष्टिगोचर होता है। अगर हम वैदिक- कालीन वास्तुशास्त्र के स्वरूप का अध्ययन करें, तो ज्ञात होता है कि उस काल में वास्तुशास्त्र का देवतत्त्व ''वास्तोष्पति'' में निहित था। वास्तोष्पति गृह का रक्षक देवता है। ऋग्वेद में वास्तोष्पति की स्तुति करते हुए गृह की रक्षा की कामना की गई है।

तद्यथा –

" वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा न: ।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।"

" वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फ़ानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।

अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥"

"वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमदि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभि: सदा न: ॥"

इन मन्त्रो से ज्ञात होता है कि वास्तोष्पति गृह का स्तुत्य देवता था । उससे एक सुन्दर गृह की कामना की गई है, उसके साथ-साथ गृह की रक्षा और गृह में रहने वाले द्विपदों (मानव) और चतुष्पदों (पशुओं) की रक्षा की भी प्रार्थना की गई है । गृह केवल पार्थिव तत्त्वों से निर्मित होने वाला भवन मात्र न होकर अपार्थिव और पार्थिव दोनो तत्त्वों के संगम से निर्मित एक देव-भवन स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है, जिसमें रहने वाले समस्त द्विपद और चतुष्पद सुख, शान्ति और पारस्परिक सौहार्द की भावना मन में रखकर अपने जीवन का निर्वाह करते है और वैदिक- काल में उद्भूत यह भावना उत्तर- वैदिक काल, पौराणिक काल और आधुनिक काल में भी भारतीयों के जीवन में व्याप्त है । वैदिक-काल में वास्तुशास्त्र का देव-तत्त्व यहां वास्तोष्पति में दृष्टिगोचर होता है, पौराणिक-काल में वही देव- तत्त्व हमें वास्तुपुरूष के रूप में दिखाई देता है । वास्तुपुरूष की व्याप्ति हमें वास्तुशास्त्र के सभी मानकग्रन्थों में भी दिखाई देती है । इससे ही हमें वास्तुशास्त्र में वास्तुपुरुष का कितना महत्त्व है, यह ज्ञात हो जाता है । वास्तव में भारतीय संस्कृति में पुरूष का एक अपना महत्त्व है । पुरूष से हमारा अभिप्राय: दार्शनिक दृष्टि से पुरूष के स्वरुप से है ना कि लौकिक दृष्टि से हड्डि- मांस के पुरूष से ।और पुरूष की व्याप्ति हमें वेद से लेकर लगभग सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में दिखाई देती है । भारतीय विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं- प्रशाखाओं में हमें पुरूष की व्याप्ति प्राप्त होती है । हां, उसके स्वरूप में अवश्य ही थोडा- बहुत अन्तर दिखाई देता है । जैसा कि आप जानते है कि विश्व वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी पुरूष की कल्पना की गई है । ऋग्वेद में पुरूष- सूक्त के मन्त्रों के माध्यम से उस परम पुरूष की स्तुति करते हुए कहा गया है --

" सहस्रशीर्षा पुरूष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥१॥"

" पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥"

" एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरूष: ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥"

इस प्रकार से १६ मन्त्रों के माधयम से उस परम पुरूष की स्तुति करते हुए कहा गया है कि उस पुरूष के सहस्र हाथ,पैर,आंखे है और वह पुरूष इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।सृष्टि के आदि में एकमात्र

वह ही पुरूष था, जिससे इस सम्पूर्ण की रचना हुई। उस पुरूष से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि उत्पन्न हुए। उस से ही वेद के सभी मन्त्र उत्पन्न हुए। उससे ही गौ आदि प्राणी उत्पन्न हुए। चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, दिशाएं सम्पूर्ण भवन आदि उस परम पुरूष से ही उत्पन्न हुए है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की कल्पना ऋग्वेद में उस परमपुरूष से ही की गई है। इस से ही भारतीय परम्परा में पुरूष का महत्त्व ज्ञात होता है। इतना ही नही, ज्ञान के परम स्रोत, वेद को भी दार्शनिक दृष्टि से पुरूष ही माना गया है। और वेद पुरूष के नाम से सम्बोधित किया गया है। छ: वेदाङ्गों को उस वेद- पुरूष के शरीर के विविध अङ्गों के रूप में विन्यस्त करते हुए कहा गया है –

" छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षु: निरूक्तं श्रौत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोकं महीयते॥"

इस प्रकार से छन्द वेदाङ्ग को वेद पुरूष के पैर, कल्प वेदाङ्ग को वेद- पुरूष के हाथ, ज्योतिष वेदाङ्ग को वेद- पुरूष के चक्षु, निरूक्त वेदाङ्ग को वेद पुरूष के कान, शिक्षा वेदाङ्ग को वेद पुरूष की नासिका और व्याकरण वेदाङ्ग को वेद पुरूष का मुख कहा गया है। इस प्रकार छ: वेदाङ्गो का विन्यास वेद पुरूष के विविध अङ्गो में किया गया है।

इतना ही नही , लगभग हमारे सभी शास्त्रों में एक पुरूष की कल्पना दिखाई देती है। जैसा कि आप जानते ही है ज्योतिषशास्त्र वास्तुशास्त्र से ही सम्बद्ध शास्त्र है। ज्योतिष में भी पुरूष की कल्पना दृष्टिगोचर होती है। ज्योतिष का यह पुरूष कालपुरूष के नाम से विख्यात है। कालपुरूष के शरीर में सम्पूर्ण राशियों और ग्रहों का विन्यास किया गया है। आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक के ग्रहयोनिप्रभेदाध्याय में कालपुरूष की आत्मा सूर्य को कहा है, चन्द्रमा कालपुरुष का मन है, मङ्गल कालपुरूष के शरीर का बल है, बुध कालपुरूष की वाणी है, बृहस्पति कालपुरूष का ज्ञान और सुख है, शुक्र कालपुरूष के शरीर में काम (मदन) है, और शनि कालपुरूष का दु:ख है। यथोक्तम् –

" कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगु: सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो।
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दु:खं दिनेशात्मज:॥"

इतना ही नही, कालपुरूष का अपना एक साम्राज्य माना गया है, एक राष्ट्र माना गया है, और उस कालपुरूष के राष्ट्र में सूर्य- चान्द्रमा राजा के रूप में है, मङ्गल सेनापति है, बुध राष्ट्र का युवराज है, गुरू- शुक्र दोनों सचिव है और शनि सेवक है। यथोक्तम् --

" राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुध:।
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्य: सहस्रांशुज:॥"

इस प्रकार से कालपुरूष के माध्यम से मनुष्य के शरीर में ग्रहों के प्रभाव को बताया गया है। जो- जो ग्रह कालपुरूष के शरीर में आत्मा, मन, सत्त्व आदि जिस- जिस का प्रतिनिधि है, वो- वो ग्रह मनुष्य के शरीर में भी उसी- उसी का प्रतिनिधि है, देखा ही गया है जन्माङ्ग में चन्द्रमा की अच्छी स्थिति मानसिक बल में बृद्धि और बुरी स्थिति मनुष्य को मानसिक बल में हानि प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त मङ्गल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि आदि भी बली होने पर तत्-तत् पदार्थों में वृद्धि और बलहीन होने पर मनुष्य को हानि प्रदान करते है। इसी प्रकार से रवि, चन्द्र,मङ्गल,बुध आदि बली होने पर मनुष्य मे राजत्व, सेनानायकत्व, और युवराजत्व आदि गुणों का विकास करते है। इस प्रकार से कालपुरूष और सामान्य पुरूष की साम्यता दिखाई गई है। ग्रहों के विन्यास की तरह द्वादश राशियों का विन्यास भी कालपुरूष के शरीर में किया गया है। मेष राशि को कालपुरूष का सिर, वृषभ को मुख, मिथुन को वक्षस्थल, कर्क को हृदय, सिंह राशि को उदर, कन्या राशि को कटि, तुला राशि को वस्ति (नाभि और व्यञ्जन योनि का मध्य भाग) वृश्चिक राशि को लिङ्ग या योनि, धनुराशि को पैरों की सन्धि, मकर राशि को पैरों की गांठ, कुम्भ राशि को जांघ, और मीन राशि को कालपुरूष के शरीर के पैर माना गया है। यथोक्तम् –

" कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोडवासो भृतो।
वस्तिर्व्यञ्जनमुरुजानुयुग्ले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम् ॥
मेषाश्विप्रथमानवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो।
राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवन चैकार्थसम्प्रत्यया: ॥"

इस प्रकार से कालपुरूष के शरीर में विविध राशियों का विन्यास किया गया है। जन्माङ्ग में जो- जो राशि शुभग्रह से युत- दृष्ट होकर बली रहती है, मनुष्य के शरीर का भी वह भाग पुष्ट होता है और जो राशि पापग्रहों से युत दृष्ट होकर पीडित रहती है, मनुष्य के शरीर का वह भाग भी पीडित, कमजोर या बलहीन होता है। इस कालपुरूष के शरीर में विविध राशियों के विन्यास को हम एक चित्र के माध्यम से भीसमझ सकतेहै।

<u>कालपुरुष का स्वरुप</u>

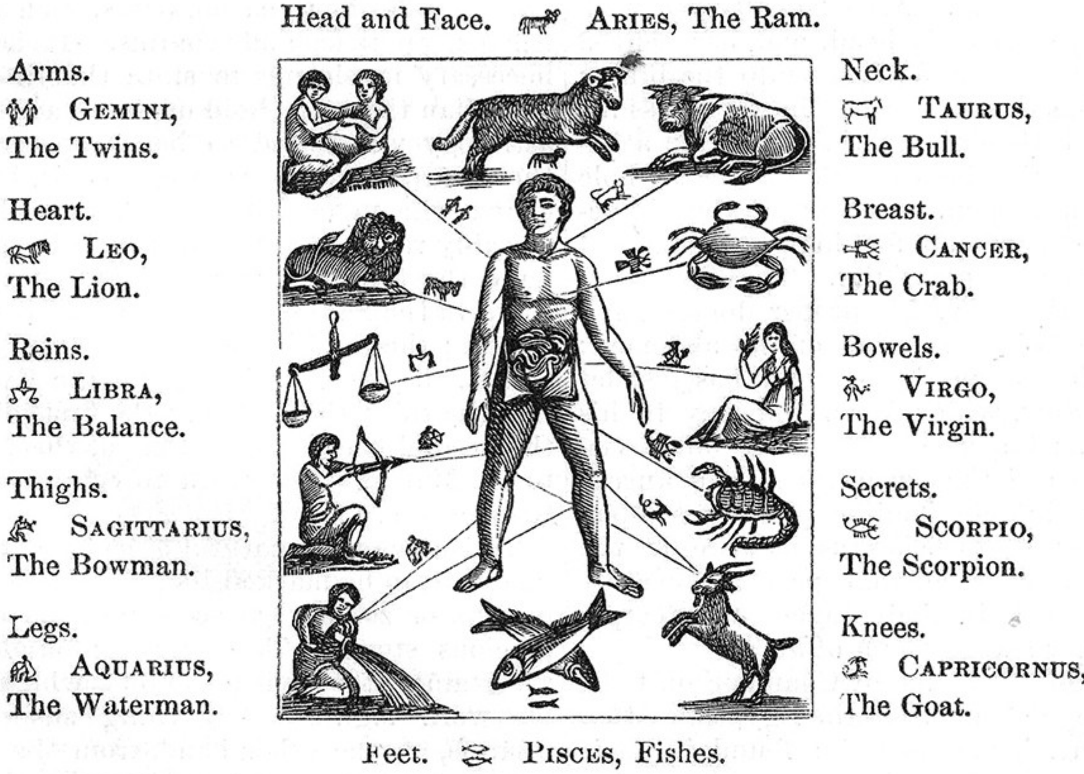

DOMINATION OF THE ZODIAC OVER MAN.

इस प्रकार से ज्योतिष के कालपुरूष के शरीर में विविध राशियों के विन्यास के माध्यम से हम मानव के शरीर के विविध अङ्गों में राशियों की स्थिति को समझ सकते है। इस प्रकार से आपने जाना कि पुरूष भारतीय संस्कृति में परमपुरूष, वेदपुरूष, कालपुरूष आदि के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। इन्ही की तरह वास्तुशास्त्र में वास्तुपुरूष की कल्पना की गई है। वास्तव में " पुरिश्शेते पुरूष:"। यह शरीर एक पुर है और इस शरीर रूपी पुर में निवास करने वाली आत्मा ही पुरुष है। आत्मा शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, यह हम सब जानते है। जब तक आत्मा रहती है तभी तक शरीर रहता है, आत्मा के न रहने पर शरीर निष्प्रयोजन हो जाता है। परमपुरूष इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आत्म तत्त्व है, वेद पुरूष सम्पूर्ण ज्ञान- राशि का आत्म- तत्त्व है। कालपुरूष सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र का आत्म- तत्त्व है और वास्तुपुरूष सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र का आत्म- तत्त्व है।

परमपुरूष, वेद- पुरूष, और कालपुरूष से होते हुए अब हम वास्तुपुरूष की चर्चा करेंगे। वैदिक साहित्य में जो महत्त्व वास्तोष्पति का है, पौराणिक साहित्य में वही महत्त्व वास्तु -पुरूष को प्राप्त है। वैदिक काल में वास्तुशास्त्र का सर्वाधिक उपयोग यज्ञ-वेदी की निर्माण योजना में होता था, वही पौराणिक काल में वास्तुशास्त्र का सर्वाधिक प्रयोग भव्य देव- मन्दिरों के निर्माण में होने लगा।

पौराणिक काल के वास्तुपुरूष का प्रसङ्ग लगभग सभी पुराणों में व्याप्त है। मत्स्यपुराण के अनुसार – प्राचीन काल में शिव और अन्धकासुर में घोर युद्ध हुआ। युद्ध श्रम से भगवान शिव के मस्तक से पसीने की एक बूंद धरती पर गिरी। उस बूंद से एक विशाल और भयावह प्राणी की उत्पत्ति हुई जिसने उत्पन्न होते ही पृथ्वी और स्वर्ग दोनों को भयभीत कर दिया। पैदा होते ही उसने समस्त राक्षसों का विनाश किया और उनका रक्तपान किया। परन्तु इससे भी उसकी तृप्ति नही हुई। भूख से व्याकुल होकर वह तीनों लोकों का भक्षण करने के लिए उद्यत हो उठा। तब निरन्तर ऊपर की ओर बढते हुए उसके शरीर को समस्त देवताओं ने मिलकर सिर से पकडा और उसे अधोमुखी कर भूमि में गाड् दिया। जिस देवता ने उसके शरीर के जिस अङ्ग को पकडा, उस देवता की स्थापना उसके शरीर के उसी अङ्ग पर मानी जाने लगी। उसी दिन से उस पुरूष का नाम वास्तुपुरूष हो गया। यथोक्तम् –

" पुरा कृतयुगे ह्यसीन्महद्भूतं समुत्थितम्।
व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः॥
तद्दृष्ट्वा विस्मयं देवाः गताः सेन्द्राः भयावृताः।
ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तमथासुरम्॥"
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः।
तमेव वास्तुपुरूषं ब्रह्मा कल्पितवान् स्वयम्॥"

वास्तुपुरूष की उत्पत्ति का यह प्रसङ्ग लगभग इसी रूप में वास्तुशास्त्र के अन्य ग्रन्थों जैसे कि राजवल्ल्भवास्तुशास्त्र, बृहत्संहिता, विश्वकर्माप्रकाश और पुराणों में भी प्राप्त होता है। वास्तुपुरूष के अतिविस्तृत शरीर को जब देवताओं ने व्याप्त कर लिया और जिस देवता ने वास्तुपुरूष के शरीर के जिस अङ्ग को पकडा, उस देवता की स्थापना उसी अङ्ग पर हो गई तो वास्तुपुरूष जो कि राक्षसी प्रवृत्ति का था, और इस सम्पूर्ण सृष्टि को, भवनों को समाप्त करने के लिए, भक्षण करने के लिए उद्यत था। और जिसका शरीर विस्तृत ही होता जा रहा था। ऐसे वास्तुपुरूष के शरीर पर अनेंको देवताओं की प्रतिष्ठा होने से उसमें देवत्व के भाव जागृत होना निश्चित ही था। अब वह वास्तुपुरूष राक्षस होते हुए भी देवों से व्याप्त होने के कारण दैवीय गुणों से युक्त हो गया था और पूजनीय हो गया था। अत: प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने उस वास्तु पुरूष को वरदान दिया कि ग्राम, नगर, दुर्ग, पत्तन, मन्दिर, गृह, सरोवर, वापी, उद्यान, आदि भवन निर्माण सम्बन्धी समस्त कार्यों में वास्तुपुरूष का पूजन सर्वप्रथम होगा। यथोक्तम् ---

" वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामहः।
ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा॥
प्रासादे च प्रपायां च जलोद्याने तथैव च।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तु नर प्रभो।
आश्रियं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे।

वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥"

इस प्रकार से वास्तुपुरूष उस दिन से भवननिर्माण सम्बन्धी कार्यों में पूजनीय हो गया। और ब्रह्मा जी ने वरदान देते हुए कहा कि जो भी मनुष्य भूमि सम्बन्धी कार्यों में वास्तुपूजन नहीं करेगा वह पद- पद पर विघ्नों से बाधित होगा, और वास्तुपुरूष का आहार बन कर मृत्यु को प्राप्त होगा। उस दिन से ही भवनारम्भ और प्रवेश के समय वास्तुपूजन की परम्परा का शुभारम्भ हुआ। वास्तव में वास्तुपुरूष की संकल्पना का आधार भी हमारी संस्कृति की अध्यात्म निष्ठा है। हमारे यहां भवन ईंट- पत्थर से निर्मित भवन मात्र नही है, बल्कि उस भवन मे, गृह के हर एक भाग में विविध देवों का निवास स्थान है। इन देवों के निवास की भावना को जानकर जो मनुष्य उस भवन में निवास करेंगे, वे भी दैवीय गुणों से ओत- प्रोत होकर समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण जीव- जगत् के कल्याण में निरन्तर तत्पर रहेंगे।

2.4.1 भवन में वास्तुपुरूष

प्रत्येक भवन में वास्तुपुरूष औंधे मुंह लेटा हुआ है ऐसा माना जाता है। और उस वास्तुपुरूष पर देवों का निवास है। इस प्रकार से प्रत्येक भूखण्ड पर देवों का वास होने के कारण वह भूखण्ड भवन मात्र न रहकर देवालय हो जाता है। और उस देवालय में निवास करने वाले मनुष्य भी देवत्त्व भाव से युक्त हो जाते है। भवन निर्माण के समय जिस देवता की जो प्रकृति हो, उस प्रकृति के अनुसार कक्ष विन्यास का विधान वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में किया गया है । इस विधि का उल्लेख वास्तुपदविन्यास के नाम से वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस विधि के अनुसार वास्तुपुरूष का विन्यास सम्पूर्ण भूखण्ड पर किया जाता है। जिस हेतु सर्वप्रथम दिक्- साधन की परम्परा है। दिक्- साधन की चर्चा आप अगले अध्यायों में विस्तार से पढेगें । दिक्- साधन के पश्चात् वास्तुपुरूष का विन्यास किया जाता है। ईशान- कोण में वास्तुपुरूष का सिर, नैऋत्य- कोण में पैर, आग्नेय और वायव्य कोण में वास्तुपुरूष के हाथ प्रतिष्ठित है। भूखण्ड पर औंधे मुंह व्याप्त इस वास्तुपुरूष के शरीर के विविध अङ्गों पर विविध देवों की स्थापना की कल्पना है। अग्निदेव वास्तुपुरूष के शिरो भाग पर, वरूण देवता मुख पर, अदिति नेत्रों में, जयन्तादि वास्तुपुरूष के कानों में, सूर्य- चन्द्र वास्तुपुरूष की दक्षिण और वाम भुजा पर, आपवत्स, महेन्द्र, और चरक, इन तीनों देवताओं की प्रतिष्ठा वास्तुपुरूष के वक्ष स्थल पर, अर्यमा और पृथ्वीधर की प्रतिष्ठा दक्षिण और वामस्तन पर की जाती है। यक्ष्मा,रोग,नाग, मुख्य और भल्लाट, इन पांचों देवताओं की प्रतिष्ठा वास्तुपुरूष की वाम भुजा पर, सत्य,भृश,नभ,वायु और पूषादि पांच देवताओं की स्थापना दक्षिण भुजा पर की जाती है। वास्तुपुरूष के हाथों पर सावित्र, सविता,रूद्र और शक्तिधरादि प्रतिष्ठित होते है

। हृदय पर ब्रह्मा, दक्षिण कुक्षि पर वितथ और गृहक्षत, वाम कुक्षि पर शोष और असुर की प्रतिष्ठा की जाती है । वास्तुपुरूष के उदर पर मित्र और विवस्वान्, लिङ्ग पर जय और इन्द्र, दक्षिण उरु पर यम तथा वाम उरु पर वरूण की स्थापना मानी जाती है । मृग, गन्धर्व और भृश की प्रतिष्ठा दक्षिण जङ्घा पर, दौवारिक सुग्रीव और पुष्पदेवों की प्रतिष्ठा वाम जङ्घा पर तथा पितृगणों की प्रतिष्ठा चरणों पर की जाती है । यथोक्तम् –

" पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा पुरूषोऽयमवाङ्मुखोऽस्य शिरसि शिखी ।
आपो मुखे स्तनेऽस्यार्यमा ह्युरस्यापवत्सश्च ॥
पर्जन्याद्या बाह्या दृक्श्रवणोरः स्थलांशगाः देवाः ।
सत्याद्याः पञ्चभुजे हस्ते सविता च सावित्रः ॥
वितथो बृहत्क्षतयुतः पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च ।
उरु जानु च जङ्घे स्फ़िगिति यमाद्यै परिगृहीताः ॥
एते दक्षिणपार्श्वस्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्थाः ।
मेढ्रे शक्रजयन्तौ हृदये ब्रह्मा पिताऽग्निगतः ॥

वास्तुपुरूष के भवन में विन्यास और वास्तुपुरूष के शरीर पर विविध देवों की प्रतिष्ठा को हम चित्र के माध्यम से समझ सकते है ।

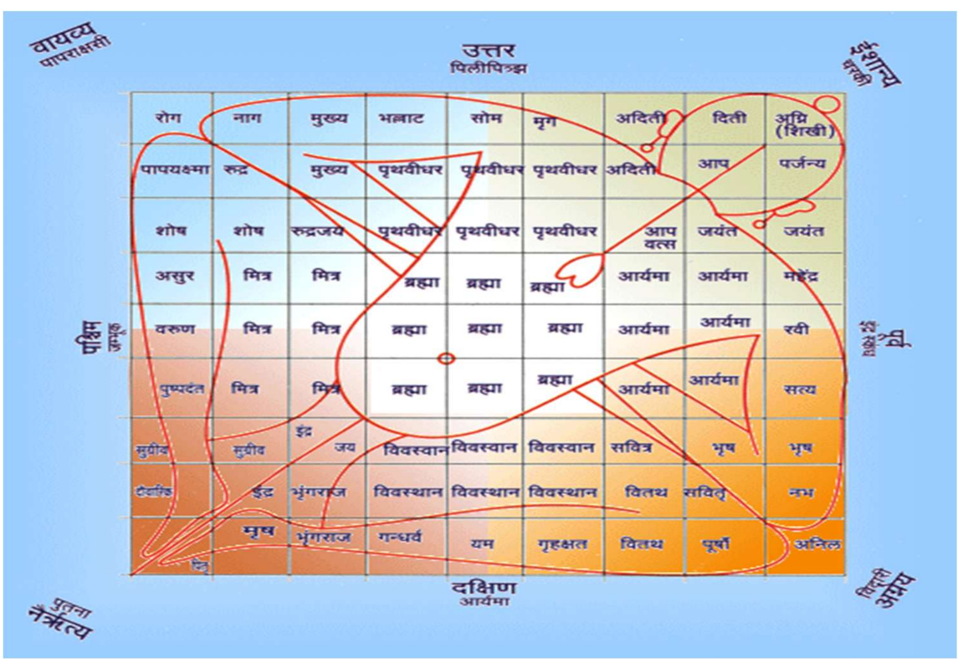

इस प्रकार से वास्तुपुरूष सम्पूर्ण भूखण्ड पर व्याप्त है और वास्तुपुरूष के शरीर पर ४५ देवता प्रतिष्ठित है। भूखण्ड पर जब भी भवन का निर्माण किया जाता है तो भवन निर्माण के समय वास्तुपुरूष के नेत्र, मुख, हृदयादि मर्म और अतिमर्म स्थानों पर निर्माण का निषेध किया गया है। मर्म- अतिमर्म स्थान क्या है ? इस विषय में आप आगे के अध्यायों में विस्तार से पढेंगे। यह मर्म स्थान वास्तुपुरूष के शरीर में अति कोमल अङ्ग माने जाते है। जो महत्त्व मनुष्य के शरीर में इन अङ्गों का है, वही महत्त्व वास्तुपुरूष के शरीर में इन मर्म और अतिमर्म अङ्गों का है। तथा इन अङ्गों का वेध उस गृह में निवास करने वाले मनुष्यों के अनेक प्रकार के कष्टों का कारण बनता है। अत: वास्तुपुरुष का भवन निर्माण में अत्यन्त महत्त्व है। वास्तव में हमारी संस्कृति में प्रत्येक वास्तु के भौतिक और अभौतिक दो पक्ष माने जाते है। भौतिक पक्ष हमारे लिए दृष्ट होता है, जबकि अभौतिक पक्ष अदृष्ट होता है। अभौतिक पक्ष को ही हम आध्यात्मिक पक्ष भी कह सकते है। वास्तुपुरूष भवन में अदृष्ट होता है, क्योंकि वह भौतिक तत्त्व न होकर आध्यात्मिक तत्त्व है। तथा वह अदृश्य तत्त्व हमें हमारे जीवन में शुभाशुभ फ़ल प्रदान करता है । जिस फ़ल का कारण भी अदृष्ट होता है। वास्तव में प्रत्येक भूखण्ड की आकृति भिन्न होती है और उस भूखण्ड की आकृति के अनुसार ही उस भूखण्ड पर वास्तुपुरूष का विन्यास होता है। जिस प्रकार से प्रत्येक पुरूष की एक अपनी शारीरिक संरचना होती है। और उस पुरुष की शारीरिक संरचना के अनुसार ही प्रत्येक विज्ञान या शास्त्र उसके शुभाशुभ का चिन्तन करता है।उसी प्रकार से प्रत्येक भूखण्ड की अपनी एक आकृति है। वह भूखण्ड आयताकार, वर्गाकार या वृत्ताकार हो सकता है और उस आकृति के अनुसार ही भूखण्ड पर वास्तुपुरुष का विन्यास और उस वास्तुपुरूष पर देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है फ़िर देवों की प्रकृति के अनुसार उस भवन में विविध कक्षों का निर्माण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें ---

१) वैदिककाल में वास्तुदेव का नाम ________ था।
२) पुराणों में वास्तुदेव के रूप में ________ की स्तुति प्राप्त होती है।
३) वेद के ______ अङ्ग है।
४) ज्योतिष वेद- पुरूष का ________ स्थानीय अङ्ग है।
५) ज्योतिष का मूल तत्त्व ________पुरूष है।
६) वास्तुपुरूष का सिर _________ कोण में होता है।
७) वास्तुपुरुष के पैर _________ कोण में होते है।

2.5 सारांश

सृष्टि के आरम्भ से ही भारतीयों का जीवन धर्म से अनुप्राणित रहा है। हमारी संस्कृति में केवल लौकिक या केवल पारलौकिक अभ्युदय की कामना नही की गई है, अपितु लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति की कामना की गई है। इसलिए भारतीय शास्त्र परम्परा में केवल अलौकिक अभ्युदय के लिए ही चिन्तन नही किया गया, अपितु लौकिक अभ्युदय के लिए भी चिन्तन किया गया है। वेदान्तादिशास्त्र यहां पारलौकिक चिन्तन के द्योतक है, वही वास्तुशास्त्रादि लौकिक और पारलौकिक चिन्तन के द्योतक है। भव्य और विशाल भवन लौकिक उन्नति के द्योतक है। वास्तव में अनियोजित भूखण्ड का सुनियोजन ही वास्तुशास्त्र है। यह पृथ्वी भी आरम्भ में अनियोजित थी। पुराणों के अनुसार- राजा पृथु ने इस धरती का सुनियोजन किया और इसे रहने योग्य बनाया। अत: इसका नाम पृथु से पृथ्वी हो गया। कहा गया है – "पृथोरियं पृथ्वी।" भूगर्भशास्त्र के अनुसार भी पृथ्वी लाखों वर्ष पूर्व गर्म थी और शनै: शनै: रहने के योग्य बनी। यही वृतान्त पुराणों में पृथु की कथा के कथा के माध्यम से बताया गया। भारतीय विज्ञानों, कलाओं, और शास्त्रों पर धर्म और अध्यात्म का प्रभाव होने के कारण भारतीय शास्त्रों में हर तथ्य को अध्यात्म से अनुप्राणित कर प्रस्तुत करने की परम्परा है। हमारे यहां वेद में सहस्र नेत्र, सहस्र हाथ और पैरो से युत परम पुरूष की कल्पना की गई है। इस संसार की आद्य ज्ञान राशि को भी वेद -पुरुष कह कर सम्बोधित किया गया है और छ: वेदाङ्गों को उस वेद पुरूष के शरीर के विविध अङ्ग माना गया है। छ: वेदाङ्गों में से वेद पुरूष के नेत्रस्थानीय वास्तुशास्त्र से सम्बद्ध ज्योतिषवेदाङ्ग में काल पुरूष की अवधारणा है। और वास्तुशास्त्र में वास्तुपुरूष की अवधारणा प्राप्त होती है। यह वास्तुपुरूष सम्पूर्ण भूखण्ड पर व्याप्त है। और इसके शरीर के विविध अङ्गों पर विविध देवों की प्रतिष्ठा की जाती है। भूखण्ड पर निर्माण के समय वास्तुपुरूष के मर्म तथा अतिमर्म स्थानों पर प्रहार का निषेध किया गया है और वास्तुपद विन्यास के माध्यम से भवन के विविध पक्षों का वास्तुपुरूष के शरीर पर विन्यस्त देवों की प्रकृति के अनुसार विन्यास की सङ्कल्पना की गई है। गृह , मन्दिर, जलाशय, वापी आदि सभी भूमिकार्यों के आरम्भ में वास्तुपुरूष के पूजन का विधान किया गया है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

१) पार्थिव तत्त्व – ईंट- पत्थर आदि भवन निर्माण की सामग्री।

२) अपार्थिव तत्त्व – दैवीय तत्त्व।

३) वास्तोष्पति - वैदिककालीन वास्तु देवता।

४) परमपुरूष – सर्व व्यापक ईश्वर।

५) कालपुरूष – ज्योतिषशास्त्र में कालपुरूष की अवधारणा है जिसमें सभी राशियों और ग्रहों का विन्यास माना जाता है।

६) वेद पुरूष – ज्ञान राशि को वेद पुरूष मानते हुए छ: वेदाङ्ग वेद- पुरूष के विविध अङ्ग है।

७) वेदाङ्ग -- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष।

८) वास्तुपुरूष – प्रत्येक भूखण्ड पर वास्तुपुरूष औंधे मुंह लेटा हुआ माना जाता है। और उस पर विविध देवों की प्रतिष्ठा मानी जाती है।

९) वास्तुपद- विन्यास – भूखण्ड पर भवन निर्माण के समय विविध कक्षों के निर्माण के समय वास्तुपद विन्यास के माध्यम से निर्माण किया जाता है।

2.7 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- १ की उत्तरमाला

१) सत्य २) सत्य ३) असत्य ४) सत्य ५) सत्य

अभ्यास प्रश्न – २ की उत्तरमाला

१) वास्तोष्पति २) वास्तुपुरूष ३) छ: ४) नेत्र ५) काल ६) ईशान ७) नैऋत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

2.9 सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

१) विज्ञान और धर्म पर एक निबन्ध लिखिए।

२) पृथु के द्वारा पृथ्वी के सुनोयोजन पर निबन्ध लिखिए

३) वास्तुपुरूष की अवधारणा पर एक निबन्ध लिखिए।

४) भवन में वास्तुपुरूष के विन्यास पर एक निबन्ध लिखिए।

५) वास्तुपुरूष के शरीर पर देव- विन्यास का वर्णन कीजिए।

इकाई -3 भूमि लक्षण शोधन

इकाई की संरचना

3.1प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भूखण्ड का चयन

3.3.1भूमि के लक्षण

3.4. भूमि शोधन

3.4.1 शल्योद्धार

3.5. सारांश

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

3.7. अभ्यास प्रश्नों केउत्तर

3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9. सहायक पाठ्यसामग्री

3.10. निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य की मूल आवश्यकताओं में भवन प्रमुख है और भवन निर्माण के लिए कोई न कोई भूखण्ड आवश्यक है क्योंकि भूखण्ड ही उस भवन का आधार होता है।अतः भारतीयवास्तुशास्त्र में सर्वप्रथम भूखण्ड के चयन पर विचार किया गया है। वास्तु का आरम्भ तो यहीं से हो जाता है। भवन निर्माण के लिए चयनित भूखण्ड का आकार कैसा हो? उसकी मिट्टी की गुणवत्ता कैसी है? उस भूखण्ड की भूमि ''ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या यां शूद्रा''इनमे से किस कोटि की है? भूखण्ड में शल्य तो नहीं है और अगर है तो उसका शोधन किस प्रकार होगा? भूमि की ढलान किस ओर है? भूखण्ड की वीथी कौन सी है? इत्यादि अनेक विषयों का विचार भवन निर्माण से पूर्व भूखण्ड के चयन हेतु करने का निर्देश वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में किया गया है। भूखण्ड के चयन के सम्बन्ध में भूमि के लक्षण और भूमि के शोधन आदि पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगें।

3.2.उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ भूखण्ड के चयन के महत्त्व को जान सकेंगें
- ❖ भूखण्ड के चयन की प्रक्रिया कोस समझ सकेंगें
- ❖ भूमि के लक्षणों को जान सकेंगे।
- ❖ भूमि शोधन का महत्त्व समझ सकेंगे।
- ❖ शल्योद्दार की प्रक्रिया को जान सकेंगे।

3.3 भूखण्ड का चयन

जैसा कि आप जानते हैं कि वास्तुशास्त्र का विचार केन्द्र भवन निर्माण है और भवन निर्माण के लिए सर्वाधिक आवश्यक भूमि है, क्योंकि भूखण्ड ही भवन का आधार है। इसलिए वास्तुशास्त्र में सर्वप्रथम भूखण्ड के चयन की चर्चा की गई है। वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि भवननिर्माण के लिए भूखण्ड के चयन की चर्चा के साथ-साथ ग्राम के चयन की बात भी की गई है। किस व्यक्ति को किस ग्राम में निवास हेतु भवन-निर्माण करना चाहिए? ग्राम की किस दिशा में निवास करना चाहिए? निवास हेतु चयनित भूखण्ड कैसा होना चाहिए? इत्यादि विषयों पर वास्तुशास्त्र में विस्तार से चर्चा करते हुए कहा गया है कि जिस भूखण्ड के समीप ही जल की उपलब्धता हो, जो स्थान रम्य और सौम्य हो, जिस भूमि पर हरे-भरे वृक्ष, पौधे, घास आदि हो और खेती की अच्छी उपज होती हो, व्यक्ति को ऐसे स्थान पर निवास करना चाहिए। ग्राम के चयन के सम्बन्ध में कहा गया है कि व्यक्ति के नाम की राशि से 2,5,9,10,11 वे स्थान की राशि के ग्राम में

निवास सुखप्रद होताहै। ग्राम में पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः वृश्चिक, मीन, कन्या, कर्क, धनु, तुला, मेष और कुम्भ राशि वालों को तथा ग्राममध्य में वृष, मिथुन, सिंह और मकर राशिवालों को निवास करना अशुभप्रदहै। इसे

तालिका के माध्यम से इस प्रकार समझे।

ईशान कुम्भ	**पूर्व** वृश्चिक	**आग्नेय** मीन
उत्तर मेष	**मध्य** वृष, मिथुन, सिंह, मकर	**दक्षिण** कन्या
वायव्य तुला	**पश्चिम** धनु	**नैऋत्य** कर्क

इसके अतिरिक्त ग्राम/नगर केन क्षत्र से निवास के इच्छुकव्यक्ति के नक्षत्र तक गिनने पर निम्नफल नराकृति के अनुसार जानना चाहिए।

स्थान	**मस्तक**	**मुख**	**कुक्षि**	**पाद**	**पृष्ठ**	**नाभि**	**गु ह्य**	**दक्षिण हस्त**	**वाम हस्त**
नक्षत्र	1-5	6-8	9-13	14-19	20	21-24	25	26	27
शुभाशुभ फल	लाभ	धनहानि	धनधान्य	स्त्रीहानि	पैरमें कष्ट	सम्पत्ति	भय	पीड़ा	क्रन्दन

अपने नाम के आद्याक्षर तथा ग्राम के नाम के आद्याक्षर के माध्यम से ग्रामचयन का विधान है। अष्टवर्गचक्र के अनुसार निम्न प्रकार से अपने वर्ग तथा ग्राम के वर्ग का ज्ञान होता है-

वर्ग	**अ**	**क**	**च**	**ट**	**त**	**प**	**य**	**श**
वर्ग-संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8
दिशा	पूर्व	आग्नेय (दक्षिण - पूर्व)	दक्षिण	नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	पश्चिम	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	उत्तर	ईशान (पूर्व-उत्तर)
वर्गाधिपति	गरूड़	मार्जार (बिल्ली)	सिंह	श्वान (कुत्ता)	सर्प	मूषक (चूहा)	मृग	मेष (मेढा)
वर्गाक्षर	अ,इ, उ,ऋ, ए, ऐ,ओ ,औ, अं, अः	क,ख,ग , घ,	च,छ, ज,झ,´	ट,ठ,ड, ढ,ण	त,थ, द,ध,न	प,फ, ब,भ,म,	य, र,ल, व	श,ष,स, ह

इस तालिका के अनुसार अपने वर्ग से पंचम वर्ग शत्रु होता है, जैसे गरूड़ से पंचम सर्प है जो शत्रुवर्ग है अतः ग्राम और ग्राम में रहने के इच्छु कव्यक्ति का परस्पर पंचम वर्ग नहीं होना चाहिए। शत्रु वर्ग को छोड़कर शेष वर्ग शुभ होते है।

इसके अतिरिक्त एक और विधिके माध्यम से ग्राम चयन का विधान है, इस विधिको काकिणी विचार कहते है।

काकिणी-विचार - अपने-अपने वर्ग की संख्या को दोगुणा करके दूसरे की वर्ग संख्या को जोड़ना चाहिए। फिर 8 का भाग देने से शेष काकिणी होती है । जिसकी काकिणी अधिक हो, वह ऋणी होता है, अतः स्थान की काकिणी अधिक होना शुभ माना जाता है। उदाहरण के लिए पार्थसारथी नाम काव्यक्ति होशियारपुर नाम के नगर में निवास करना चाहता है। पार्थ सारथी की वर्ग संख्या 6 हैऔरहोशियारपुरकीवर्गसंख्या 8 है।नियमकेअनुसार $(6\times2+8)/8=$ शेष 4, व्यक्तिकीकाकिणी $(8\times2+6)/8=$ शेष 6, स्थानकीकाकिणी।

यहाँ होशियारपुर नाम क स्थान की काकिणी पार्थसारथी नाम के व्यक्तिकी काकिणी से अधिक है अतः होशियारपुर नाम का स्थान पार्थसारथी नाम का व्यक्ति का ऋणी है,अतः पार्थ सारथी को होशियारपुर में निवास शुभ दायक है।

इस प्रकार से आपने समझा कि सर्वप्रथम निवास हेतु ग्राम का चयन किस प्रकार किया जाताहै। उपरोक्त वर्णित विविध विधियों के माध्यम से व्यक्ति अपने निवास हेतु ग्राम का चयन कर सकताहै। ग्राम के चयन के बाद ग्राम में भवन निर्माण हेतु भूखण्ड का चयन किया जाताहै। भूमि चयन के लिए सर्व प्रथम भूमि के समीपस्थ परिवेश का विचार किया जाता है।

भूमिकासमीपस्थपरिवेश

आप समझ गए होंगे कि भूमि का चयन करने की कौनसी विधियाँ है। इन सब विधियों के माध्यम से भूमिका चयन करते समय भूखण्ड के समीपस्थ परिवेश का विचार भी अत्यावश्यक है, क्यों कि इसका प्रभाव गृहस्वामी के भवन एवं परिवार दोनों ही पर पड़ता है। भूखण्ड के समीपस्थ परिवेश का विचार करते समय निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए।

- भूमि के दक्षिण या पश्चिम अथवा नैऋत्य कोण में ऊँचे भवन, पेड़, पहाड़ इत्यादि शुभ है परन्तु उत्तर या पूर्व में इनकी स्थिति अशुभ है।
- भूमि के पूर्व या उत्तर अथवा ईशान कोण का भाग दक्षिण-पश्चिम अथवा नैऋत्य कोण से नीचा होना चाहिए। इसी प्रकार पूर्वोत्तर तथा ईशान की ओर भूमिगत जल स्त्रोत, नदी, नाल आदि जिसका प्रसार दक्षिण से उत्तर तथा पश्चिम से पूर्व होतो शुभ है किन्तु दक्षिण-पश्चिम और नैऋत्य कोण में जलाशयादि अशुभ है।
- आवासीय भवन के निकट शमशान, कार्यालय, विद्यालय, सिनेमाहाल, मन्दिर होना अशुभ तथा हानिप्रद है जब कि व्यावासायिक भवन के निकट अशुभ नही है।
- आवासीय भवन के निकट अस्पताल, पुलिसथाना, नदीघाट, अदालत, रेलवेक्रांसिग और शराब खाना होना अशुभ और हानिप्रद है जब कि व्यावासायिक भवन ऐसे परिवेश में भी बनाया जा सकता है।
- जिस भूखण्ड में आस-पास के स्थानों से जल आकर एकत्रहो जाए, वहाँ भवन निर्माण नहीं करना चाहिए।
- जिस भूमिका निकट वर्ती परिवेशरम्य और मनोहारी हो, वह भूमि शुभ होतीहै।

आवासीय भवन के समीपस्थ परिवेशका निम्न प्रकार से शुभाशुभ फल कहा गया है।

गृहसमीपस्थिति	सचिवगृह	धूर्तगृह	देवगृह	चौराहा	चैत्य (प्रधान) वृक्ष	दीमकयुक्तया पोली भूमि	गड्डा	कछुएकी आकृति कीभूमि
फल	धननाश	पुत्रनाश	खेद	अपयश	ग्रहभय	आपदा	प्यासरोग	धननाश

गृह के आस-पास वृक्षों का शुभाशुभ फल इस प्रकार है।

वृक्ष	काँटेदारवृक्ष	दूधवालेवृक्षशमी, शालआदि	फलदारवृक्ष	अशोक, पुत्रग	मौलश्री, कटहल
फल	शत्रुभय	धननाश	सन्ततिनाश	अरिष्ट	शुभएवंदोषनाशक

3.3.1 भूमिकेलक्षण

अब हम भूमि के लक्षणों को जानेंगे। निवास हेतु कौनसी भूमि शुभ या अशुभ है, इसका निर्धारण, भूमि की आकृति और ढलान के आधार पर किया जाता है। मिट्टी के गुण-दोषों का विचार उसके रंग, गन्ध एवं स्वाद आदि के अनुसार किया जाता है वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण हेतु भूमिको चार श्रेणियों में बांटा गया है।-

(1)ब्राह्मणीभूमि,
(2) क्षत्रियाभूमि,
(3) वैश्याभूमि,

(4) शूद्राभूमि।

1. **ब्राह्मणीभूमि**

ब्राह्मणी भूमि सफेद रंग की,कुशायुक्त, मधुर, स्वाद एवं सुगन्धित मिट्टी वाली होतीहै। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इस भूमिको सर्व सुखदायक कहा है। यह भूमि बुद्धि जीवी, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक लोगों के लिए परमशुभ है।

2. **क्षत्रीयाभूमि**

इसकी मिट्टी का रंगलाल होता है, इसका स्वाद कसैला और गन्धरक्त जैसी होती हैं और इस पर शर उगते हैं। यह भूमिज्ञान, बल, सम्मान और राज्यप्रदाय कहै । यह भूमिमन्त्री, राज्याधिकारी, सेना, पुलिस तथा प्रशासनिक लोगों के आवास के लिएशुभ हैं।

3. **वैश्याभूमि**

इस भूमिका रंग हरीतिमा लिए हुए या पीला होता है। इसमें अन्न जैसी गन्ध होतीहैं। इस मिट्टी में कुश और कास उगतेहैं। यह मिट्टी उपजाऊ होती है यह भूमि कृषि और व्यापारिक केन्द्रों के लिए उत्तम कहीं गईहैं। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इसे धन-धान्य प्रदकहा है।

4. **शूद्राभूमि**

इस भूमि का रंग काला होता है। इस मिट्टी की गन्ध मदिरा जैसी होती है। इस का स्वाद कड़वा होता है। और इस पर सबतरह की घास उगते हैं, यह भूमि निवास के दृष्टिकोण से शुभ नहीं मानी जाती।

भूमिकाढलान

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमि की ढलान पूर्वोत्तर दिशामें शुभ और दक्षिण-पश्चिम दिशामें अशुभ मानी जाती है। पूर्वकी ओर ढलान वाली भूमि विकास और वृद्धिदायक, उत्तर की ओर ढलान वाली भूमि धन-धान्य प्रद, पश्चिम की ओर ढलान वाली भूमि कीर्ति की नाशक और दक्षिण की ओर ढलान वाली भूमि मृत्यु दायक होती है, उसी प्रकार से ईशान की ओर ढलान वाली भूमि श्री सुखदायक, आग्नेय कोण में मृत्युशोक, नैऋत्य में धनहानि और वायव्य कोण में भूमिका ढलान होने पर उस भूमिपर रहने वालों को उद्वेग होता है।

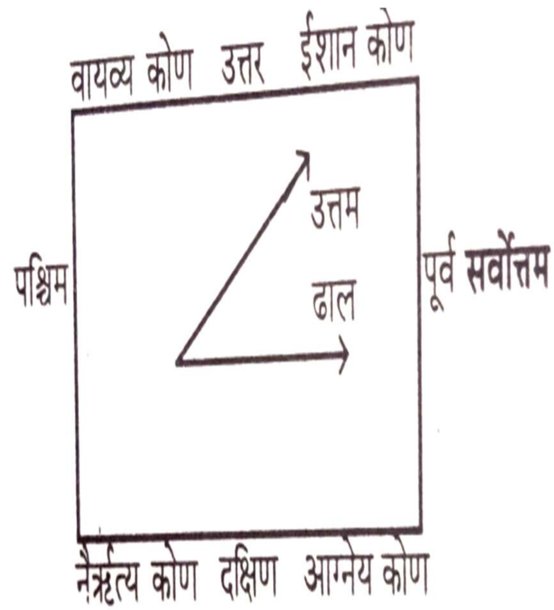
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
उत्तम
पश्चिम
पूर्व सर्वोत्तम
ढाल
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

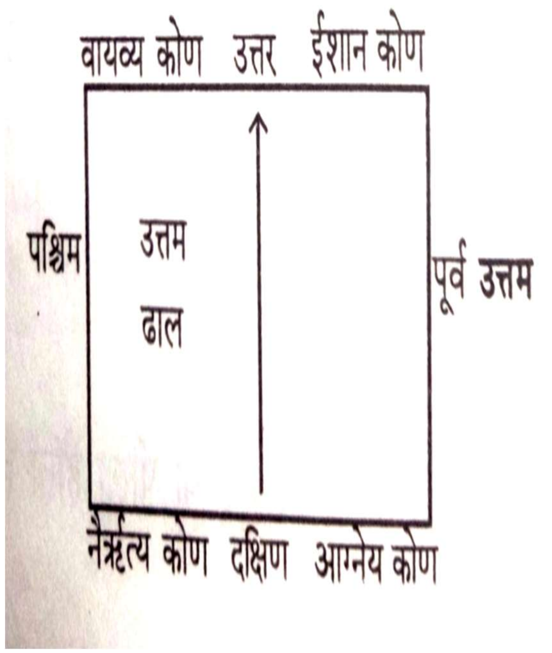
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
उत्तम
ढाल
पूर्व उत्तम
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

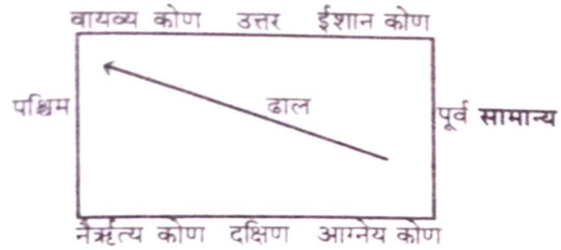
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
ढाल
पूर्व सामान्य
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

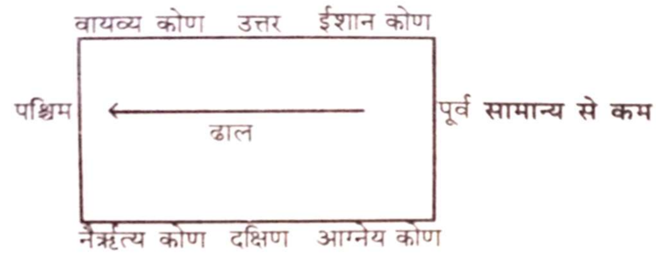
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
ढाल
पूर्व सामान्य से कम
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

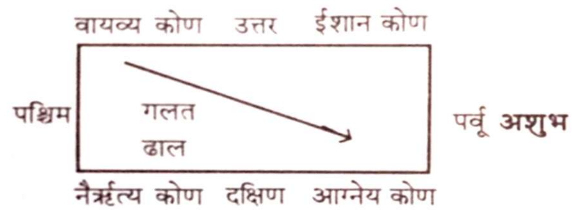
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
गलत
ढाल
पर्वू अशुभ
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

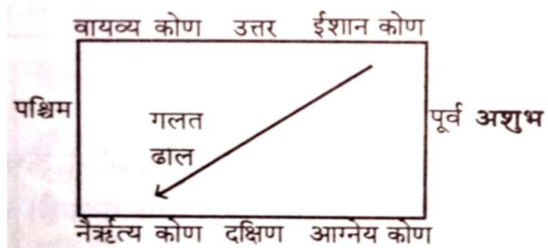
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
गलत
ढाल
पूर्व अशुभ
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

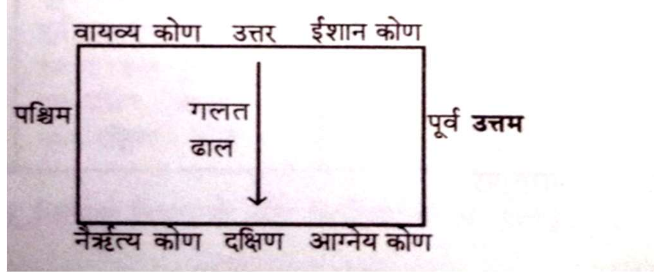
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
गलत
ढाल
पूर्व उत्तम
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण

वास्तुशास्त्र में भूमिकी आठ दिशाओं में ऊँचाई-नीचाई और ढलान के अनुसार चार पृष्ठसंज्ञाएँ और आठवीथियों का वर्णन किया गया है।

ईशानकोण में ऊँची तथा नैऋत्य में नीची भूमि भूतवीथी, आग्नेय कोण में ऊँची और वायव्य में नीची भूमि नाग वीथी, वायव्यकोण में ऊँची और आग्नेयकोण में नीची वैश्वानरी वीथी, नैऋत्य कोण में ऊँची और ईशान में नीची भूमिधनवीथी, पश्चिम में नीची जलवीथी, उत्तर में ऊँची और दक्षिण में ढलान वाली यमवीथी तथा दक्षिण में ऊँची और उत्तर में ढलान वाली भूमि गजवीथी कहलाती है। इसे इसतालिका के अनुसार समझा जा सकता है।

क्र.	वीथीनाम	दिशाऊँचाई	दिशाढलान	फल
1	गोवीथी	पश्चिम	पूर्व	शुभ
2	जलवीथी	पूर्व	पश्चिम	अशुभ
3	यमवीथी	उत्तर	दक्षिण	अशुभ
4	गजवीथी	दक्षिण	उत्तर	शुभ
5	भूतवीथी	ईशान(उत्तर-पूर्व)	नैऋत्य(दक्षिण-पश्चिम)	अशुभ
6	नागवीथी	आग्नेय(दक्षिण-पूर्व)	वायव्य(उत्तर-पश्चिम)	अशुभ
7	वैश्वानरवीथी	वायव्य(उत्तर-पश्चिम)	आग्नेय(दक्षिण-पूर्व)	शुभ
8	धनवीथी	नैऋत्य(दक्षिण-पश्चिम)	ईशान(उत्तर-पूर्व)	शुभ

गजपृष्ठ आदि भूमियाँ

भूखण्ड की विभिन्न दिशाओं और विदिशाओं में ऊँचाई के आधार पर उस भूखण्ड को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। जो इस प्रकार है।

गजपृष्ठ :-जो भूमि दक्षिण, पश्चिम, नैऋत्य और वायव्य से ऊँची उठी हो, उसे गजपृष्ठ भूमि कहते है। निवास के लिए गजपृष्ठ भूमि शुभ मानी जातीहै। यह धन और वायुकी वृद्धि कारक है।

कूर्मपृष्ठ:- मध्य से ऊपर उठी हुई तथा चारों तरफ से नीची भूमिको कूर्म पृष्ठ कहते है, यह भूमिउत्साह, सुख और धन-धान्य की वृद्धिकारकहै।

दैत्यपृष्ठ:-जो भूमिईशान, आग्नेय तथा पूर्वमें ऊँची तथा पश्चिम में नीची हो,उसे दैत्य पृष्ठ भूमि कहते है,यह भूमिनिवास के लिए अशुभ है और पारिवारिक कलह की कारक है।

नागपृष्ठ :-जो भूमि पूर्व और पश्चिम में लम्बी, उत्तर एवं दक्षिण में ऊँची और बीच में नीची होतीहै उसे नाग पृष्ठ भूमि कहते है, यह भूमि सन्तान हानि और शत्रु वृद्धि को देनेवाली है।

क्र	**भूमिसंज्ञा**	**दिशाऊँचाई**	**दिशाढलान**	**फल**
1	गजपृष्ठ	दक्षिण,पश्चिम,नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम),वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	- -----	लक्ष्मीप्राप्तिएवंआयुवृद्धि
2	कूर्मपृष्ठ	भूमिमध्य	चारोंओर	उत्साहवधनधान्य
3	दैत्यपृष्ठ	पूर्व,आग्नेय(दक्षिण-पूर्व) ईशान (उत्तर-पूर्व)	पश्चिम	धन,पशुएवंपुत्रहानि
4	नागपृष्ठ	पूर्व-पश्चिम-लम्बीउत्तर-दक्षिण-ऊँची	मध्य	उच्चाटन,मृत्युभय, शत्रुवृद्धि, स्त्रीपुत्रादिहानि

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं और विदिशाओं में ऊँचाई तथा ढलान के अनुसार निवास योग्य भूखण्ड की विभिन्न संज्ञाएँ है जिनमें से प्रत्येक का वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तार पूर्व कवर्णन किया गया है।

क्र	वास्तुसंज्ञा	दिशाऊँचाई	दिशाढलान	फल
1	पितामह	पूर्व-आग्नेयकेमध्य	उत्तर-वायव्यकेमध्य	शुभ
2	सुपन्थ	दक्षिण-आग्नेयकेमध्य	पश्चिम-वायव्यकेमध्य	प्रशस्त
3	दीर्घायु	दक्षिण- नैऋत्य केमध्य	उत्तर-ईशानकेमध्य	कुलवृद्धि
4	पुण्यक	पश्चिम- नैऋत्य केमध्य	पूर्व-ईशानकेमध्य	शुभ
5	अपथ	पश्चिम-वायव्यकेमध्य	पूर्व-आग्नेयकेमध्य	शत्रुता, कलह
6	रोगकृत	उत्तर-वायव्यकेमध्य	दक्षिण-आग्नेयकेमध्य	रोग-व्याधि
7	अर्गल	उत्तर-ईशानकेमध्य	दक्षिण-आग्नेयकेमध्य	महापापनाशक
8	श्मशान	पूर्व-ईशानकेमध्य	पश्चिम- नैऋत्य केमध्य	कुलनाश
9	श्येनक	नैऋत्य , ईशानववायव्य	आग्नेय	मृत्यु, विनाश
10	स्वमुख	ईशान, आग्नेयववायव्य	नैऋत्य	दरिद्रता
11	ब्रह्मघ्न	नैऋत्य, आग्नेयवईशान	पूर्वएवंआग्नेय	प्राणभय
12	स्थावर	आग्नेय	नैऋत्य, ईशानववायव्य	शुभ
13	स्थण्डिल	नैऋत्य	आग्नेय, वायव्यवईशान	शुभ
14	शाण्डुल	ईशान	आग्नेय, वायव्यवनैऋत्य	अशुभ
15	सुस्थान	नैऋत्य , आग्नेयवईशान	वायव्य	ब्राह्मणहेतुशुभ
16	सुतल	पश्चिम, नैऋत्य वआग्नेय	पूर्व	राष्ट्रवृद्धिकारक (क्षत्रियकोशुभ
17	चर	उत्तर, ईशानववायव्य	दक्षिण	वैश्यहेतुशुभ

मार्ग के अनुसार भूखण्ड का चयन करने के उपरान्त भूखण्ड के आकार के विषय में वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में पर्याप्त विचार किया गया है। भूखण्ड के आकार का उस भूखण्ड में रहने वाले निवासियों पर शुभाशुभ प्रभाव पड़ता है, अतः वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में बताया गया है कि आयताकार भूखण्ड अत्यन्तशुभ, वर्गाकारधनदायक, भद्रासनसफलतादायक, वृत्ताकारशुभ, चक्राकारदरिद्रताकारक, विषमबाहुशोकप्रद, त्रिकोणाकारराजभयदायक, शकटाकारनिर्धनतादायक, दण्डाकारपशुहानिकारक, मृंदगाकारस्त्रीनाशक, सिंह मुखी बन्धनकारक, गोमुखीशुभ, व्यजनाकारधननाशक, कूर्मपृष्ठ वधबन्धनकारक, सूर्पभूखण्ड सम्पत्तिनाशक, धनुषाकार चोरभयदायक तथा अर्धचन्द्राकार भूखण्ड क्लेशदायक होता है। आयताकार भूखण्डचन्द्रवेधी होने पर शुभ और सूर्य वेधी होने पर अशुभ होताहैं। जिस भूखण्ड की चौड़ाई पूर्वसे पश्चिम में कम हो तथा उत्तर से दक्षिण में अधिक हो, उसे चन्द्रवेधी तथा जिस भूखण्डकी चौड़ाई उत्तर से दक्षिण में कम तथा पूर्व से पश्चिम में अधिक हो, उसे सूर्य वेधी भूखण्ड कहा जाता है। विभिन्न आकार के भूखण्ड और उनका शुभाशुभ फल वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इस प्रकार वर्णित है।

1. **वर्गाकारभूखण्ड** :-जिस भूखण्ड की चारों भुजाएँ समान हो और प्रत्येक कोण 90^0का हो, वह वर्गाकार भूखण्ड कहलाता है। ऐसे भूखण्ड पर भवन निर्माण करने से भवन के निवासी धन-धान्य और सुख समृद्धि से युक्तरहते हैं।

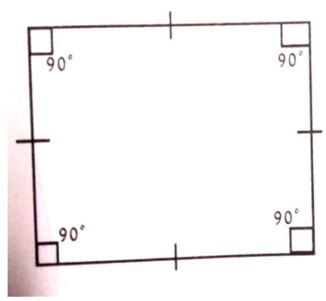

2. **आयताकारभूखण्डः-** जिस भूखण्ड की आमने-सामने की भुजाएँ समान हो तथा चारोकोण 90^0के हो, ऐसे भवन को आयताकार कहते है, आयताकार भूखण्डों में चन्द्रवेधीशुभ तथा सूर्यवेधी अशुभ होता है।

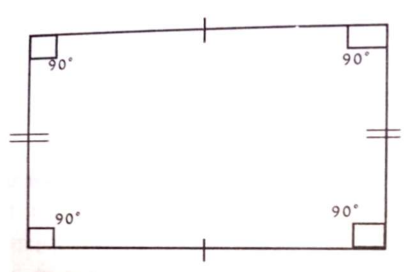

3. **वृत्ताकारभूखण्ड :-** जो भूखण्ड गोल होता है, उसे वृत्ताकार भूखण्ड कहते है, आवास और व्यापार की दृष्टि से यह भूखण्ड उत्तम माने जाते हैं परन्तु इन पर निर्माण भी वृत्ताकार ही होना चहिए, यदि इस परवृत्ताकार निर्माणन किया जाए, तो अशुभफलों की प्राप्ति होतीहै।

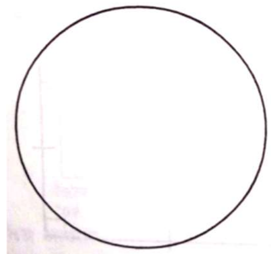

4. **भद्रासनभूखण्ड**:- जिस वर्गाकार भूखण्ड की लम्बाईचौड़ाई बराबर हो और मध्य भाग समतल हो, उसे भद्रासन भूखण्ड कहतेहै। ऐसे भूभाग पर निर्माण गृहस्वामी के लिए शुभ और कल्याण कारी होताहै।

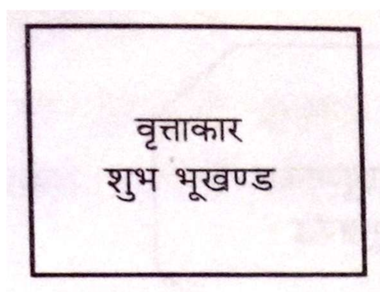

5. **त्रिभुजाकारभूखण्ड**:- जो भूखण्ड त्रिभुज के आकार का होता है उसे त्रिभुजा कार भूखण्ड कहते हैं। ऐसा भूखण्ड भवन निर्माण के लिए अशुभ है।

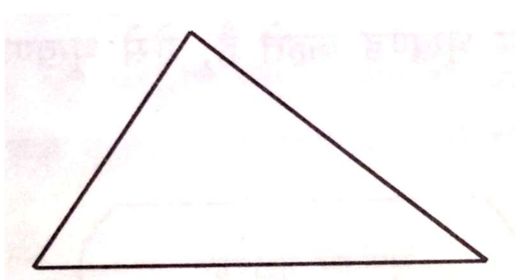

6. **चतुष्कोणाकारभूखण्ड**:- जिस भूखण्ड की आमने-सामने की भुजाएँ और कोण बराबर हो पर वहसमकोण न हो, उसे चतुष्कोणाकार भू खण्ड कहते है, निर्माण की दृष्टिसे ऐसा भूखण्ड सुख, शान्ति और समृद्धिदायक होताहै।

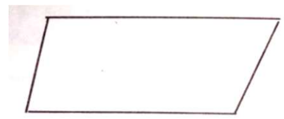

7. **अष्टभुजाकारभूखण्ड**:- जो भूखण्ड आठ भुजाओं और आठ कोणों वाला होताहै उसे अष्टभुजाकार भूखण्ड कहते है, ऐसे भवन में रहने वालों को सुख और समृद्धिकी प्राप्ति होती है।

8. **सूर्पाकारभूखण्ड:-**जो भूखण्ड मार्ग की ओर सूप तथा पीछे की ओर अर्धचन्द्राकार जैसा हो, उसे सूर्पाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड में निवासकरना शुभप्रदन हीं होता

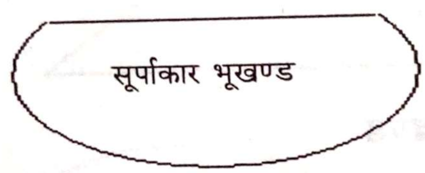

9. **अर्धवृत्ताकारभूखण्ड:-**जिस भूखण्ड की आकृतिमार्ग की ओर अर्धवृत जैसी हो, उसे अर्धवृत्ताकार भूखण्ड कहते है, यह भूखण्ड भवननिर्माण के लिए अशुभ माना जाताहै।

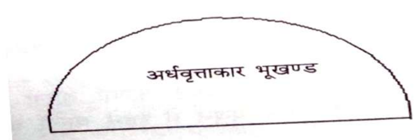

10. **दीर्घवृत्ताकारभूखण्ड:-**जिस भूखण्ड की आकृति अण्डे जैसी हो, उसे अण्डाकार या दीर्घवृत्ता कार भूखण्ड कहा जाता है, निर्माण के लिए यह भूखण्ड अशुभ है।

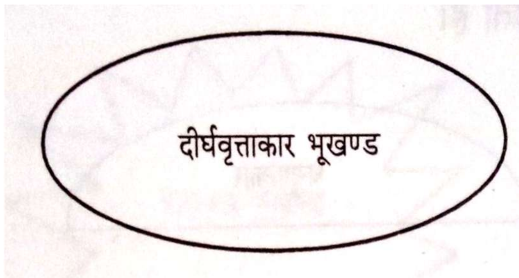

11. **मृंद्ङ्गाकारभूखण्ड:-**जिस भूखण्ड की आकृतिमृंद्ङ्ग (ढोलक) जैसी हो, उसे मृंद्ङ्गाकार भूखण्ड कहतेहै। ऐसे भवन पर निवास करने से गृहपतिको स्त्रीकष्ट रहता है।

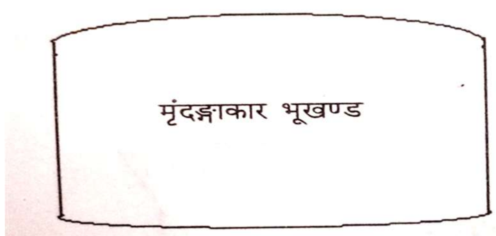

12. **शकटाकारभूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृतिशकट (बैलगाड़ी) जैसी हो, उसे शकटाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड पर भवन निर्माण से निवासियों को अनेक प्रकार के रोगों का भय रहता है।

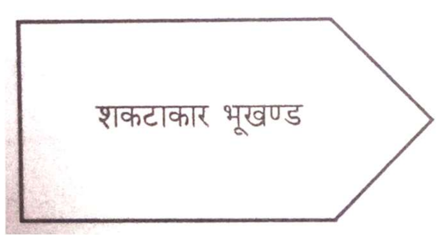

13. **धनुषाकारभूखण्ड :-** जिस भूखण्डकी आकृतिमार्ग की ओर धनुष जैसी हो, उसे धनुषाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे स्थान पर निवास करने से पारिवारिक सदस्यों में परस्परकलह रहता है।

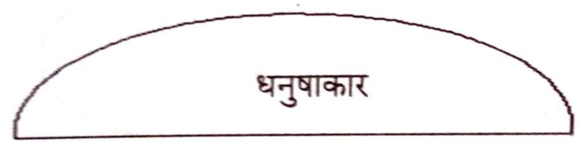

14. **व्यजनाकारभूखण्ड :-**जिस भूखण्ड की आकृतिहस्त-व्यजन (हाथवालेपंखे) जैसी होती है, उसे व्यजनाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भवन में निवास करने से धन एवं पशुहानि होती हैं।

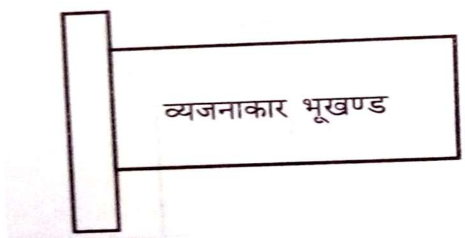

15. **कूर्मपृष्ठाकारभूखण्ड**:- जिस भूखण्डकी आकृति कछुए की आकृति जैसी हो, अर्थात्वोमध्य से उठा और चारों तरफ से समान रूप से झुका हो, उसे कूर्मपृष्ठाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से बन्धन कर भय रहता है।

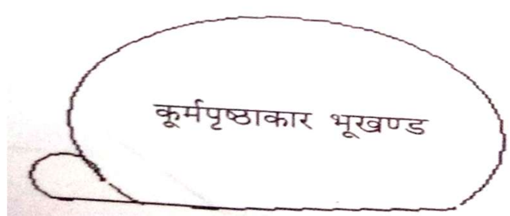

16. **ताराकारभूखण्ड**:- जो भूखण्डतारे के आकार जैसा हो, उसे तारा कार भूखण्ड कहते हैं, निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड अशुभ माना जाता है।

17. **त्रिशूलाकारभूखण्ड :-**जिस भूखण्ड की आकृति त्रिशूल जैसी हो, उसे त्रिशूलाकार भूखण्ड कहतेहै। निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड अशुभ माना जाताहै।

18. **पक्षीमुखभूखण्ड :-**जिस भूखण्ड की आकृति पक्षी के मुख जैसी हो उसे पक्षी मुख भूखण्ड कहा जाता है, निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड भी अशुभ हैं।

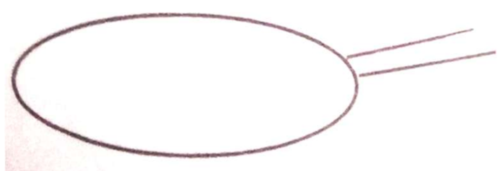

19. **कुंभाकारभूखण्ड :-** जो भूखण्ड घड़े, कलश या मटके की आकृति का हो, उसे कुंभाकार भूखण्ड कहते हैं, निवास के लिए यह भूखण्ड अशुभ माना जाता है।

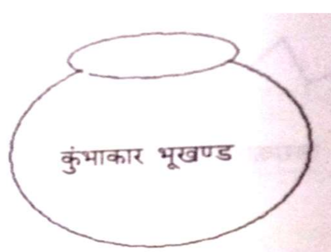

20. **चक्राकारभूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृतिचक्र (पहिये) के समान हो, उसे चक्राकार भूखण्ड कहते है, ऐसा भूखण्ड निवास केलिए अशुभ माना जाता है।

21. **विषमबाहुभूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की चारोभुजाएँ असमान हो, वह विषमबाहु भूखण्ड कहलाता है, ऐसे भूखण्ड पर निवास कर ने से दुःख, अशान्ति और आर्थिक हानि होती हैं।

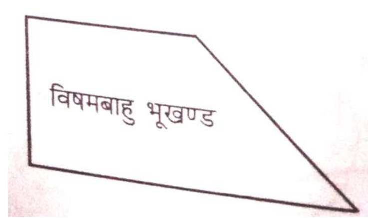

22. **दण्डाकारभूखण्ड**:- जिस भूखण्ड की आकृति दण्ड के समान हो उसे दण्डाकार भूखण्ड कहा जाता है, निवास के दृष्टिकोण से यह भूखण्ड अशुभ है और पशुधन की हानि करता हैं।

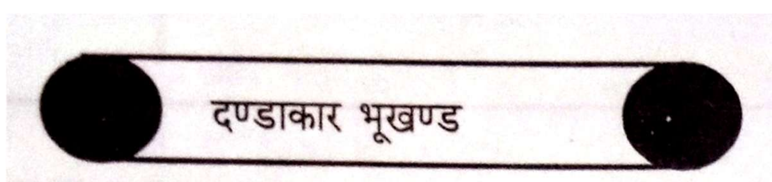

23. **वीणाकारभूखण्ड**:- ऐसा भूखण्ड, जो आकार में वीणा जैसा हो, उसे वीणाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से शारीरिक कष्ट होता हैं।

24. **सिंहमुखीभूखण्ड**:- जो भूखण्डमूर्ग की तरफ अधिक चोड़ा और पिछले हिस्से से कम चौड़ाहो, उसे सिंहमुखी भूखण्ड कहते है, यह भूखण्ड निवास के लिए अशुभ तथा व्यापार के लिए शुभ है।

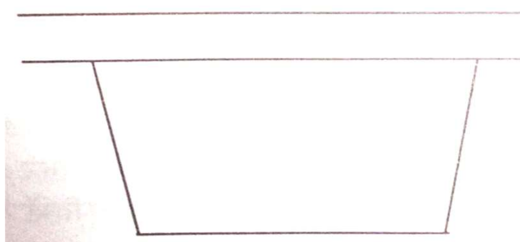

25. **गोमुखीभूखण्ड**:- जो भूखण्ड मार्ग की तरफ से कमचौड़ा और पिछले हिस्से में अधिक चौड़ा हो, उसे गोमुखी भूखण्ड कहते हैं, यह भूखण्ड निवास के लिए उत्तम माना जाता हैं।

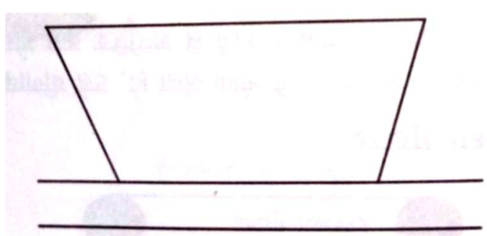

26. **षट्कोणाकारभूखण्ड**:- जिस भूखण्ड की छः भुजाएँ हो, उसे षट्कोणाकार भूखण्ड कहते है, निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड शुभ माना जाता हैं, ऐसे भूखण्डपर निवास करने से उन्नति की प्राप्ति होती हैं।

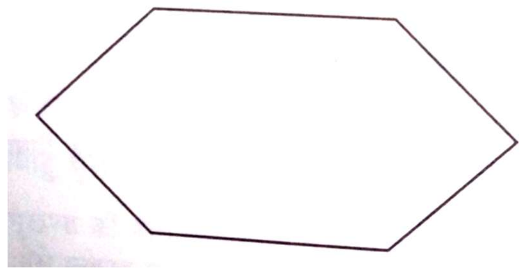

इस प्रकार से वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में भूखण्ड की विभिन्न आकृतियाँ और उनका शुभाशुभफल वर्णित है। यद्यपिकहा गया है जिस भूमि पर जाते ही नेत्र और मनसंतुष्टहो जाएँ, प्रसन्न हो जाए, ऐसी भूमि निवास के लिए सर्वोत्तम हैं। तथापिनिवास हेतु भूखण्डका चयन करते समय वास्तुशास्त्र में बताई गई भूखण्डों की शुभाशुभ आकृतियों का अवश्य विचार करना चाहिए।

क्र.	भूखण्ड-आकृति	विशेषता	फल
1	वर्गाकार	चारों भुजाओं की लम्बाई समान व प्रत्येक कोण सम कोण होता है।	धनागम
2	आयताकार	आमने सामने की भुजाओं की लम्बाई समान और चारों कोणसम कोण होतेहैं। लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात 2%1 से अधिक न हो।	सर्व सिद्धि। कुछ विद्वानों के मतानुसार चन्द्रवेधी-शुभ सूर्य वेधी-अशुभ
3	वृत्ताकार	वृत्ताकार भूमि में वृत्ताकार भवन निर्माण ही शुभ होता है।	बुद्धिवृद्धि
4	भद्रासन	वर्गाकार भूखण्ड व बीच का भाग समतल हो। कुछ विद्वानों के अनुसार अष्टकमलदल की आकृति भद्रासन है।	शुभ, कल्याण

5	चक्राकार	अनेक कोणों एवं भुजाओं वाला चक्र के समान आकार वाला भूखण्ड।	दरिद्रता
6	विषम	असमान भुजाओं एवं विषम भूमि त्रिभुज की आकृति	शोक
7	त्रिकोणाकार	त्रिभुजकी आकृति	राजकीयभय
8	शकटाकार	बैलगाड़ीरथ की आकृति	धनक्षय
9	दण्डाकार	दण्डकी आकृति	पशुक्षय
10	सूपाकार	मार्ग की ओर सूप एवं पीछे की ओर अर्ध चन्द्राकार	गोधनक्षय
11	कूर्माकार	कछुए की पीठ जैसी आकृति	बन्धनपीडा
12	धनुषाकार	अनुष जैसी अर्धचन्द्राकार आकृति	भय
13	कुम्भाकार	घड़ा, मटका या कलश जैसी आकृति	कुष्ठरोग
14	पवनाकार	हाथसेझलनेवालेपंखजैसीआकृति	नेत्रकष्टवधननाश
15	गोमुखी	गाय के मुख जैसी आकृति	आवास हेतु शुभ व्यापार हेतु अशुभ
16	सिंहमुखीयाबृहन्मुंखी	सिंह के मुख के जैसी विस्तृत आकृति	आवास हेतु अशुभ व्यापार हेतु शुभ
17	चतुष्कोण	आमने सामने की भुजाओं की लम्बाई एवं कोण बराबर हों परन्तु समकोण न हों।	सुख, धनधान्य
18	षड्भुजाकार	छह भुजाओं वाली भूमि	उन्नतिकारक
19	अष्टभुजाकार	आठभुजाओं वाली भूमि	सुख, सम्पत्ति
20	अर्धवृत्ताकार	सूपाकार के विपरीत आकृति	विकासबाधा, चोरभय
21	अण्डाकार	दीर्घ वृत्ताकार या अण्डे जैसी आकृति	हानि, दरिद्रता परन्तु त्यागियों के लिए शुभ
22	ताराकार	तारे के समान आकृति	असफलता, विवाद
23	त्रिशूलाकार	त्रिशूल जैसी आकृति	अशान्ति, संघर्ष परन्तु वीरप्रासु भूमि

24	पक्षीमुखी	पक्षी के मुखकी समान आकृति	हानि, दुर्घटना
25	ध्वजाकार	ध्वज या पताका के जैसी आकृति	यश, सम्मान
26	मुदगराकार	मुद्गर जैसी आकृति	अशुभ

भूखण्डकाविस्तारऔरकटाव

वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन-निर्माण के लिए आयताकार या वर्गाकार भवन सर्वोत्तम है परन्तुयदि भवन का विस्तार या कटाव किसी एक दिशा या विदिशा में हो, तो उस का क्या प्रभाव होगा? यदि कोई व्यक्ति अपने भूखण्ड का विस्तार किसी दिशा में करना चाहेतो उसे यह विस्तार किस दिशा में करना चाहिये ।इस जिज्ञासा के शमनहेतु वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में बताया गया है कि किसी भूखण्डका विस्तार यदि दक्षिणदिशा में या दक्षिण-पूर्व में हो तो यह अशुभ होता है। ऐसा होने पर आगज नी, शत्रु भय, धनहानि और दुर्घटना की संभावना रहती है। इन दिशाओं में पाँच प्रकार के भूखण्डों का निर्माण होता है और ये सभी अशुभ हैं।

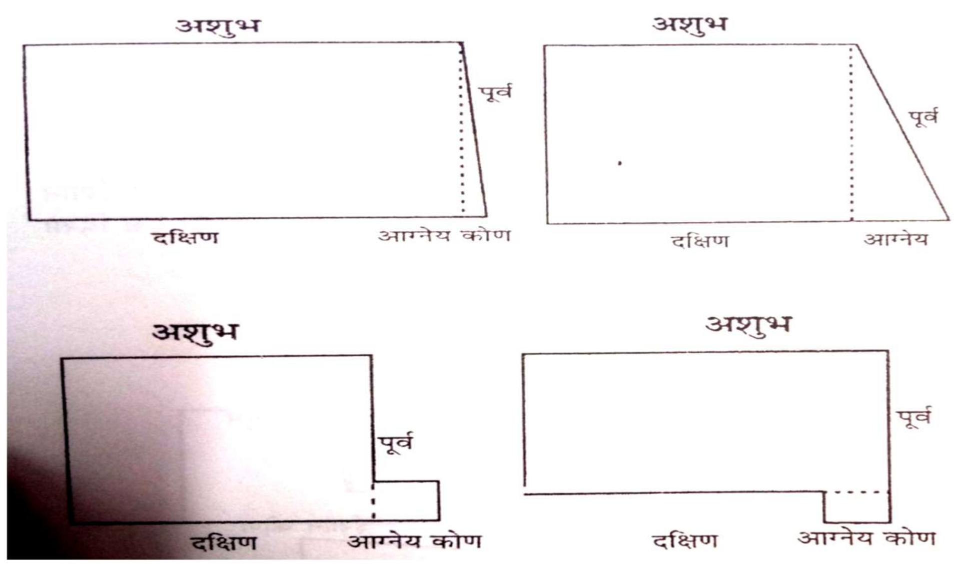

1.दक्षिणपूर्वमेंकटान

दक्षिण-पूर्व में कटान होने पर तीन-प्रकार के भूखण्डों का निर्माण होता हैं। इन में से ऐसा कटान जिस से ईशान कोण में वृद्धिहोरही हो, वह शुभ है जब कि शेष दोनों कटान अशुभ हैं। ऐसे भवन स्त्रीकष्ट और रोग प्रदान करते हैं।

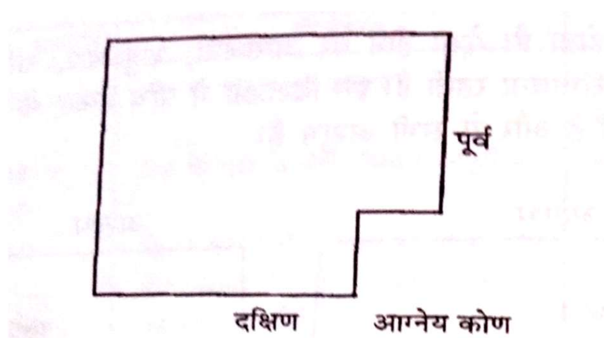

2. उत्तर-पूर्वमेंविस्तार

उत्तर-पूर्व में भूखण्ड का विस्तार अत्यन्त शुभ माना गया हैं। ईशानकोण में विस्तार से उन्नति, समृद्धि और धन की प्राप्ति होती हैं। इस दिशा में विस्तार से पाँच प्रकार का निर्माण होता हैं।

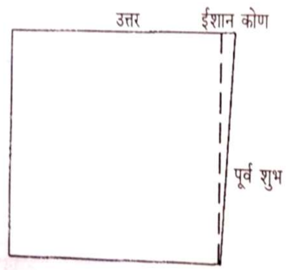

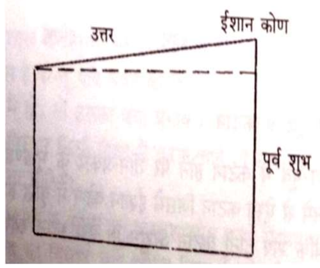

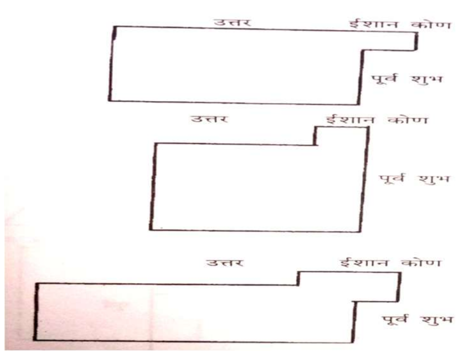

3. उत्तर-पूर्वमेंकटाव

इस दिशा में भूखण्ड का कटाव अशुभ कारी है। ईशान में भूखण्डकटाव के कारण तीन प्रकार का निर्माण संभव हैं। ऐसे भूखण्ड मानसिक चिन्तादायक और उन्नति में बाधक होते हैं।

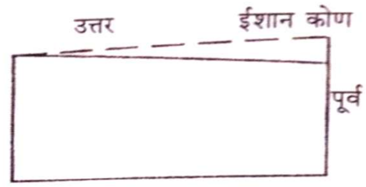

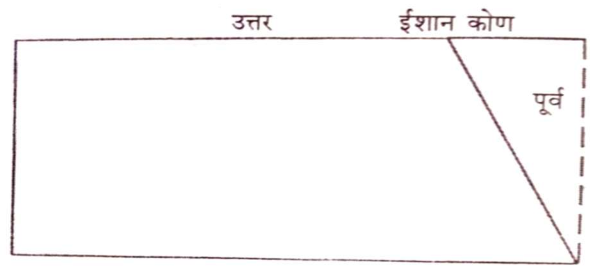

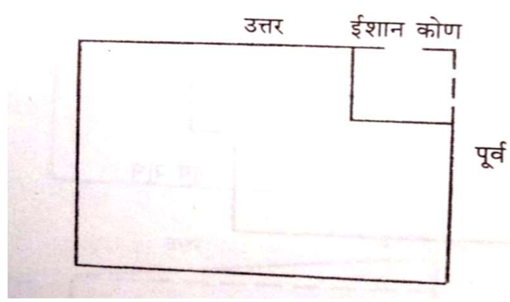

4.उत्तर-पश्चिममेंविस्तार

उत्तर-पश्चिम में भूखण्ड का विस्तार पाँच प्रकार से संभव है पर यह विस्तार अशुभ है। इसकोण में विस्तार होने से गृहनिवासियों को धनहानि और राजनीतिकभय होता है।

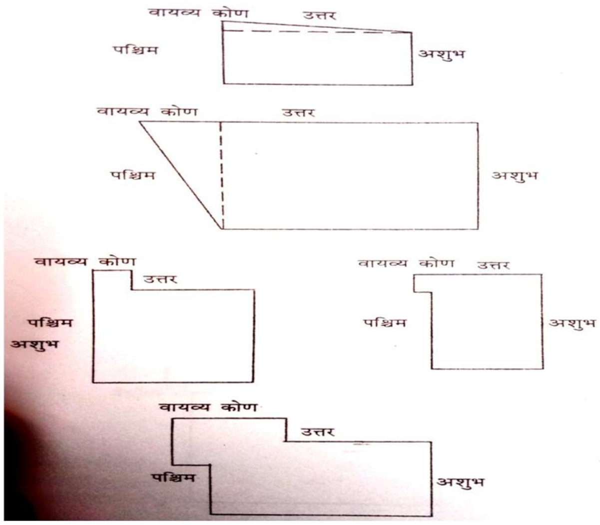

5.उत्तर-पश्चिममेंकटाव

उत्तर-पश्चिम अर्थात्वायव्यकोण में ऐसा कटाव जो ईशान में वृद्धिकारक हो, शुभ होता है, उसके अतिरिक्त कटाव उन्नति और धन में बाधक हैं।

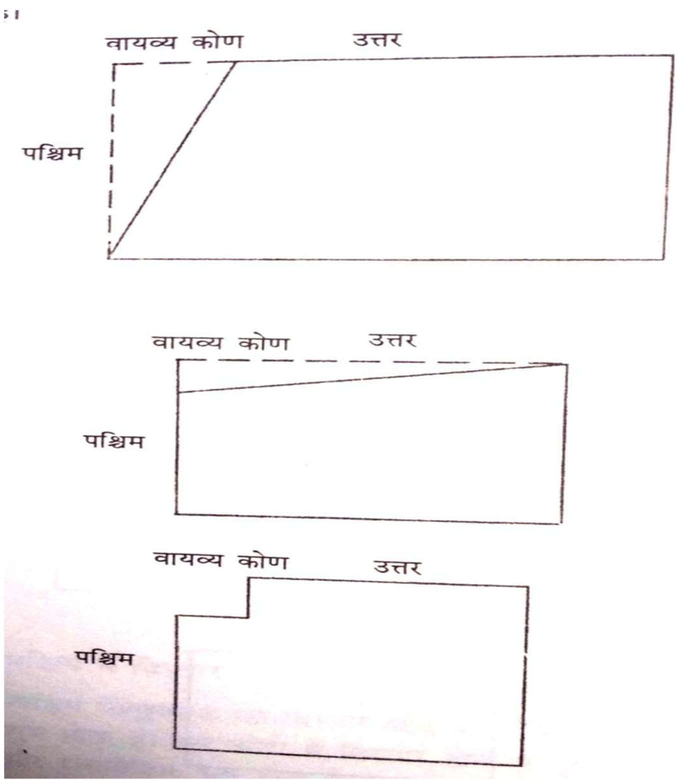

7.दक्षिण-पश्चिममेंविस्तार

दक्षिण-पश्चिम अर्थात्नैऋत्य कोणमें भूमिका विस्तार पाँच प्रकार से संभव है और किसी भी प्रकार का विस्तार इस दिशा में शुभ नहीं हैं। यह विस्तार स्वास्थ्यहानि, पारिवारिक कलह, जैसे अशुभ परिणाम प्रदान करता हैं।

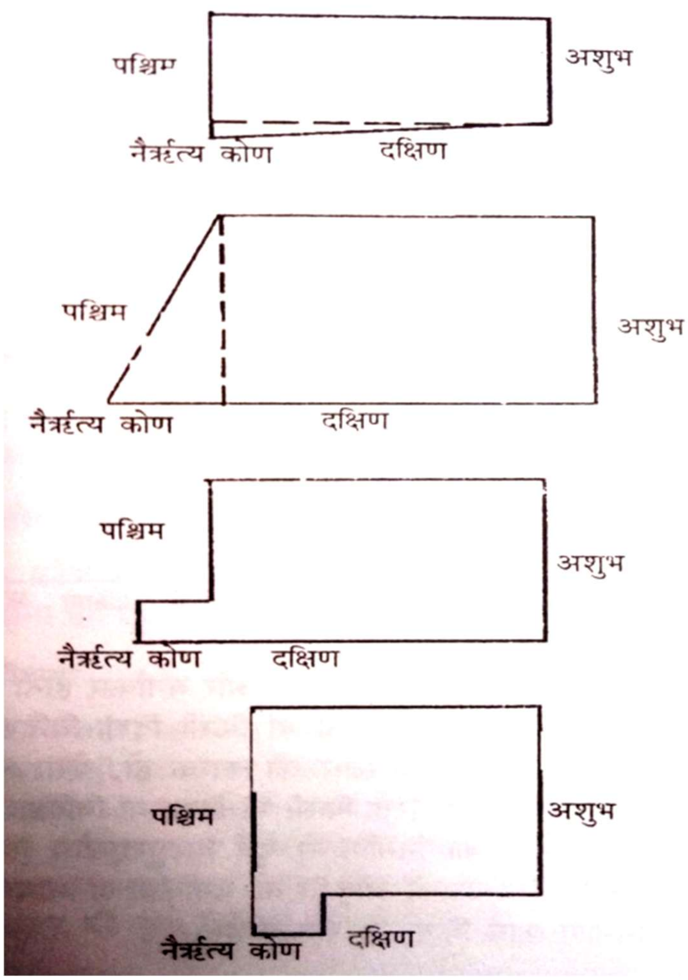

8.दक्षिण-पश्चिममेंकटाव

इस दिशा में किसी भी प्रकार का कटाव शुभ नहीं हैं। इस दिशा में कटाव होने पर व्यक्ति को विवाद, संतति कष्ट और असफलता का सामना करना पड़ता हैं,

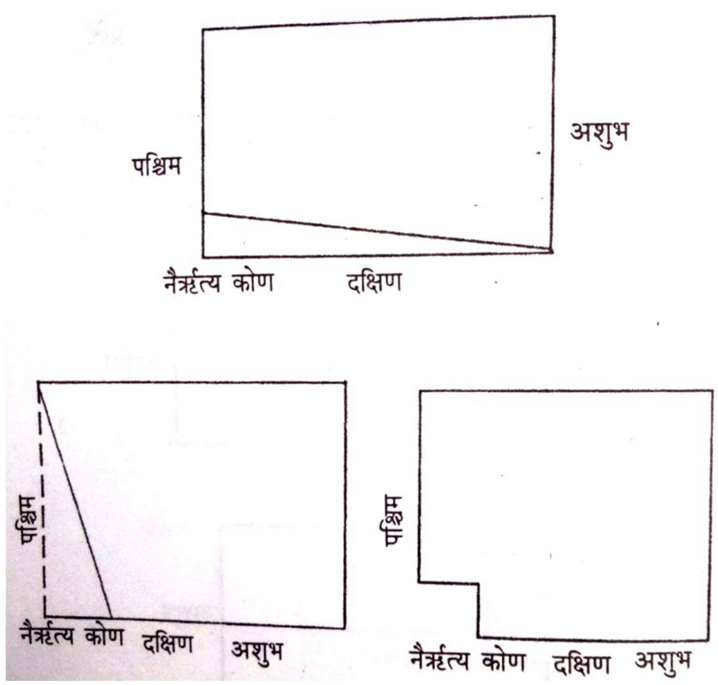

इस प्रकार से भूखण्ड का आयताकार और वर्गाकार होना सर्वोत्तम है परन्तु यदिईशानकोण में विस्तार हो या किसी दिशा-विदिशा में ऐसा कटावहो जो ईशानकोणमें विस्तार का कारक हो, ऐसा भूखण्ड भी निर्माण हेतु शुभ है, इनके अतिरिक्त किसी भी दिशायांविदिशा में विस्तार या कटाव युक्त भूखण्डको निर्माण से पूर्ववास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार उस में सुधारकर उसकी आकृति को वर्गाकार या आयता कार बना कर उस पर निर्माण कार्य किया जा सकता है।

भूखण्डकेकोणोंकामाप

भूखण्ड का चयन करते समय भूखण्ड के कोनों का मापजानना अत्यन्त आवश्यक हैं। जिस भूखण्डके चारों कोण 90^0अंश केहो, वह भवन निर्माण हेतु सर्वोत्तम माना जाता है,

इसके अतिरिक्त भूखण्डके अन्यकोणों के विषय में अग्रलिखित विचार करना चाहिए।

(1) ईशानकोण

इस कोणमें कोने का माप 90^0अंश या उससे कुछ कम शुभ है परन्तु 90^0अंश से अधिक होना हानि कारक हैं।

(2) आग्नेयकोण

इस कोण में कोने का माप 90^0अंश या उससे कुछ अधिक होना शुभ हैं परन्तु 90^0अंश से कम होना हानि कारक हैं।

(3)वायव्यकोण

इस कोण में कोने का माप 90^0अंश से अधिक होना शुभ है परन्तु 90^0अंश से कम होना हानि कारक हैं।

(4)नैऋत्य कोण

इस कोण में कोने का माप 90^0अंश ही होना चाहिए। कम या अधिक होना हानि कारक हैं।

अभ्यास प्रश्न– 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिए –

१. वास्तुशास्त्र का विचार-केन्द्र भवननिर्माण है ।
२. कन्या राशि वालों को ग्राम की उत्तर दिशा में रहना चाहिए ।
३. आरम्भ से ही पृथ्वी सुनियोजित थी।
४. पृथु ने पृथ्वी का सुनियोजन किया था।
५. पृथ्वी सौर- मण्डल की ही इकाई है।
६. निवास हेतु चक्राकार भवन शुभ है।
७. निवास हेतु भद्रासन भवन अशुभ है।
८. दक्षिण-पश्चिम में कटाव शुभ है।

3.4.भूमिशोधन

भवन-निर्माण के लिए जिस भूखण्ड का चयन किया गया है उस भूखण्ड की मिट्टी का घनत्व कैसा हैं? वह खोखली तो नहीं हैं? क्या वह भवन को ठोस आधार देने में सक्षम हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर के रूप में भारतीय वास्तुशास्त्र में भूमि-परीक्षण किया जाता है जिस के माध्यम से मिट्टीका घनत्व जानकर उस के ठोस-पनका अनुमान लगाया जाता हैं। भूमिपरिक्षण की कुछविधियाँ निम्नलिखित है।

- गृहनिर्माण हेतु चयनित भूखण्ड के मध्य भाग में गृहस्वामी के हस्त-परिमाण से एकहाथ गहरा, एकहाथ चौड़ा और एक हाथ लम्बा गड्ढे भर ने से यदि मिट्टी बच जाए तो भूखण्ड गृहनिर्माण के लिए उत्तम, यदि मिट्टी नबचे तो मध्यम और यदि मिट्टी कमपड़जाए तो भूखण्ड को अधम माना जाता है।
- चयनित भूखण्ड के मध्यभाग में स्वामीहस्त परिमाण से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे जल से भर दे। फिर 100 कदम दूर जाकर लौट कर देखें। यदि गड्ढा पूर्ण भरा हो तो शुभ, यदि गड्ढे में आधे से ज्यादा पानी होतो मध्यम तथा यदि पानी आधे से कम हो या सूख जाए तो अशुभ होता है।

- चयनित भूखण्ड के मध्य भाग में गृहस्वामी के हस्त परिमाण से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरागड्ढा खोदकर सायं काल उसे पानी से भर दें। अगले दिन प्रातःकाल देखें, यदि गड्ढे में कुछ पानी बचाहो, तो मध्यम और यदि पानी न हो तथा गड्ढे में दरारें दिखाई दें तो ऐसी भूमिगृहनिर्माण के लिए अशुभ मानी जाती हैं।

- चयनित भूखण्ड पर गृहस्वामी के हस्त परिमाण से एक हाथ लम्बा, चौड़ा और गहरा गड्ढा खोदें। फिर उसमें जल भरें, जल भरने पर यदि गड्ढे का जल स्थिर रहे तो घर में स्थिरता, यदि जलदक्षिण की ओर घूमें तो सुख, यदि जलवामावर्त हो तो भ्रमण तथा शीघ्रसूखजाए तो मृत्युकाभय रहता हैं।

- चयनित भूखण्ड पर किएगएगड्ढे में चार दिशाओं में मिट्टी के चार दीपक जलाकर रखें, उत्तरदिशा के बत्ती की लौस्वच्छ और देरतक प्रज्वलित होने पर वह भूमिब्राह्मण के लिए, पूर्वदिशा का दीपक देर तक जलने पर क्षत्रिय के लिए, दक्षिण दिशा का दीपक देर तक जलने पर वैश्य के लिए और पश्चिमदिशा का दीपक देर तक जल ने पर वह भूमि शूद्र वर्ण के लिए शुभ कही गई हैं।

- एक अन्य विधिके अनुसार सायंकाल गड्ढे में दीपक के स्थान पर सफेद, लाल, पीला और काला फूल क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम दिशा में रखे, अगले दिन प्रातःकाल जो फूल सबसे कम मुरझाया हो उस वर्ण के लिए वह भूमि उत्तम कहीं गई हैं।

- एक अन्य विधि में बताया गया है कि भूमिपरीक्षण के लिए एक पुरुषके आकार जितनी गहराईतक खुदाई करनी चाहिए। यदि खुदाई में चींटी एवं दीमक के बिल, अजगर, साँप, भूसा, हड्डी, कपड़े, राख, कौड़ी, रूई, जलील कड़ी, खप्परया लोहा निकले तो ऐसी भूमि भवननिर्माण के लिए अशुभ मानी जाती हैं।

- भूमि के परीक्षण की एक विधि यह भी है कि जिस भूमि पर खड़े होते ही मन को संतोष और नेत्र कोतृप्ति प्राप्त हो ऐसी भूमि पर भवन निर्माण करना शुभ प्रदहोता हैं कहा गया हैं -

मनसश्चक्षुषोर्यत्रसन्तोषोजायतेभुवि।

तस्यांकार्यगृहंसर्वेरितिगर्गादिसम्मतम्।।

भूमिकेदोष

भूमि का सबसे मुख्य गुण उसका चिकना पन एवं ठोस होना हैं, इसके विपरीत जो मिट्टी रेतीली या पोली हो, जिस भूमि में दरारें हो, चीटियों या दीमक के बिलहो, कब्रिस्तान हो , शल्य हो, दल दल हो, बहुत ऊँची-नीची हो, ऐसी भूमि दोष पूर्णमानी जाती है और भवन निर्माण के लिए प्रशस्त नहीं मानी जाती। भवन निर्माण का आधार भूमि है। भूमिजितनी ठोस, निर्दुष्ट और शुभलक्षणों से युक्त होगी उस भूमि पर बनने वाला भवन भी उतना ही स्थायी, मजबूत और सुखदायक होगा।

अतःवास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में भूखण्ड के परीक्षण की विविध विधियों के अनुसार भूमिपरीक्षण कर के ही शुभलक्षणों से युक्त भूमिका चयन भवन निर्माण के लिए करना चाहिए।

3.4.1. शल्य-निष्कासन

भूमि की गुणवत्ता उसकी दोष शून्यता से है और इन दोषों में से एक दोष शल्य दोष हैं। शल्य युक्त भूमि पर किया गया भवन निर्माण कभी भी शुभ नहीं होता। इस लिए भवन निर्माण से पहले शल्य निष्कासन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में ''शल्योद्धार'' के नाम से वर्णन किया गयाहै। शल्य शब्दका शाब्दिक अर्थ है हड्डी, परन्तु वास्तुशास्त्र में केश, चर्म, कोयला, काष्ठ, भस्म और तुषइन सब का परिगणन भी शल्य के रूप में किया जाता हैं। यदि शल्य युक्त भूमि पर भवन निर्माण किया जाए तो भवन कितना ही भव्य क्यों नहो, भवन में निवास करने वाले लोगों को आजीवन शारीरिक, मानसिक और आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ता हैं। अतःभवन निर्माण से पूर्व भूमि में खनन कर शल्यका निष्कासन करने के पश्चात ही भवन का निर्माण करना चाहिए, और यह खनन जलान्त (खुदाई करते समय जहाँ जल निकल जाए) प्रस्तरान्त (जहाँ बड़ी चट्टान आजाए) अथवा पुरुषान्त ($3\frac{1}{2}$हाथ) नीचेतक ही करना चाहिए। इतनी भूमितक शल्य प्राप्तन होने पर भूमिको निःशल्य मान लिया जाता है, कहा गया है-

जलान्तंप्रस्तरान्तंवापुरुषान्तमथापिवा।

क्षेत्रंसंशोध्यचोद्धृत्यशल्यंसदनमारभेत्।।

इस लिए शल्य निष्कासन का सर्वोत्तम उपाय यह है कि भूखण्ड की मिट्टी को $3\frac{1}{2}$हाथ की गहराई तक खोदकर निकलवादेना चाहिए और उसमें अच्छी मिट्टी तथा पत्थर के मोटेटुकड़े भरवादेने चाहिए। ऐसा करने से मिट्टीपत्थरों के बीच जमकर जम जाती हैं और भूखण्डकाघनत्व बढ़जाता हैं जिससे जमीन में दीमक, बिल, रूई, कपड़ा, राख, भूसा, एवं लकड़ी जैसी चीजें जो जमीन के अन्दर होती हैं उनसब का दोष दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्तशल्य निष्कासन की कईविधियों का वर्णन वास्तु ग्रन्थों में मिलता हैं जो अग्रलिखित हैं।

जिस भूखण्ड पर भवन निर्माणकरना हो, उस भूखण्ड के नौभाग करें ।उन नौंभागों में अ-क-

च-ट-ए-त-श-प्वर्ग पूर्वादिक्रम में लिखे। मध्य में यवर्ग लिखें। स्वस्तिवाचनादिकर ब्राह्मण प्रधानस्थपति से कहे कि वोगृहस्वामी को किसी देवता, फल या वृक्ष का नाम लेने को कहें। गृहपति द्वारा उच्चारित शब्द का प्रथम वर्ण जिसकोष्ठक में हो, भूखण्ड की उसी दिशा में शल्य कहना चाहिए। शल्य-निष्कासन की इस विधि को हम तालिका के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते है – शल्य ज्ञान की एक अन्य विधि के अनुसार, गृहनिर्माण के समय गृहस्वामी प्रधानस्थ पति एवं दैवज्ञ के साथ गृह के अन्दर प्रवेश करें। उस समय गृह स्वामी अपने शरीर के जिस अङ्ग को खुजलाए, वास्तु पुरुष के शरीरावयव विभाग के अनुसार उसी अङ्गमें शल्य होता है। अथवा गृह स्वामी भवनके जिस हिस्से में खड़ा हो जाए, उसी स्थान पर शल्य होता है।

पफबभम**ईशान**	अईउट्टलृ **पूर्व**	कखगघघ **आग्नेय**
शषसह **उत्तर**	यरलव **मध्य**	चछजझव**दक्षिण**
तथदधन**वायव्य**	एऐओऔ **पश्चिम**	टठढडण **नैऋत्य**

एक अन्य विधिके अनुसार, निर्माणाधीन भवन में प्रवेशकरते समय कोई पक्षीसूर्याभिमुख होकर दीप्त दिशामें कठोर स्वर करें तो गृहस्वामी उस समय अपने शरीर के जिस अंगको स्पर्श करे, वास्तु पुरूष के शरीर के उसी अंग में शल्य होता है । दीप्त दिशा के विषय में वर्णन किया गया है, कि सूर्य अपने उदय के बाद पहले प्रहर में पूर्व, द्वितीय प्रहर में आग्नेय, तृतीय प्रहर में दक्षिण और सायं कालतक नैऋत्य में होता है, पुनःरात्रि के प्रथम प्रहर में सूर्य पश्चिम, द्वितीय प्रहर में वायव्य, तृतीय प्रहर में उत्तर तथा चतुर्थ प्रहर में ईशान कोण में होता है,

क्र	प्रश्नकाप्रथमाक्षर	दिशा	शल्यस्थिति	शुभाशुभफल
1	अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ट्ट, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः	पूर्व	मनुष्य की हड्डी डेढ़हाथ नीचे	मृत्युदायक
2	क,ख,ग,घ,घ	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	गधेकीहड्डी, दोहाथनीचे	राजदण्डभय
3	च,छ,ज,झ,	दक्षिण	मनुष्यकीहड्डी, कमरपर्यन्तनीचे	लम्बी बीमारी के बाद मृत्यु
4	ट,ठ,ड,ढ,ण	नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	कुत्तेकीहड्डी, डेढ़हाथनीचे	घर में उत्पन्न बच्चों के लिए मृत्यु कारक
5	त,थ,द,ध,न	पश्चिम दिशा में डेढ़हाथनीचे	बच्चेकीहड्डी, (घरसेबेघर)	गृहच्युत
6	फ,ब,भ,म,	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	भूसी, कोयलाआदिचारहाथनीचे	मित्रनाशवदुःस्वप्न
7	य,व,र,ल	उत्तरदिशा में कमरपर्यन्तनीचे	ब्राह्मणकीहड्डी	निर्धनता
8	श,ष,स	ईशान (उत्तर-पूर्व) में डेढ़हाथनीचे	गायकीहड्डी	गोधननाश
9	पऔरह	मध्यभाग	मानवकपालकीहड्डीवकोश, भस्म, लोहाआदिकमरपर्यन्तनीचे	कुलनाश

सूर्य जिस दिशा का भोग कर चुका है वो अङ्गारिणी, जिस दिशा में रहता है वो दीप्त, उससे आगे धूमिता और शेषदिशाएँ शान्ता कहलाती है दीप्त दिशा के सम्मुख हाथी, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली आदि जो भी पशु शब्द करता है भूमि में उसी जीव की हड्डी होती है और भूखण्ड के जिस भाग पर स्थित हो कर गृह पति शरीर के जिस अङ्ग को स्पर्श करता है। भूखण्ड के उसी भाग में उस जीव के शरीर के उसी अङ्ग का शल्य होता है। एक अन्य विधि के अनुसार भवन निर्माण के समय सूत्र प्रसारण काल में जो जीव सूत्र का लंघन करे उसी जीव की हड्डी भूखण्ड में होती हैं।

शल्य निष्कासन की एक अन्य विधि के अनुसार, प्रश्न के प्रथमा क्षर से शल्य का ज्ञान किया जाता है जिसके अनुसार नौभागों में विभक्तभूमि पर अकारादिवर्णतालिका में दिखाये अनुसार भूखण्ड में शल्य का ज्ञान किया जाता है। जिसे इस तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है।

वास्तुरत्नाकर में शल्यनिष्कासन की एक अन्य विधि का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार भूखण्ड को नौभागों में विभक्तकर पूर्वादि से व,क,च,त,ए,ह,श,पतथा मध्य में या इन वर्णो को स्थापित किया जाताहैं। इसके पश्चात्स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचनकर, इष्टदेव और कुल देव का स्मरणकर, भूमिपूजनकर तीनब्राह्मणों द्वारा ‘‘ऊँधरणीविदारिणीभूत्यैस्वाहा’’इसमन्त्रकातीन-तीनहजारकुल९००० जप करवाकर ब्राह्मणपुष्प का, क्षत्रियनदीका, वैश्या देवता का और अन्य लोग फल का नाम उच्चारित करें, भूस्वामी द्वारा उच्चारित नाम का प्रथम अक्षर जिस कोष्ठक में हो, उसकोष्ठक की दिशा अनुसारशल्य का ज्ञान होता हैं। इसको हम तालिका के माध्यम से ही समझ सकते है -

नामकाप्रथमाक्षर	**दिशा**	**शल्यस्थिति**	**शुभाशुभफल**
व	पूर्व	मनुष्यकीहड्डी, डेढहाथनीचे	मृत्युदायक
क	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	गधेकीहड्डी, कमरपर्यन्तनीचे	राजदण्डभय
च	दक्षिण	बन्दरकीहड्डी, कमरपर्यन्तनीचे	मृत्यु
त	नैऋत्य (दक्षिण-	घोड़ेकीहड्डी, डेढ़हाथनीचे	धननाश

	पश्चिम)		
ए	पश्चिम	बच्चेकीहड्डी, डेढ़हाथनीचे	गोधननाश
स	उत्तर	ब्राह्मणकीहड्डी, कमरपर्यन्तनीचे	निर्धनता
य	ईशान (उत्तर-पूर्व)	भालूकीहड्डी, डेढ़हाथनीचे	गोधननाश
प	मध्यभाग	मानवकपालकीहड्डीवकेश, भस्म, शल्यहृदयपर्यन्तनीचे	कुलनाश

वास्तु शास्त्रीयग्रन्थों में विविधप्रकार के शल्यों का शुभाशुभफल भी वर्णित हैं। यथा-

शल्यंगवांभूपभयंहयानांरूजंशुनोत्वोःकलहप्रनाशौ।

खरोष्ट्रयोर्हानिमपत्यनाशंस्त्रीणामजस्याग्निभयंतनोति।।

अर्थात् गौ की हड्डी होने पर राज भय, घोड़े की हड्डी होने पर रोग भय, कुत्ते की हड्डी से कलह व विनाश भय, गधे और ऊँट की हड्डी से हानि वसंततिनाश भय तथा बकरे की हड्डी से अग्नि भय होता हैं।

इस प्रकार से शल्य निष्कासन वास्तु ग्रन्थों में वर्णित एक अनिवार्य प्रक्रिया है जिसको आधुनिक समय में भवन निर्माण में अनदेखा किया जाताहै जिसकारण से भव्य भवनों में रहने वाले लोग भी वास्त विकसुख, समृद्धि और शान्ति से वंचित है अतः भवन निर्माण से पूर्व भूमि मे से शल्यनिष्कासन अवश्य करना चाहिए और शल्य निष्कासन के पश्चात ही भूमिशोधन होने पर भवन निर्माण करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न - 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. भू-शोधन हेतु ---------हाथ गहरा गड्ढा खोदा जाता है

2. गड्ढेमें जल का दक्षिणावर्त होना -------- है
3. सूर्यावस्थित दिशा की संज्ञा -------- है
4. भूमि में गौ के शल्य का फल ----------है
5. भूमि में बकरे के शल्य का फल ---------है

3.5. सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि भवन-निर्माण के लिए कौन सी भूमि का चयन किया जाए ।सर्वप्रथम निवास हेतु काकिणी-विचार के माध्यम से ग्राम का चयन किया जाता है, तदनन्तर भूमि-चयन किया जाता है।गुणवत्ता के आधार पर भूमि के ब्राह्मण-क्षत्रिया-वैश्या-शूद्रादि चार विभाग किए गये है, भूमि की गुणवत्ता को गजपृष्ठादि और वीथियों के माध्यम से बताया गया है। निवास हेतु चयनित भूखण्ड के विविध आकार और उनके शुभाशुभ फल का वर्णन किया गया है। भूखण्ड का विविध दिशाओं में विस्तार और कटाव भी भूखण्ड पर निवास करने वाले लोगो को शुभाशुभ फल को प्रदान करता है ।इस शुभाशुभ फल को भी हमने प्रस्तुत इकाई में हमने जाना। भूमि-चयन के अनन्तर भूमि-परिक्षण की विविध विधियाँ बताई गई है। चयनित भूखण्ड पर गृह स्वामी के हस्त परिमाण के तुल्य लम्बा,चौडा और गहरा गड्डा खोदकर उसको जल से भरकर भूमि-परीक्षण का वर्णन किया गया है। तदनन्तर भूमि के अन्तर्गत शल्य का विचार किया गया है। विविध विधियों के माध्यम से शल्यनिष्कासन की प्रक्रिया बताई गई है। शल्य के विविध शुभाशुभ फल भी प्रस्तुत इकाई में हमने जाने। इस प्रकार से गृह-निर्माण से पूर्व इन सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए ग्राम-चयन,भूमि-चयन,भूमि-परीक्षण और शल्यनिष्कासन करना अत्यन्त आवश्यक है तांकि गृह में निवास करने वाले लोगो का जीवन सुखी,समृद्द और सुरक्षित हो सके।

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

1) ईशान कोण – पूर्व-उत्तर दिशा

2) आग्नेय कोण – पूर्व-दक्षिण दिशा

3) नैऋत्य कोण –दक्षिण-पश्चिम दिशा

4) वायव्य कोण –पश्चिम-उत्तर दिशा

5) काकिणी -- निवास हेतु किस ग्राम का चयन किया जाए, ग्राम की शुभाशुभता जानने के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता है। उस विधि को काकिणी विचार कहते है।

6)पृष्ठ– विविध विदिशाओ में भूखण्ड की उ ँचाई और नीचाई के फलस्वरूप भूखण्ड की पृष्ठादि विविध स ँज्ञाए ँ है।

7)वीथी – भूखण्ड की विविध दिशाओ में ढलान के फलस्वरूप भूखण्ड की गौ-वीथी आदि विविध स ँज्ञाए ँ है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

१) सत्य २)असत्य ३) असत्य ४) सत्य ५) सत्य ६) असत्य ७) असत्य ८) असत्य

अभ्यास प्रश्न– २ की उत्तरमाला

१) एक २)शुभ ३) दीप्त ४) राजभय ५) अग्निभय

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

ख) बृहद्वास्तुमाला, सं० रामनिहोर द्विवेदी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – २००१

ग) वास्तुरत्नाकर:, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

घ) राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् , सं० श्रीकृष्ण जुगनू , परिमल पब्लिकेशन,दिल्ली,२००५

ङ) समराङ्गणसूत्रधार:, सं० एवं अनु०पुष्पेन्द्र कुमार , न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन , दिल्ली -२००४

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

3.9 सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

१) भूमिचयन पर एक विस्तृत निबन्ध लिखें।

२) काकिणी विचार का विस्तार से वर्णन करें।

३) भूमि के विविध भेदों का विस्तार से वर्णन करें।

४) गजपृष्ठादि भूमियों का वर्णन करें ।

५) भूखण्ड की विविध आकृतियों पर निबन्ध लिखें।

६) भूपरीक्षण पर निबन्ध लिखें।

७) शल्यनिष्कासन पर निबन्ध लिखें।

इकाई – 4 खात, वास्तु पद विन्यास पिण्ड निर्माण एवं द्वार न्यास

इकाई की संरचना

4.1प्रस्तावना

4.2उद्देश्य

4.3खात-निर्णय

4.3.1वास्तुपदविन्यासविमर्श

4.4 पिण्डसाधन

4.4.1द्वारविन्यास

4.5सारांश

4.6पारिभाषिक शब्दावली

4.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9सहायक पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते है कि वास्तुशास्त्र भवन निर्माण से सम्बन्धित शास्त्र है। इसमें भवन के विविध अङ्गों के निर्माण की वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना की गई है। विगत इकाईयों में आपने वास्तुशास्त्र के विविध विषयों को जाना। प्रस्तुत इकाई में आप खात,वास्तुपदविन्यास,पिण्डसाधन एवं द्वार-विन्यास के विषय में अध्ययन करेंगे। वस्तुतःभवन निर्माण के आरम्भ का प्रथम सोपान खात ही है। भवन निर्माण के समय शिलान्यास के लिए सर्वप्रथम खात किया जाता है। खात कब किया जाए ? खात किस दिशा में किया जाए ? खात की गहराई कितनी होनी चाहिए? इत्यादि विषयों को आप प्रस्तुत इकाई में पढेंगे। तदनन्तर वास्तुपदविन्यास की चर्चा की जाएगी। भूखण्ड पर विविध देवों का विन्यास किस प्रकार किया जाए? किस दिशा में किस देवता का पद होगा? इत्यादि विषयों की चर्चा आप प्रस्तुत इकाई में की जाएगी । तदनन्तर पिण्डसाधन की चर्चा होगी। पिण्ड से अभिप्रायः है क्षेत्र। भूखण्ड के कितने भाग पर भवन का निर्माण होगा, इन विषयों पर पिण्डसाधन में विचार किया जाएगा। द्वार-विन्यास में गृह के मुख्य द्वार और अन्य द्वारों की दिशा, लम्बाई,चौडाई आदि के विषय में आप पढेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ❖ खात-निर्णय करने में समर्थ हो सकेंगे।
- ❖ वास्तुपदविन्यास के मर्म को जान सकेंगे। ।
- ❖ वास्तुपदविन्यासकरने में सक्षम हो पायेंगे।
- ❖ पिण्डादिसाधन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- ❖ द्वार-निर्णय करने में समर्थ हो सकेंगे।

4.3 खात- निर्णय

वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में भूखण्ड में खात-निर्णय का विचार दो स्थानों पर किया गया है। जैसा कि आप जानते है कि भवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक भूखण्ड होता है। भूखण्ड के चयन के बादसर्वप्रथम भूमि का परीक्षण किया जाता है और भूमि-परीक्षण के लिए भूखण्ड में खात किया जाता है।शिलान्यास के लिए भी भूखण्ड में खात किया जाता है , प्रस्तुत इकाई में इसी खात के निर्णय के सम्वन्ध में चर्चा की जाएगी । शिलान्यास के समय भूखण्ड में खात किस दिशा में किया

जाए ? इस सम्वन्ध में वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में व्यापक चर्चा की गई है।" **राहुमुख-पुच्छ विचार** "नामक प्रकरण के अनुसार प्रत्येक भूखण्ड पर सर्पाकार राहु अपने शरीर को फैलाए हुए स्थित है। सूर्य के राशिचार के अनुसार इस सर्पाकार राहु की स्थिति में परिवर्तन होता रहता है, अतः सर्पाकार राहु की स्थिति ज्ञात कर खनन के समय इसके शरीर के अंगों पर प्रहार करने से बचना चाहिए क्योंकि इसके शरीर पर किए गए प्रहारों के कारण गृहस्वामी को विविध अशुभ फलों की प्राप्ति होती है यथा नाग के सिर पर प्रहार से मातृ-पितृ क्षय, पूंछ पर प्रहार से रोग,पीठ पर प्रहार से हानि एवं भय , कुक्षि पर प्रहार से पुत्र-धान्यादि लाभ होता है। यथोक्तम्-

शीर्षे मातृपितृक्षयः प्रथमतो खाते रुजः पृच्छके ।
पृष्ठे हानिर्भयःच कुक्षिखनने स्यात् पुत्रधान्यादिकम् "।।

अतःभूखण्ड के सदैव उसी भाग में खनन श्रेयस्कर होता है जिस भाग में नाग का कुक्षि हो। गृहनिर्माण, देवालय निर्माण और जलाशय निर्माण में नाग के मुख में भिन्नता होती है । जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। राहु का मुख-पुच्छ विचार गृहनिर्माण, देवालय निर्माण और जलाशय निर्माण में इस प्रकार से है-

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशिविलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्।।

गृहनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार –

जब सूर्य की स्थिति वृष,मिथुन एवं कर्क राशि में होती है , तो राहु का मुख आग्नेय कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति सिंह,कन्या एवं तुला राशि में होती है तो राहु का मुख ईशान कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति वृश्चिक, धनु एवं मकर राशि में होती है तो राहु का मुख वायव्य कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति कुम्भ, मीन एवं मेष राशि में होती है तो राहु का मुख नैऋत्य कोण में रहता है। जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। यथा- वृष,मिथुन एवं कर्क राशि में सूर्य के रहने पर नाग का मुख आग्नेय कोण में, पीठ ईशान कोण में,और पुच्छ वायव्य में रहती है अतः खनन हेतु उपयुक्त स्थान नैऋत्य कोण है । जब नाग का मुख ईशान कोण में होगा, तो पुच्छ नैऋत्य कोण में रहती है अतः खनन की दिशा आग्नेय कोण होगी। जब नाग का मुख वायव्य कोण में होगा, तो पुच्छ आग्नेय कोण में रहती है अतः खनन की दिशा ईशान कोण होगी। जब नाग का मुख नैऋत्य कोण में होगा, तो पुच्छ ईशान कोण में रहती है अतः खनन की दिशा वायव्य कोण होगी। इसको हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

गृहनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार

सूर्य का राशिचार	राहु-मुख की स्थिति	राहु-पुच्छ की स्थिति	खात की दिशा
वृष,मिथुन एवं कर्क	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण
सिंह,कन्या एवं तुला	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	आग्नेय कोण
वृश्चिक, धनु एवं मकर	वायव्य कोण	आग्नेय कोण	ईशान कोण
कुम्भ, मीन एवं मेष	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	वायव्य कोण

देवालयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार -

जब सूर्य की स्थिति धनु,मकर,कुम्भ राशि में होती है तो राहु का मुख आग्नेय कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मीन,मेष एवं वृष राशि में होती है तो राहु का मुख ईशान कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मिथुन,कर्क एवं सिंह राशि में होती है तो राहु का मुख वायव्य कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति कन्या,तुला एवं वृश्चिक राशि में होती है तो राहु का मुख नैऋत्य कोण में रहता है। जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। यथा- वृष,मिथुन एवं कर्क राशि में सूर्य के रहने पर नाग का मुख आग्नेय कोण में, पीठ ईशान कोण में,और पुच्छ वायव्य में रहती है अतः खनन हेतु उपयुक्त स्थान नैऋत्य कोण है । जब नाग का मुख ईशान कोण में होगा, तो पुच्छ नैऋत्य कोण में रहती है अतः खनन की दिशा आग्नेय कोण होगी। जब नाग का मुख वायव्य कोण में होगा, तो पुच्छ आग्नेय कोण में रहती है अतः खनन की दिशा ईशान कोण होगी। जब नाग का मुख नैऋत्य कोण में होगा, तो पुच्छ ईशान कोण में रहती है अतः खनन की दिशा वायव्य कोण होगी। इसको हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

देवालयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार

सूर्य का राशिचार	राहु-मुख की स्थिति	राहु-पुच्छ की स्थिति	खात की दिशा
धनु,मकर एवं कर्क	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण
सिंह,कन्या एवं तुला	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	आग्नेय कोण
वृश्चिक, धनु एवं मकर	वायव्य कोण	आग्नेय कोण	ईशान कोण
कुम्भ, मीन एवं मेष	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	वायव्य कोण

जलाशयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार –

जब सूर्य की स्थिति तुला,वृश्चिक,धनु राशि में होती है तो राहु का मुख आग्नेय कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मकर,कुम्भ,मीन राशि में होती है तो राहु का मुख ईशान कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मेष,वृष, मिथुन राशि में होती है तो राहु का मुख वायव्य कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति कर्क,सिंह,कन्या राशि में होती है तो राहु का मुख नैऋत्य कोण में रहता है। जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। यथा- तुला,वृश्चिक,धनु राशि में सूर्य के रहने पर नाग का मुख आग्नेय कोण में, पीठ ईशान कोण में,और पुच्छ वायव्य में रहती है अतः खनन हेतु उपयुक्त स्थान नैऋत्य कोण है । जब नाग का मुख ईशान कोण में होगा, तो पुच्छ नैऋत्य कोण में रहती है अतः खनन की दिशा आग्नेय कोण होगी। जब नाग का मुख वायव्य कोण में होगा, तो पुच्छ आग्नेय कोण में रहती है अतः खनन की दिशा ईशान कोण होगी। जब नाग का मुख नैऋत्य कोण में होगा, तो पुच्छ ईशान कोण में रहती है अतः खनन की दिशा वायव्य कोण होगी। इसको हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

जलाशयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार

सूर्य का राशिचार	राहु-मुख की स्थिति	राहु-पुच्छ की स्थिति	खात की दिशा
तुला,वृश्चिक एवं धनु	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण
मकर,कुम्भ एवं मीन	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	आग्नेय कोण
मेष,वृष एवं मिथुन	वायव्य कोण	आग्नेय कोण	ईशान कोण
कर्क,सिंह एवं कन्या	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	वायव्य कोण

इस प्रकार से राहु के मुख-पुच्छ विचार के माध्यम से शिलान्यास हेतु खात की दिशा का विचार किया जाता है। गृहनिर्माण,देवालयनिर्माण और जलाशयनिर्माण में विविध मासों में राहु के मुख-पुच्छ का सम्यक् विचार कर पूर्वोक्त खात की दिशा में ही खनन करना चाहिए। खात के बाद आग्नेय कोण में ही शिलान्यास करना चाहिए। यथोक्तम्-

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमम्

शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः।।

4.3.1. वास्तुपदविन्यासविमर्श

खात और शिलान्यास के बाद भूखण्ड पर वास्तुपदविन्यास किया जाता है। वास्तुपदविन्यास किसी भी निर्माण का एक मौलिक अंग है। पदविन्यास से अभिप्रायः वास्तुभूमि पर देव-विन्यास से है। आधुनिक काल में वास्तुपदविन्यास को रेखाचित्र अथवा साईटप्लेनिंग के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः भारतीय स्थापत्य का आधार यज्ञ-वेदी है। भूमि-चयन, भूमि-शोधन और इष्टिका चयन यज्ञ-वेदी निर्माण के पूर्व कृत्य है । कालान्तर में इन्हीं कृत्यों का अनुसरण भवन निर्माण में भी होने लगा। भारतीय वास्तुकला प्रारम्भ से ही धर्मनिष्ठ रही है। जिसके दर्शन हमे वैदिक युग के वास्तोष्पति और पौराणिक युग के वास्तुपुरुष के रुप में होते है। वेदों में वास्तोष्पति की स्तुति वास्तु के रक्षक और पालक देव के रुप में की गई है। जो महत्व वैदिक युग में वास्तोष्पति को दिया गया है, वहीं महत्व पौराणिक साहित्य में वास्तुपुरुष को प्राप्त है। गृह,मन्दिर,दुर्ग,ग्राम,नगर,ताडाग आदि के निर्माण में सर्वप्रथम वास्तुपुरुष का ही पूजन किया जाता है। इसलिए किसी भी भवन के निर्माण से पूर्व वास्तुमण्डल का निर्माण किया जाता है और उस मण्डल में वास्तुपुरुष की प्रतिष्ठा की जाती है। वास्तुपुरुष में विन्यस्त 45 देवों का उस वास्तुपदमण्डल में आवाहन तथा पूजन किया जाता है। तदनन्तर वास्तुपदमण्डल के अनुसार ही भूमि पर वास्तुपदविन्यास किया जाता है।

वस्तुतः वास्तुपदविन्यास के माध्यम से भूखण्ड का निर्माण हेतु विभाजन किया जाता है। पदविन्यास के लिए सर्वप्रथम दिक् साधन किया जाता है, तदनन्तर सम्पूर्ण भूखण्ड पर वास्तुपुरुष का विन्यास किया जाता है। ईशान कोण में वास्तुपुरुष का सिर, नैऋत्य कोण में पैर, आग्नेय और वायव्य में हाथ प्रतिष्ठित होते है। वास्तुपुरुष की प्रतिष्ठा पृथ्वी पर अधोमुखी की जाती है। अग्निदेव की प्रतिष्ठा शिर पर, वरुण की मुख पर, अदिति की नेत्रों पर, जयन्तादि की कानों पर, सूर्य तथा चन्द्र की दक्षिण और वाम भुजा पर , आपवत्स- महेन्द्र और चरक इन तीन देवों की प्रतिष्ठा वक्षस्थल पर, अर्यमा और पृथ्वीधर की प्रतिष्ठा दक्षिण और वामस्तन पर की जाती है। यक्ष्मा- रोग- नाग- मुख्य और भल्लाट इन पाँच देवों की स्थापना वाम भुजा पर, सत्य- भृश- नभ- वायु और पूषादि पाँच देवों की स्थापना दक्षिण भुजा पर की जाती है । वास्तुपुरुष के हाथो पर सावित्र- रुद्र और शक्तिधरादि प्रतिष्ठित होते है। हृदय पर ब्रह्मा , दक्षिण कुक्षि पर शोष और असुर की प्रतिष्ठा होती है । वास्तुपुरुष के उदर पर मित्र और विवस्वान् , लिंग पर जय और इन्द्र , दक्षिण उरु पर यम, वाम उरु पर वरुण की स्थापना की जाती है । मृग- गन्धर्व और भृश की प्रतिष्ठा दक्षिण जंघा पर ,दौवारिक सुग्रीव

और पुष्प देवों की प्रतिष्ठा वाम जंघा पर तथा पितृगणों की प्रतिष्ठा चरणों पर की जाती है ।इस देव विन्यास को हम इस चित्र के माध्यम से समझ सकते है -

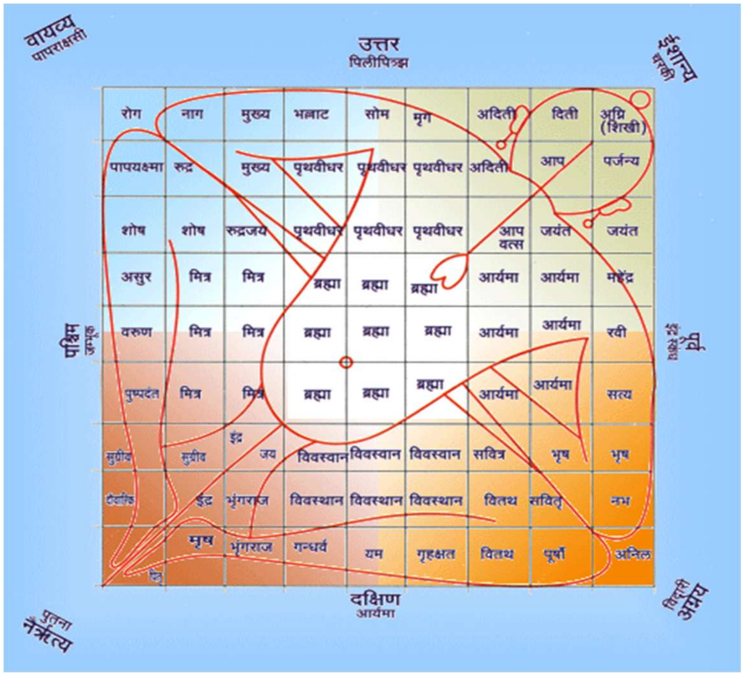

वास्तशास्त्रीयग्रन्थों में कुल 32 वास्तुपदविन्यासमण्डलों का वर्णन किया गया है, परन्तु इनमें से चतुष्षष्टिपदवास्तु,एकाशीतिपदवास्तु और शतपदवास्तु ये तीन ही मुख्य रुप से प्रयोग किये जाते है।

चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल

इसमें 64 पद होते है , इसके निर्माण के लिए के लिए पूर्वापरा और दक्षिणोत्तरा 9-9 रेखाएँ खींची जाती है। दो तिरछी रेखाएँ कोणों से खींची जाती है ,मध्य के चार पदों में ब्रह्मा की प्रतिष्ठा की जाती है ।ब्रह्मा से चारों कोणों में आप- आपवत्स- सविता- सवित्र- इन्द्र -जयन्त- राजयक्ष्मा और रुद्र आदि आठ देवता, कोणों में शिखि- अन्तरिक्ष- अनिल- मृग- पिता- पापयक्ष्मा- रोग- दित्यादि आठ देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है। ये सभी देव आधे -आधे पद के स्वामी होते है। इन देवताओं के दोनों तरफ पर्जन्य- भृश- पूषा- भृंगराज- दौवारिक- शोष- नाग -अदिति आदि देव प्रतिष्ठित होते है, जो डेढ पदों का भोग करते है। जयन्त- इन्द्र- सूर्य- सत्य –वितथ- बृहत्क्षत- यम- गन्धर्व- सुग्रीव- कुसुमदन्त- वरुण- असुर- मुख्य- भल्लाट-सोम- भुजग- अर्यमा- विवस्वान्- मित्र और पृथ्वीधर दो-दो पदों के स्वामी होते है, चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

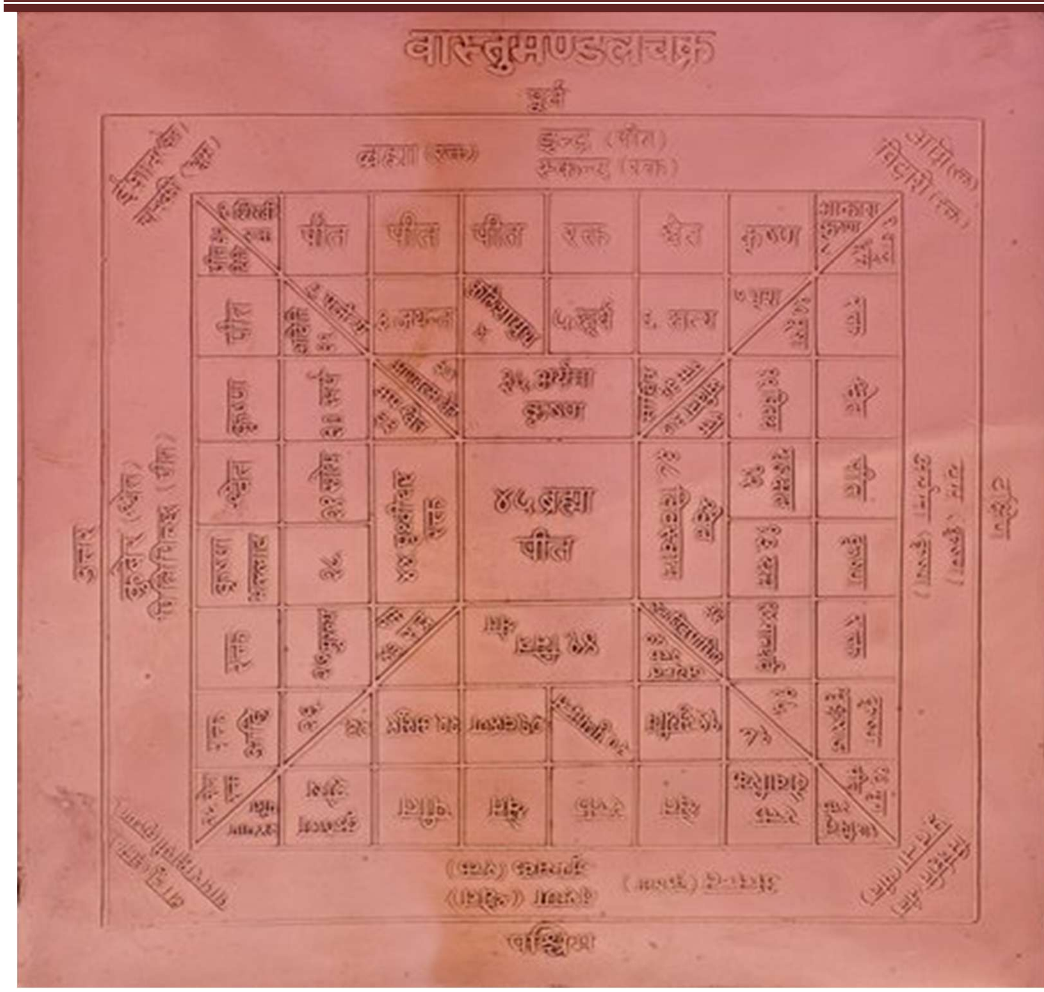

एकाशीतिपदवास्तुमण्डल

इस वास्तुपदमण्डल में कुल इक्यासी पद होते है, इसके निर्माण के लिए दस-दस रेखाएँ खींची जाती है। इस मण्डल के मध्य के तेरह पदों में तेरह देवता और बाहर के पदों में 32 देवों की प्रतिष्ठा की जाती है ।इस प्रकार से इस वास्तु क्षेत्र में कुल 45 देवों की प्रतिष्ठा की जाती है। चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

East

North

1 ईश	2 पर्जन्य	3 जयंत	4 इंद्र	5 सूर्य	6 सत्य	7 भृश	8 आकाश	9 वायु
32 दिति	33 आप	33 आप	37 मरीची	37 मरीची	37 मरीची	34 सावित्री	34 सावित्री	10 पूषा
31 अदिति	44 आपयत्स	44 आपयत्स	37 मरीची	37 मरीची	37 मरीची	38 सविता	38 सविता	11 वितय
30 सर्प	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवस्वान	39 विवस्यान	12 वृहत्क्षत
29 सोम	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवस्वान	39 विवस्यान	13 यम
28 भल्लाट	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवस्वान	39 विवस्यान	14 गंधर्व
27 मुख्य	42 रुद्र	42 रुद्र	41 मित्र	41 मित्र	41 मित्र	40 विष्णु	40 विष्णु	15 भृंगराज
26 अठि	36 शेष	36 शेष	41 मित्र	41 मित्र	41 मित्र	35 इंद्रजय	35 इंद्रजय	16 मृग
25 रोग	24 पापयक्ष्मा	23 शेष	22 असुर	21 वरुण	20 पुष्पदंत	19 सुग्रीव	18 दौवारिक	17 पितृ

South

West

www.vaastuved.com

इसके अतिरिक्त शतपदवास्तुमण्डल और सहस्त्रपदवास्तुमण्डलादि अनेक वास्तुपदविन्यासमण्डलों की चर्चा अनेक वास्तुशास्त्रीयग्रन्थों में प्राप्त होती है। इनमें से समसंख्यक पदमण्डलों का विन्यास चतुष्षष्टिवास्तुपदमण्डल के समान तथा विषम संख्यकपदमण्डलों का निर्माण एकाशीतिवास्तुपदमण्डल के समान ही किया जाता है। इन वास्तुपदमण्डलों का प्रयोग भवन की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। शतपदवास्तुमण्डल और सहस्त्रपदवास्तुमण्डल को पुरनिवेश में प्रशस्त माना जाता है। चतुष्षष्टिवास्तुपदमण्डल, एकाशीतिवास्तुपदमण्डल और षोडशपदवास्तु का उपयोग भवननिवेश तथा पुरनिवेश दोनो ही में किया जाता है। प्रासाद निर्माण में

चतुषष्टिवास्तुपदमण्डल को प्रशस्त कहा है ।कुछ आचार्यों के मत में प्रासाद निर्माण में शतपदवास्तुपदमण्डल भी प्रशस्त है।

अभ्यास प्रश्न :-

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिये –

1) राहुमुख-पुच्छ का विचार खात-निर्णय में होता है।
2) नाग की पूंछ पर प्रहार से लाभ होता है ।
3) शिलान्यास सदैव वायव्य कोण में होता है।
4) वास्तुमण्डल में देवताओं की संख्या 45 होती है।
5) चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल में कुल 81 पद होते है।
6) एकाशीतिपदवास्तुमण्डल में ब्रह्मा के 4 पद होते है ।

4.4 पिण्डसाधन

भूखण्ड पर राहु मुख-पुच्छ विचार ,शिलान्यास और वास्तुपदविन्यास संकल्पना के बाद भूखण्ड पर पिण्ड-साधन किया जाता है । जिस भूमि पर भवन निर्माण करना अभीष्ट हो, उस भूमि के समस्त माप अर्थात् लम्बाई * चौडाई द्वारा प्राप्त क्षेत्रफल को पिण्ड कहा जाता है। अन्तर केवल इतना है कि जिस भूखण्ड को गृहस्वामी क्रय करता है, उस भूमि की सम्पूर्ण माप को क्षेत्रफल तथा भवननिर्माण के निमित्त नींव खोदकर जो दीवाल बनाई जाती है, उस भाग को त्यागकर चार दीवारी के अन्दर जो भूखण्ड प्राप्त होता है। जिसमें आन्तरिक सभी उपयोगी प्रकोष्ठों का निर्माण करवाया जाता है, नींव रहित भूभाग का वह माप ही पिण्ड कहलाता है । शब्दकल्पद्रुम में पिण्ड शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि **"पिण्डते संहतो भवतीति पिण्डम्"** अर्थात् पिण्ड में समाहित माप की अभिव्यक्ति ही पिण्ड कहलाती है ।

पिडि संहतौ धातु से अच् प्रत्यय करके पिण्ड पद का निर्माण होता है ।**पिण्डयते राशिक्रियतेति(कर्मणि घञ्) पिण्डम्** अर्थात् लम्बाई – चौडाई के माप को एक राशि में समाहित करना ही पिण्ड है ।पिण्ड साधन का वास्तुशास्त्र में अत्यधिक महत्व है। पिण्ड साधन की चर्चा

लगभग सभी वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होती है। पिण्ड साधन का सूत्र इस प्रकार है –

रूपाष्टकैर्विनिहतो भवनस्य बन्धः कर्तुः स्वमृक्षमिह युग्मशरैकनिघ्नम् ।

एकीकृतं रसनिशाकरयुग्ममुक्तं शेषं ततो भवति पिण्डपदं गृहस्य ।।

अर्थात् [(आय * 81) + (नक्षत्र * 152) / 216] = पिण्ड

पूर्वोक्त सूत्र द्वारा आनीत अंकात्मक राशि को ही पिण्ड कहा जाता है। जिस प्रकार से वर-वधू का मिलान किया जाता है , ठीक उसी प्रकार से गृह तथा गृहस्वामी के नक्षत्र द्वारा भी गुण-मिलान किया जाता है। विवाह मेलापक में समान नाडी अशुभ मानी जाती है , परन्तु वास्तु मेलापक में एक समान नाडी ही शुभ मानी जाती है । गृह मेलापक में गृह एवं गृहस्वामी का एक ही नक्षत्र होना अशुभ माना जाता है । अतः एक ही नक्षत्र दोनो का ग्रहण नही करना चाहिए, नाडी एक होना प्रशस्त है।

पिण्ड साधन करने में इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय अत्यावश्यक है, अतः इनके विषय में जान लेना भी आवश्यक है। गृहस्वामी के नाम के प्रथमाक्षर से उसका नक्षत्र ज्ञात हो जाता है और गृह का नक्षत्र अपनी इच्छा से कोई भी चुन लिया जाता है । मेलापक विधि द्वारा गृहस्वामी के अनुकूल नक्षत्र का ही ग्रहण करना चाहिए । वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में कुल 9 नक्षत्रों में से ही गृह का नक्षत्र गृहस्वामी के अनुकूल चुनने की आज्ञा है । वे 9 नक्षत्र इस प्रकार है –

आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्य आश्लेषा च मघा भगः।

जलपाऽजपादहिर्बुध्न्य भानीष्टानि गृहे नव ।।

गृहपिण्ड बनाने में आर्द्रा, पुनर्वसु. पुष्य,आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, शतभिषा , पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ये 9 नक्षत्र ही शुभ होते है। अतः गृहस्वामी के अनुकूल इनमें से किसी एक नक्षत्र को चुन कर पिण्ड साधन किया जाता है। पिण्ड साधन में प्रयुक्त होने वाला दूसरा उपकरण आय है । आय आठ प्रकार की होती है जो इस प्रकार है-

ध्वजो धूम्रो हरिश्वौ गोःखररेभो वायसोऽष्टमः।

पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः।।

पूर्वादि दिशाओं के क्रम से आठों दिशाओं में ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, गौ, गधा, गज, तथा कौआ आय मानी गई है। जिसका फल इस प्रकार है –

ध्वजे बहुधनं प्रोक्तं धूम्रे चैव भ्रमं भवेत् ।

सिंहे च विरला लक्ष्मीःश्वाने च कलहं भवेत् ।।

धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम् ।

गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वस्य शून्यता ।।

इस प्रकार से ध्वज,सिंह,वृष और गज आय शुभ है । किसी भी भवन की आय के ज्ञान हेतु भवन की लम्बाई को चौडाई से गुणा कर आठ से भाग देने पर जो शेष बचे, वह आय कहलाती है। एक अन्य विधि वर्ग-काकिणी है, जिसके माध्यम से भी भूमि सम्बन्धी शुभाशुभ विचार किया जाता है, पूर्वादिक्रम से आठ वर्गों की आठ दिशाएँ तथा क्रम से ही गरुड,मार्जार,सिंह,श्वान,सर्प,मूषक,गज तथा शशक इनके स्वामी होते है। अपने वर्ग से पंचम वर्ग वाले स्वामी आपस में शत्रु होते है।अतः शत्रु दिशा के वर्ग में गृह नहीं बनाना चाहिए । इस वर्ग विचार को हम इस चक्र के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते है-

वर्ग-चक्र

वर्ग संख्या	अवर्ग	कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग	यवर्ग	शवर्ग
वर्ग स्वामी	गरुड	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	गज	शशक
वर्ग दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

इन आठ वर्गों के वर्गाक्षर इस प्रकार है-

अवर्ग- अ,इ,उ,ऋ,ए,ऐ,ओ,औ

कवर्ग- क,ख,ग,घ,ङ

चवर्ग- च,छ,ज,झ,ञ

टवर्ग- ट,ठ,ड,ढ,ण

तवर्ग- त,थ,द,ध,न

पवर्ग- प,फ,ब,भ,म

यवर्ग- य,र,ल,व

शवर्ग- श,ष,स,ह

पिण्ड साधन की विधि अनेक प्रकार से वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में कही गई है, परन्तु विविध सूत्रों से भी पिण्ड का एक ही माप प्राप्त होता है। पिण्डसाधन का मुहूर्तचिन्तामणि में वर्णित सूत्र इस प्रकार है-

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्योरुपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।

युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः।।

इस सूत्र का समीकरण इस प्रकार है-

[(इष्टनक्षत्र – 1)*152) + (इष्ट आय – 1) * 81) + 17] / 216 = गृहपिण्ड

अर्थात् इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय में से 1–1 घटाकर एक स्थान पर 152 तथा दूसरे स्थान पर 81 से गुणा कर , दोनो स्थानों पर प्राप्त संख्या के योग में 17 जोडने पर लब्धि में 216 का भाग देने पर गृहपिण्ड की प्राप्ति होती है, इसको आप एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते है –

उदाहरण – उदाहरण के लिए सत्यपाल नामक व्यक्ति का नक्षत्र शतभिषा का अभीष्ट नक्षत्र मघा के साथ विवाह मेलापक विधि से मेलापक उत्तम मिलता है। अश्विन्यादि क्रम से गृह का अभीष्ट नक्षत्र मघा लेने पर संख्या 10 आती है , इसी प्रकार आय में इष्ट विषम आय सिंह ग्रहण की तो पिण्ड साधन इस प्रकार होगा –

इष्ट नक्षत्र संख्या 10 में से 1 घटाने पर शेष 9 को 152 से गुणा करने पर 1368 गुणनफल प्राप्त हुआ। इष्ट आय संख्या 3 में से 1 घटाने पर शेष को 81 से गुणा करने पर 162 गुणनफल प्राप्त हुआ । दोनों गुणनफलों को जोडने पर 1530 संख्या प्राप्त हुई। इसमे सूत्रानुसार 17 जोडकर 216 से भाग देने पर प्राप्त संख्या गृहपिण्ड होगी।

1530 + 17 = 1547/ 216, शेष = पिण्ड , यहाँ 35 शेष (पिण्ड) प्राप्त हुआ।

यहाँ 35 गृह का पिण्ड बना इसकी माप हस्त में आती है , आज की परिस्थिति और व्यवहार में मीटर व फीट का ग्रहण किया जा सकता है । उदाहरण में 35 संख्या से अधिक यदि गृह निर्माण भूखण्ड की माप हो , तो 35 (प्राप्त पिण्ड) में 216 जोडते जाने पर अभीष्ट भूखण्ड के अन्तर्गत सुविधानुसार पिण्ड संख्या प्राप्त हो जायेगी ।

इस प्रकार से आप समझ गये होगे कि पिण्डसाधन वास्तुशास्त्र का कितना महत्वपूर्ण अंग है ।अतः प्रत्येक निर्माण में पिण्ड साधन करने के पश्चात ही भवन के निर्माण कार्य को प्रारम्भ करना चाहिये।

4.4.1द्वारविन्यास

जैसा कि आप जानते है कि गृह में मुख्य द्वार का अत्यधिक महत्व है । गृह के मुख्य द्वार को गृह का मुख कहा जाता है । जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में मुख का महत्व है , उसी प्रकार से भवन में मुख का महत्व है । द्वार-निर्धारण के सम्बन्ध में वास्तुग्रन्थों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। सर्वप्रथम वत्समुख विचार के माध्यम से भवन के मुख्य द्वार का निर्धारण होता है । जब सूर्य कन्या-तुला-वृश्चिक राशि में हो तो वत्स मुख पूर्व में , धनु - मकर - कुम्भ राशि में होने पर दक्षिण में, मीन-मेष-वृष

राशि में होने पर पश्चिम में और मिथुन-कर्क -सिंह राशि में होने पर वत्स मुख उत्तरदिशा में होता है। वत्समुख के सम्मुख और पृष्ठ दिशा में गृहद्वार कष्टदायक है। भवन के स्वामी की राशि के अनुसार भी मुख्य द्वार का निर्धारण होता है ।यथा वृश्चिक -मीन-सिंह राशि वालों के लिए पूर्व, कन्या-कर्क - मकर राशि वालों के लिए दक्षिण,धनु-तुला-मिथुन राशि के लिए पश्चिम और कुम्भ-मेष-वृष राशि के लिए उत्तर दिशा शुभ है।

आय के अनुसार भी मुख्यद्वार का निर्धारण किया जाता है ।यथा – ध्वजाय वाले गृह का मुख्य द्वार चारों दिशाओं में , सिंहाय वाले भवन का मुख्य द्वार पश्चिमातिरिक्त अन्य दिशाओं में, गजाय वाले घर के लिए पूर्व यां दक्षिण और वृषाय वाले भवन में पूर्व दिशा में घर का मुख्य द्वार शुभ होता है ।राशियों के वर्ण के अनुसार भी गृह के मुख्यद्वार का विचार होता है ।जैसे –ब्राह्मण राशियों के लिए पश्चिम,क्षत्रिय राशियों के लिए उत्तर,वैश्य राशियों के लिए पूर्व,और शूद्र राशियों के लिए दक्षिण दिशा के घर शुभ होते है।

इसी प्रकार भवनारम्भ मास के अनुसार भी मुख्यद्वार का निर्धारण होता है। कर्क- सिंह-मकर राशि के सूर्य में भवनारम्भ करने पर भवन का मुख्य द्वार पूर्व यां पश्चिम में बनाया जाता है। मेष-वृष-वृश्चिक के सूर्य में भवनारम्भ करने पर मुख्य द्वार दक्षिण यां उत्तर में बनाया जाता है। राहु के मुख-पुच्छ विचार के अनुसार – जिस दिशा में राहु का मुख हो, उसी दिशा में भवन का मुख्यद्वार रखने से सर्वविध कल्याण होता है।

इसके अतिरिक्त सप्तश्लाका चक्र के अनुसार भी मुख्यद्वार का निर्धारण किया जाता है। इस चक्र में पूर्वापर और याम्योत्तर सात रेखाएँ खींची जाती है। कृत्तिका से आश्लेषा तक सात नक्षत्र पूर्व दिशा में , मघा से विशाखा तक सात नक्षत्र दक्षिण में , अनुराधा से श्रवण तक सात नक्षत्र पश्चिम में, धनिष्ठा से भरणी तक सात नक्षत्र उत्तर दिशा में लिखे जाते है । ग्राम-नगरादि में अपने-अपने नक्षत्र दिशाओं में निवास बनाना श्रेयस्कर है। सम्मुख और पृष्ठस्थ नक्षत्रों में द्वार बनाना अशुभ तथा वाम और दक्षिण नक्षत्रों में शुभ होता है।

सप्तश्लाका चक्र

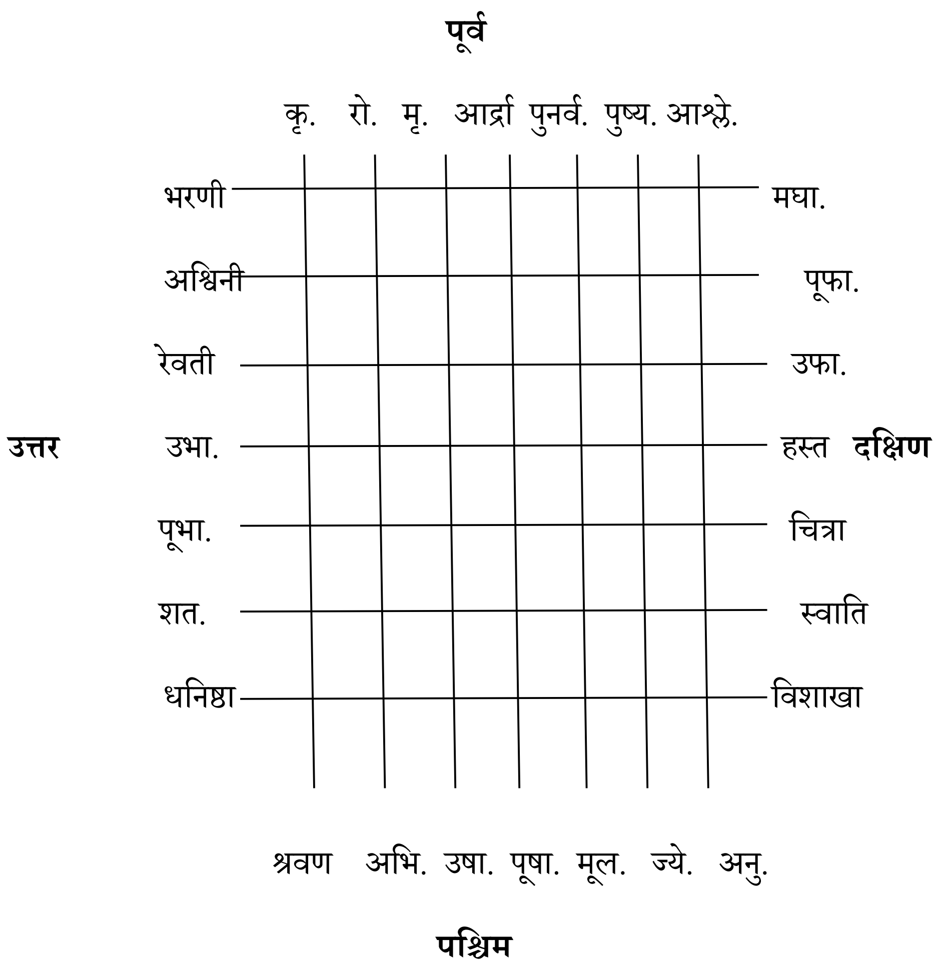

यथा –

कृत्तिकायास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदिताः क्रमात् ।
यद्दिश्यं यस्य नक्षत्रं तत्र तस्य गृहं शुभम् ।।

इसी प्रकार से द्वार-चक्र के माध्यम से भी द्वार निर्धारण किया जाता है। द्वारचक्र में सूर्य नक्षत्र से आरम्भ कर चार नक्षत्र द्वार के ऊपर , दो नक्षत्र द्वार की शाखाओं में, तीन नक्षत्र द्वार के अधो भाग में और चार नक्षत्र मध्य भाग में विन्यस्त किए जाते है। ऊर्ध्वनक्षत्रों में द्वार निर्माण से राज्य , कोण नक्षत्रों में उद्वासन,शाखा नक्षत्रों में लक्ष्मी प्राप्ति, ध्वज नक्षत्रों में मृत्यु और मध्य नक्षत्रों में द्वार निर्माण से सौख्य होता है।

द्वार-निर्धारण की एक अन्य विधि ''पदवास्तु'' के अनुसार द्वार का निर्धारण करना है। पद वास्तु के अनुसार पूर्व दिशा में सूर्य-ईश और पर्जन्य के पदों पर,दक्षिण दिशा में यम-अग्नि और पौष्ण के पदों पर,पश्चिम दिशा में शेष-असुर और पाप के पदों पर, उत्तर दिशा में रोग-नाग और शैल के पदों पर तथा क्रूर देवताओं के पदों पर द्वार निर्माण से अशुभ फल की प्राप्ति होती है। एकाशीति पद वास्तु में पूर्व दिशा के नव पदों में से तीसरे तथा चौथे पद पर, दक्षिण में तीसरे तथा चौथे पद पर,पश्चिम दिशा में चौथे और पाँचवे पद पर तथा उत्तर दिशा में तीसरे ,चौथे और पाँचवे पद पर द्वारकरण धनदायक तथा सन्ततिवृद्धिकारक होता है। यथोक्तम्-

द्वारं नवमभागेषु कार्यं वामात्प्रदक्षिणम्।
तृतीय-तुर्ययोः प्राच्यां याम्ये तूर्येऽथ पश्चिमे ।।
त्रि-तुर्य-पंचमे चैव पंच-वेद-त्रिषूत्तरे।
तत्र द्वारं च कर्तव्यं धनधान्यादिवृद्धये ।।

उपरोक्त विधि के अनुसार द्वार निर्धारण के पश्चात् द्वार निर्माण के सिद्धान्तों के अनुसार ही द्वार का निर्माण करना चाहिये। समायत द्वार शुभ तथा विषमायत द्वार अशुभ होता है। द्वार के विस्तार से द्विगुणित द्वार की ऊँचाई रखनी चाहिये। यदि द्वार मान से कम हो तो दुख और मान से अधिक हो तो राजभय होता है। द्वार के कुछ गुण और दोष भी शास्त्र में वर्णित है। सुस्थिर-सुन्दर-कान्त और ऋजु द्वार एक उत्तम द्वार कहलाता है। अत्युच्च द्वार राजभयदायक,अतिनीच द्वार चौर्यदायक और कुब्जद्वार कुलपीडाकारक होता है। इसी प्रकार भवन का द्वार स्वयं उद्घाटित होना उन्मादकर, स्वयं बन्द होना कुल का विनाश, और मानाधिक्य नृप का भय करता है। यथोक्तम्-

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ।।
द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय संकटं यच्च।
आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ।।
पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभवाय।
वाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ।।

द्वार के अन्य दोषो में एक दोष द्वार-वेध दोष भी है। यदि द्वार का वेध वृक्ष-कूप-देव मंदिर यां अन्य किसी पदार्थ के साथ हो तो कष्टप्रद होता है। इस वेध दोष के निवारण के लिए द्वार तथा वेधक पदार्थ

का परस्पर अन्तर द्वार की ऊँचाई से अधिक होना चाहिए। इस प्रकार से द्वार की दिशा और स्थान निर्धारित होने के पश्चात् दोष रहित द्वार का निर्माण शुभ मुहूर्त में करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

१. नींव रहित भूभाग का माप ------- कहलाता है।
२. वास्तु मेलापक में एक समान नाडी------- मानी जाती है।
३. गृह एवं गृहस्वामी का एक ही नक्षत्र होना------ माना जाता है।
४. ध्वज,सिंह,वृष और गज आय----- है।
५. भवन का द्वार स्वयं उद्घाटित होना------है।
६. विषमायत द्वार------ होता है।

4.5. सारांश

इस प्रकार से इस पाठ में आप ने गृहनिर्माण में विचारणीय अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्वों "खात, वास्तुपदविन्यास, पिण्डनिर्माण एवं द्वार-विन्यास" को जाना। किसी भी निर्माण से पूर्व भूखण्ड पर किया जाने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य खात ही है, इसलिए इस पाठ में खात विधि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। खात के अनन्तर शिलान्यास किया जाता है। शिलान्यास के बाद वास्तुपद विन्यास की चर्चा की गई है, जिसमें चतुष्षष्टिवास्तुपद विन्यास और एकाशीति वास्तुपद विन्यास के माध्यम से भूखण्ड पर रेखाचित्र का निर्माण किया जाता है, जिसको साईट प्लेनिंग के नाम से भी जाना जाता है। तदनन्तर पिण्ड साधन कर भूखण्ड पर निर्मित किए जाने वाले भवन के क्षेत्रफल का निर्धारण किया जाता है। इस पाठ के अन्त में द्वार-विन्यास की चर्चा की गई है। जिसमें द्वार निर्माण की दिशा और स्थान- निर्धारण के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। इन सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए दोष-रहित द्वार सर्वविध सौख्य का प्रदायक होता है। इस इकाई में वर्णित खात, वास्तुपदविन्यास, पिण्डनिर्माण एवं द्वार-विन्यास के सिद्धान्त वास्तु के अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इन सिद्धान्तों का अनुपालन करने से गृहजनों को सुख और समृद्धि की प्राप्ति

होती है।

4. 6 पारिभाषिक शब्दावली

1. खात – शिलान्यास हेतु किया गया गड्ढा।

2. विदिशा – ईशानादि कोण।

3. राहु-मुख-पुच्छ विचार – खनन हेतु दिशा के निर्धारण की विधि।

4. शिलान्यास – नींव स्थापना

5. गृहपिण्ड - नींव रहित भूभाग का माप ही पिण्ड कहलाता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-१ की उत्तरमाला

१) सत्य

२) असत्य

३) असत्य

४) सत्य

५) असत्य

६) असत्य

अभ्यास प्रश्न- २ की उत्तरमाला

१) पिण्ड

२) शुभ

३) अशुभ

४) शुभ

५) अशुभ

६) अशुभ

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) मुहूर्त चिन्तामणि, सं०केदारदत्त जोशी, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।

ख) बृहद्वास्तुमाला, सं० रामनिहोर द्विवेदी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – २००१

ग) वास्तुरत्नाकर:, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

घ) राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् , सं० श्रीकृष्ण जुगनू , परिमल पब्लिकेशन,दिल्ली,२००५

ङ) समराङ्गणसूत्रधारः, सं० एवं अनु० पुष्पेन्द्र कुमार , न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन , दिल्ली - २००४

च) विश्वकर्मप्रकाशः, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

4.9 सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(१) खात निर्णय का विस्तार से वर्णन करें।

(२) वास्तुपदविन्यास पर एक निबन्ध लिखें।

(३) पिण्डसाधन सोदाहरण प्रस्तुत करें।

(४) “ द्वार-विन्यास ” इस विषय पर निबन्ध लिखें।